[श्री द्वा. ग्र माला पुष्प २२]

" कुंभनदास "

[जीवनी, पद–संग्रह और भावार्थ]

सम्पादक :—

गो. श्री व्रजभूषण शर्मा

पो. कण्ठमणि शास्त्री

क. श्री गोकुलानन्द शर्मा

प्रकाशक :—

विद्या–विभाग

[अष्टछाप-स्मारक समिति]

कांकरोली.

प्रकाशक —

पं० कण्ठमणि शास्त्री

सचालक —

विद्या-विभाग, कांकरोली

[राजस्थान]

यह पुस्तक पृष्ठ १ से १२८ तक (केवल मूल पद-सग्रह) बडौदा, रावपुरा-
' अशोक प्रिन्टरी ' में सेठ श्री रमणलाल नानालाल शाह ने छापी और
अन्य सर्व शेष भाग बडौदा-शियाबाग, श्रीकबीर प्रेस में
प. श्री. मोतीदासजी चेतनदासजी ने छापा।

प्रथम संस्करण] ता. १५, फरवरी १९५४ [मूल्य—
१००० — स. २०१० — ३-०-०

मुद्रक —

केवल पद-सग्रह :
' अशोक प्रिंटरी ' रावपुरा, बडौदा.
भावार्थ और शेष भाग
' श्रीकबीर प्रेस ' शियाबाग, बडौदा.

❀ श्रीद्वारकेशो जयति ❀

सम्पादकीय

※

पूर्वप्रसंग—

प्राय: २० वर्ष पूर्व का प्रसंग है—'काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'सूरसागर' का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। इस महान् ग्रन्थ के पाठ-सम्वादार्थ प्रामाणिक, प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा था।

काकरोली 'विद्याविभाग' की स्थापना' हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था। उसके विशाल हस्तलिखित संग्रहालय—अस्तव्यस्त उत्ताल तरंगाकुल महासमुद्र—के किस निभृत कोण में किस परिवेष्टन, परिस्थिति में कौनसा ग्रन्थ छिपा पड़ा था, सर्वथा अपरिज्ञात था।

साहित्य-गगन के जैवातृक, सकलकलागुणनिधि, ख्यातनामा विद्वान् तृतीय पीठाधीश गो. श्रीबालकृष्णलालजी महाराज के नित्यलीलास्थ होजाने से साहित्य-जगत् की एक विशेष चहल पहल-जो श्रीरत्नाकरजी, नवनीतजी चतुर्वेद, पं. अंबिकाप्रसाद वाजपेयी और बाबू रामकृष्णवर्मा आदि के आयोजनों से परिचालित होरही थी-सहसा ठप्प-सी होगई थी।

कांकरोली के वर्तमान पीठाधीश्वर की स्वल्प वयस्कता के उष काल से ही यावदार्य-कुलकमल-दिवाकर महाराणा उदयपुराधीश श्रीफतहसिंहजी का ललाटतप शासन चल रहा था। साहित्योपवन का सुहावन सावन आने के लिये समय की बाट जोह रहा था।

किन्हीं पुण्यों के प्रताप से उक्त संग्रहालय की व्यवस्था के दो युगंधर नियत किये गये, एक इन पंक्तियों का लेखक, दूसरे उसके सहयोगी मित्र धाफा (सौराष्ट्र) निवासी प श्रीजटाशकर कहानजी शास्त्री। अध्यापन के अतिरिक्त समय ग्रन्थों की सुव्यवस्था का कार्य चल ही रहा था, सहसा राजकीय शासन-परम्परा की सीढियों में ४-५ मास से उतरता चढ़ता 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' का एक पत्र कांकरोली पहुंचा। 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्राचीन प्रति भेजने का अनुरोध था।

'बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा'। संस्थाओं से परिचयाभिवृद्धि की अभिलाषा ने सीधा पत्राचार चालू कर दिया। निश्चित हुआ कि–सचालक 'विद्याविभाग' स्वयं 'सूरसागर' की प्रतिया लेकर 'सभा' मे उपस्थित हो जायगा।

अ भा ब्रा महासम्मेलन (प्र अधिवेशन) के अवसर पर उक्त ग्रन्थ की ६–७ प्रतिया कष्ट और लगन के साथ निकालकर काशी ले जाई गई। 'सभा' के कार्यालय में 'नमोनमस्ते' के बाद श्रीरत्नाकरजी से परिचय हुआ। स्वर्गीय महाराजश्री की गुणग्राहकता, और वर्तमान व्यवस्था के प्रसगोपरान्त 'सूरसागर' के सम्पादन की बात चली। साथ में लाई हुई सूरसागर की पोथिया करकमलो मे समर्पित की गई। उलटा-सुलटा कर ध्यानपूर्वक उनका निरीक्षण होने लगा।

पर हैं? यह क्या? आग्रह–भरा पत्र लिखकर, सानुरोध सुरक्षा का वचन देकर, आयाचित 'सूरसागर' की इतनी प्रतियों को देखकर भी श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के गौरवभरे मुखमण्डल में कुछ भी अन्तर की रेखा नहीं झलकी! आयत सघन भ्रकुटियो की जिम्हता बढ़ती ही गई!! ब्रज-भाषा के सरस कवि की स्मित माधुरी आभासित नहीं हुई'!! वे मुझे और मैं उन्हें २ मिनिट तक निर्निमेष देखते रहे।

अन्ततो गत्वा सहसा मेरे कानों में शब्द पड़े—"पडितजी? आप मुझे धोखा न दीजिये। ग्रन्थ न देना चाहें न दें? पर इस प्रकार बरगलानें की कोशिश न करे, यह वह प्रति नहीं है–जिसकी हमें आवश्यकता है।"

विदित हुआ कि—"यह सब प्रतियां केवल दशमस्कन्ध की हैं। एक हाथ लम्बी, पौन हाथ चौडी, बारह स्कन्धो वाली प्रति जो–मैंने (रत्नाकरजीने) स्वय कांकरोली में स्वर्गीय महाराजश्री के समक्ष देखी थी, इनमें नहीं है।"

'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः'। अस्तु दिष्टम्।

दिव्यवेशधारी, मूर्तिमान् शास्त्र–स्वरूप, प्रकाण्ड पण्डितों के सम्मेलन द्वारा तात्कालिक मार्ग दर्शन पाकर, दुरितहारिणी जान्हवी के अभिषेक से कृतार्थ होकर भी घर आकर रायसागर के तटपर (कांकरोली में) 'सूरसागर' का अन्वेषण करने लगा। आरोपित साहित्यिक प्रवञ्चना की कालिमा एक डेढ़ वर्ष तक न धुलसकी, न धुलसकी। क्या किया जाता?

सहसा एक दिन सम्वाद मिला कि–महाराजश्री (वर्तमान पीठाधीश गो श्रीव्रजभूषणलालजी जो अष्टछाप–साहित्य के विशेषज्ञ और प्रधान संपादक हैं) ने गुजरात की अपनी यात्रा में सखेडा ग्राम में ‘ सूरसागर ’ की वही प्रति प्राप्त करली है। यह प्रति एक तथाकथित वैष्णव के पिता के समय–जो कांकरोली में मदिर के कार्यवाहक थे–काकरोली से सरक गई थी– दर्शनीय रूप में विराजमान होकर अपने दिन गिन रही थी।

मानसिक अनुतापपूर्ण साधना और अन्वेषण के फलस्वरूप खोई हुई निधि प्राप्त हुई और वास्तव में प्राप्त हुई। श्रीरत्नाकरजी प्राप्तव्य ग्रन्थरत्न पाकर प्रशान्त बन गये। ‘विद्याविभाग’ को सौजन्यपूर्ण धन्यवाद का पत्र प्राप्त हुआ–और हिन्दीजगत को ‘ सूरसागर ’। सम्पादन में उक्त प्रति का अच्छा सदुपयोग हुआ। हम लोगों का श्रम सफल हो गया अब मनोरथ के पंख ऊगने लगे।

आयोजन—

उसी समय से अष्टछाप की दिव्य वाणी के संकलन, संपादन और प्रकाशन का उत्साह जागरूक हुआ। अध्यवसाय ने करवट बदली। संग्रहालय की व्यवस्था के अनन्तर यावत्प्राप्य पोथीयो से अष्टछापी कवियों के पदो की सूचियां बनाई गई–और पदों का सम्पादन कर क्रमश प्रकाशन की व्यवस्था चालू की गई।

विद्याविभाग के अन्तर्गत ‘ शुद्धाद्वैत एकेडमी (अष्टछाप–स्मारक समिति) के सम्पादक–मण्डल ने सूरसागर के अनन्तर (जो काशी ना प्र. सभासे प्रकाशित होनेवाला था)परमानन्ददास कृत ‘ परमानन्दसागर ’ को सभा के अर्ध-ताब्दी महोत्सव (सन् १९५०) के उपलक्ष में प्रकाशित करनेका संकल्प किया– उसका सुव्यवस्थित प्रामाणिक सम्पादन भी किया, पर व्यय–बाहुल्य के कारण (द्वि महायुद्ध के समय) उसका मुद्रण प्रारभ न किया जा सका। उक्त ग्रन्थ आज भी सम्पादित होकर प्रकाशन की ओर उन्मुख हो रहा है।

सामयिक विषम परिस्थितियों के द्वारा विद्याविभाग के ग्रन्थ–प्रकाशन में पडी हुई एक लम्बी यवनिका को देखकर सम्पादको ने अष्टछाप के छोटे सग्रहों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी, जिसके फलस्वरूप गतवर्ष गोविन्दस्वामी के पदों का संग्रह ‘ गोविन्दस्वामी ’ के नामसे प्रकाशित किया गया। और अब उसके अनन्तर ‘ कुभनदास ’ के यावत्प्राप्य पदों का सग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ रूप में साहित्य–जगत के सन्मुख रखा जारहा है।

आदर्श प्रतियाँ—

कुभनदास के पद-सम्पादनार्थ कांकरोली के सरस्वती-भडार में ही इतनी सामग्री मिल गई है, जिससे अन्यत्र की प्रतियों की अपेक्षा ही नही हुई। 'कुभनदास जैसे महानुभावी, मानसीसेवा-परायण भक्तकवि की पद-रचना का इतना विस्तृत आधिक्य भी तो नहीं हैं जो-हमें इस दिशा में अधिक प्रोत्साहित करता। फलत प्रस्तुत सम्पादन में जिन आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया, उनका परिचय इस प्रकार है।

(१) 'क' प्रति-यह प्रति स भ. के हिन्दी-विभाग मे बध स. १९/७ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १ से ८७ तक पत्रो मे कुभनदास कृत पद हैं, और बाद में पत्र ८७ से १२२ तक नन्ददास कृत, पत्र १२२ से २२५ तक अन्यके पद संग्रहीत है। इसमें 'जन्मोत्सव के पदो' से प्रारभ होकर 'रथयात्रा' तक पद लिखे गये हैं जिनके बीचमें प्राय सभी विषयो क पदोंका समावेश हो गया हैं। यहॉ श्लोक स ७२५ का निर्देश कर पीछे से 'मेरी अँखियनि यह टेव परी' यह पद और लिख दिया गया है। ग्रन्थान्त में-"कुभनदासजी के पद जेते भाले तेते लखे हैं। श्री श्री" ऐसी पुष्पिका दी गई है। इसके लेखनकाल के सम्बन्ध में—"संवत् १८२९ ना वर्षे फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे षष्ठया रवौ गुर्जरे मेदपाट ज्ञातीय मयारामेण लिखितमिदं पुस्तकम्" ऐसा उल्लेख है। पुस्तक का आकार ४" × ५" गुटकारूप में है, काली स्याही में सुवाच्य और शुद्धरूप में लेखन धाराबाहिक रूप से है। कहीं कहीं असावधानीवश एकाध पंक्ति या शब्द छूट गया हैं। इसमें संग्रहीत पदों की एकत्र संख्या १९० है। पदों के प्रारभ में रागों के नाम दिये गये हैं। 'वर्षोत्सव' या 'नित्यलीला' के पदों का कोई विभाग नहीं है।

इसमें निम्न लिखित विषयों का समावेश है :—

सं	नाम	पद	सं	नाम	पद
१	मंगलाचरण	१	७	श्रीस्वामिनीजीकौ स्वरूप वर्णन	११
२	भक्तनि के आसक्ति के वचन	२५	८	सखीके वचन श्रीस्वामिनीजू प्रति सुरतांत	१४
३	आसक्ति कौ वर्णन	९	९	संहिता के वचन साक्षात् भक्तनि के श्रीप्रभुजू सौं	८
४	आसक्ति अवस्था	१			
५	दान प्रसंग	४			
६	साक्षात्प्रभुजी कौ स्वरूप वर्णन	८	१०	मानापनोदन	३१

सं	नाम	पद
११	विरह-समय	२५
१२	युगल स्वरूप कौ सौंदर्य वर्णन	२
१३	प्रभु के आसक्ति वचन भक्तनि सो	१
१४	गो-दोहन समय	३
१५	साक्षात् भक्तनि के वचन प्रभु सो	१
१६	समीप-विरह	२
१७	परस्पर हासवाक्य श्रीस्वामिनी जू के प्रभु प्रति	३
१८	हिंडोला प्रभु कौ झूलिवो	४
१९	प्रभु की आरती	१
२०	वसन्त-समय	६
२१	रास-समय	९
२२	उराहने के वचन भक्तनि के श्रीयशोदाजू सो	१
२३	अन्नकूट-समय	४
२४	प्रभु कौ बनते आगमन	४
२५	साक्षात् भक्तनि की प्रार्थना प्रभु सो	१
२६	वर्षारितु वर्णन	४
२७	स्वामिनी जू कौ प्रभु प्रति गवन	१
२८	श्रीप्रभुजी की मुरली श्रीस्वामिनी जू हरन-समय	२
२९	रथयात्रा। ..	१
	एकत्र सं	१९०

२ 'ख' प्रति—यह प्रति स भ के हि विभाग में बध म १०/६ पर विद्यमान है। इसमें पत्र १६१ से १९५ तक कुभनदास कृत पदों का लेखन है। मध्य में १६२ वां पत्र अनुपलब्ध है, और १६३ १६७, १७०, १७६, १८०, १८६, १८८, १९० यह आठ पत्र खाली हैं (केवल पृष्ठांक डले हुए हैं)। इसमें 'बाललीला' से प्रारभ कर 'द्वितीय अवस्था' [विरह] तक २३ विषयों में १९९ पद लिखे मिलते हैं। आकार १०"×८" है। प्रत्येक विषय के पदों की समाप्ति पर पत्र खाली छोड़ दिया गया है। इससे निश्चित होता है कि-लेखक ने भविष्य में उपलब्ध होनेवाले अन्य पदों या विषयो को यथास्थान सन्निविष्ट करने के लिये ऐसा किया है। किसी मूल प्रति के अनुकरण किम्वा अन्य प्रतियो के सम्वाद के लिये भी इस पद्धति को स्वीकार किया गया हो, ऐसी संभावना है।

लेखनकाल-इस प्रति का आदि अन्त नष्ट हो गया है। इसी लिपि तथा आकार-प्रकार में 'सूरदास' आदि अन्य अष्टछापी कवियों की रचनाए भी लिखी मिलती हैं-मध्यपातिनी पत्र-[१६३] की सख्या भी इसीका बोध कराती है। यह ग्रन्थ जीर्णशीर्ण अवस्था में प्राप्त हुआ था। महत्वपूर्ण आद्यांश-सूरपद संग्रह-और अन्तिमांश बहुत कुछ नष्ट हो गया है। एकही लेखक द्वारा सुवाच्य अक्षरों में लिखी हुई यह प्रति यदि सम्पूर्ण रूप में

अथसे इति तक प्राप्त हो जाती तो अष्टछाप के पदो का प्रामाणिक और शुद्ध विश्लेषण [पारस्परिक असमिश्रण] हो सकता। उस समय नही कहा जा सकता था कि-अमुक पद अमुक का नहीं, अमुक का है। इसका लेखन मन को मुग्ध कर लेता है।

प्रस्तुत प्रकाशन मे पदो के नीचे फुट नोट मे जहां भी सूरकृत; परमानन्दकृत, कुभनदासकृत पदो का आदि का विश्लेषण किया गया है इसी प्रति के आधार पर किया गया है। [देखो पद स. ५४, ५६, ९९, १००, १०५, १३७ आदि]

इस प्रति के लेखनकाल का निर्धार मैंने "परमानन्ददास और उनका परमानन्दसागर" नामक लेख [सुधा लखनऊ] में किया था। फलत इसका लेखनकाल स १५६६ से १५८० के बीच निश्चित होता है। अत यह प्रति अष्टछाप के कीर्तन-संग्रह, विचारणा के लिये सबसे अधिक शुद्ध प्रामाणिक और प्राचीन सिद्ध होती है। अत इसी के पाठ को प्राथमिकता दी गई है।

सं	नाम	पद
१	बाललीला	२
२	गो दोहन-प्रसंग	२
३	[परस्पर हासवाक्य]	१
४	स्वामिनीजू को स्वरूप वर्णन	११
५	दान प्रसंग—	
	प्रभुके वचन	१
	गोपिकाजू के वचन	३
६	बनतें व्रज को पांउ धारिवौ (आवनी)	२
७	आसक्ति—	
	सखी प्रति वचन	१९
	आसक्तिकौ वर्णन	१०
	आसक्ति साक्षात प्रभुप्रति	२
८	मानापनोदन	३१
९	[श्रीस्वामिनीजू कों प्रभु प्रति गवन]	१
१०	पौंढे समय के पद	१
११	खंडिता	८
१२	सुरतांत	१२
१३	[मुरली हरन]	२
१४	[हिंडोला]	४
१५	[वर्षारितु वर्णनु]	४
१६	अन्नकूट-समयके पद	५
१७	रास उत्सव समयके पद	६
१८	वसंत	५
१९	फागु धमारि	३
२०	द्वितीय अवस्था (विरह)	२४
	एकत्र	१५९

अन्य प्रतियाँ—

उक्त प्रतियो के अनन्तर कीर्तन-संग्रह की अनेक पोथियो से 'कुभनदास' की छापवाले पदो की प्रतीक-सूची बनवाकर उनका मिलान किया गया और पदो को लिपिबद्ध। सर. भ के हिन्दी-विभाग के जिन बधो मे पद प्राप्त हुए वे इस प्रकार है —

बंध और पुस्तक सख्या .—

१/२-२। २/३-४-५। ३/१। ४/४। ५/१-६। ६/३-५। ७/४ ८/८। ९/३-५-६। ११/५-६। १२/३। १३/१-३। १४/२। १५/१-२ १७/३-४। १८/१-२। १९/१-७। २०/१०। २१/९। २४/९। २५/५ २७/४। २८/३। २९/१। ३०/६-१०। ३८/४। ४६/२। ११५/९। ११६/१ १३३/७। १३९/६। १४५/१-२। १४६/२। १४७/२। १५५/२। २१५/५

उक्त प्रतिया समय २ पर लिखी गई है--जिसमें किन्ही मे लेखनकाल है और किन्ही मे नही। यह सब प्रतियाँ या तो वर्षोत्सव, नित्यलीला के क्रम से है-या राग के क्रमसे। इनमे पुष्टिसम्प्रदाय की सेवा-पद्धति मे गाये जानेवाले अन्य कवियों के पद-कीर्तनों का भी सकलन है।

इन सब प्रतियो के पाठ-भेद को 'क' 'ख' प्रति के अनन्तर ही प्रामाणिकता दी गई है। बहुतसे पद 'कुभनदास' की छाप होते हुए भी दूसरी अन्य प्रतियो में उपलब्ध नही हुए। कुछ ऐसे भी पद लिखे मिले जो अन्य की छाप से प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। अत इस पद-संग्रह में उन्ही पदो का समावेश किया गया है जो एकसे अधिक प्रतियो में मिले हैं।

उसके अतिरिक्त बहादरपुर [संखेडा गुजरात] गोवर्द्धननाथजी के कीर्तन सेवाकार, वयोवृद्ध, भगवदीय श्रीछगनभाई ने भी कई पद अपने सग्रह से लिखकर दिये। इन्होने कई वर्ष तक कांकरोली में भी सेवा की थी। कीर्तन के विशेषज्ञ और सगीतज्ञ थे-अब हरि शरण हो चुके है, वे संग्रह के लिये सस्मरणीय है। इसके अनन्तर पद-मुद्रण के समय उक्त नगर के निवासी भाविक सेवापरायण, सेठ श्रीपुरुषोतमदासजी ने भी सूचियो से मिलान कर कई पद लिखकर भेजे-फलतः इनका सहयोग भी हमें प्राप्त हुआ और सग्रह को परिपुष्टि।

'दानलीला' और 'श्याम-सगाई' पृथक् रचना के रूप में भी मिलती है और संयुक्तरूप में भी। इसकी दो प्रतियाँ सरस्वती-भंडार काकरोली में ही विद्यमान हैं।

विषय का वर्गीकरण—

यह स्पष्ट है कि- कुभनदासजी ने काव्य-रचना की दृष्टि से पदो का निर्माण नही किया है। वे श्रीगोवर्द्धनधर प्रभु के सान्निध्यमे श्रीमहाप्रभु-द्वारा सोपी हुई कीर्तन-सेवा कर अपने जीवन को कृतार्थ करते थे। लौकिक निर्वाह उनका चलता ही था, यश की उन्हे कामना नही थी। सगीत की स्वर-लहरी में आत्मिक एकतानता का अनुभव कर भगवदानन्द का आस्वाद लेना ही उनका परम पुरुषार्थ था।

गेय भगवल्लीला, सनातन होते हुए भी नित्यनूतन, विविध रस-सपूरित और शुद्धभाव-भरित होती है। उसमे सात्विक अनुभूतियों का प्राबल्य और दिव्य कल्पनाओं का साक्षात्कार होता है। अन्य समानकक्षाधिष्ठित भगवदीय कवियो की भाति कुभनदासजी ने भी सेवा-सम्बन्धी विविध प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर तत्काल ही अनेक रचनाए प्रस्तुत की हैं। 'वाचमर्थें नुधावति' जो वे आत्मानन्द-निमग्न होकर गाते गये-काव्य बनता चला गया। स्वर, ताल, लय, छन्द, अलकार, रस, शब्द-सौष्ठव सभी, भाव के पीछे भागते चले आए।

यद्यपि भाव, काव्य की आत्मा है-उसके प्रतिष्ठित किये बिना वर्णनात्मक सौन्दर्य परिलसित नही होता, पर रससिद्ध कवियों के लिये वह आगन्तुक न होकर साहजिक होता है। हृदयाकाश में सदा घुमडती हुई रसघटाएं न जाने किस रूपमें कहां कितनी बरस जाये? कहा नही जा सकता। सच तो यह है कि- साहित्य-क्षेत्र 'नदीमातृक' नही हैं 'देवमातृक' है। इसकी सरसता उन्मुक्त भावाभिवर्षण से ही होती आई है।

इस तरह कुंभनदास की रचना को चाहे स्वच्छन्द, कहा जाय? चाहे उन्मुक्त, भाव-प्रधान रचना है। ऐसा होते हुए भी विविध प्रवृत्तियो में है।

सकलन के सौकर्यार्थ सम्पादन में हमनें उसे इस प्रकार विभाजित किया है :—

(क) क्रिया-प्रधान पद-रचना—

पुष्टिमार्गी सेवा-पद्धति में सम्पन्न होनेवाले उत्सवों-महोत्सवों के अवसर पर सामयिक वातावरण के वर्णनार्थ जो कीर्तन-रचना की जाती थी उसे हम 'क्रिया-प्रधान पद-रचना' कह सकते हैं। ऐसी रचना में हिंडोरा फाग, बधाई, दशहरा रास, धनतेरस, गोवर्द्धनपूजा, रथयात्रा, पवित्रा, राखी, आदिकी पद-रचना का समावेश किया जा सकता है। जिसे हम स्थूलरूप में 'वर्षोत्सव पद-संग्रह' का नाम दे सकते हैं।

(ख) प्रसंग-प्रधान पद-रचना—

'प्रसग-प्रधान पद-रचना' में क्रियात्मक वर्णन के साथ ही एक सजीव भाव-वर्णन होता है जो-प्रसंग के साथ-साथ हृदयको छूता हुआ चलता है। इस शैली में क्रिया और भाव दोनो सहभाव से प्रसंग की परिपुष्टि करते हैं। उदाहरणार्थ-कलेऊ, क्रीडा, मुरलीहरण, स्वरूप-वर्णन, छाक भोजन, श्रावनी आदि के पद लिये जा सकते हैं। इसमें जहा प्रासगिक सजीव वर्णन होता है वहा मानसिक उल्लास, अभिलाषा और मनोरथ-सपूर्ति का भी एक चित्र-सा खिच जाता है। क्रिया और भाव दोनो अपनी समृद्धि का दिगदिर्शन करते है। इसमें प्रधान-गौण-भाव नही होता।

(ग) भाव-प्रधान पदरचना —

'भाव-प्रधान पदरचना' में उन पदो का समावेश किया जा सकता है-जो लीला के मानसिक साक्षात्कार का परिदर्शन कराते हैं। जहॉ कवि की प्रथक् सत्ता नहीं रहती-वह स्वयं भाव में तल्लीन होकर प्रत्येक चेष्टा प्रत्येक अभिव्यक्ति और प्रत्येक अनुभूति में अपने आपको खो बैठता है। वह दर्शक, निर्देशक किंवा समीक्षक न रहकर अभिनय का स्वयं पात्र सा बनजाता है। इस अवस्था में उसकी उक्ति कृत्रिमता से रहित, सत्य के तात्विक प्रभावोत्पादक रूप में हमारे सामने आती है। इस परपरा में हम दानलीला, आसक्ति, आसक्ति-वचन, विरह आदि के पदों का समावेश कर सकते हैं जिनमें कवि की मानसिक भाव-तल्लीनता का ही सर्वतोमुखी साक्षात्कार होता है।

उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं को हम स्थूलरूप में 'लीला पद-संग्रह' के रूप में ग्रहण कर सकते है। अस्तु

प्रस्तुत विभाजन—

उपलब्ध विभिन्न आदर्श प्रतियों में विभिन्न क्रम से विषयों का संकलन प्राप्त होता है। जैसा कि 'क' 'ख' संज्ञक प्रति के प्रारभ में दिये गये विषय-दिग्दर्शन से पता चलेगा। अत संग्रह को सुचारुता और उपयोग की दृष्टि से महत्ता प्रदान करने के लिये पदों को 'वर्षोत्सव' और 'लीला' इन दो विभागों विभक्त कर दिया गया है—

(१) 'वर्षोत्सव' के पदों का उपयोग सम्प्रदाय की पद्धति में जन्माष्टमी से प्रारंभ होकर श्रावण के उत्सव तक समाप्त होता है-अतः उसी क्रम से

उनके पदो का सकलन किया गया है। श्याम-सगाई, और दानलीला, यद्यपि असावधानी वश यहाँ सकलित हो गई है, पर इनका उपयोग वर्षोत्सव प्रसंग में भी होता है।

(२) 'नित्य-लीला' में प्रातःकाल से लेकर शयन-पर्यन्त और शृंगार के सयोग एव विप्रयोग रूपी दोनों दलों की पदरचना का समावेश होता है।

शृगार के दोनो दलों की एकरसता के बिना रस की परिपुष्टि असंभव है-साक्षात् सेवा में सयोग और सेवा के अनवसर में विप्रयोग (विरह) की सानुभावता जबतक हृदयंगम नही होती- 'सानदाश्रुकलाकुलेक्षणता' के साथ गुण-लीला-गान की परिस्थिति जबतक प्रगट नहीं होती-भक्त के हृदय में एक अभाव-सा रहता है, न्यूनता-सी रहती है। दोनो का महत्व अन्योन्याश्रित है, एतदर्थ सभी भक्त कवियो ने लीला वर्णन-व्याज से उनका कथोपकथन कर भावना से भाव की सिद्धि समधिगत की है। वास्तविकतया इस प्रकार के उच्च परमकाष्ठापन्न भक्तकवियों का क्या काव्य-सौन्दर्य, क्या वर्णन-वैचित्र्य, क्या रसपुष्टि और क्या वर्णनात्मक तन्मयता इसी प्रकार के पदो में समधिगत होती है। वर्षोत्सव-वर्णन तो एक सामयिक उल्लास है जो-क्रिया-प्रधानता के कारण आता और चला जाता है। हृदय पर अनुभूति की गहरी छाप, चित्त की तन्मयता, और मानसिक उद्वेग की शान्ति के साथ आत्मिक परमानन्द की लहरे तो इसी में आविर्भूत-तिरोभूत होती है-यही वे उठती और विलीन होकर एक ऐसी अनन्त परम्परा स्थापित कर जाती हैं जो-स्वानुभवैक सवेद्य हो जाती हैं, वर्णनातीत अतएव अलौकिक।

सूरदास आदि अन्य समकक्ष महानुभावों के समान कुंभनदास भी इस रससिद्धता में साधारण नही हैं-उन्होने संयोग-विप्रयोगात्मक ऊभय दलों का वर्णन किया है। आसक्ति और विरह के पद अपनी मौलिकता से पाठक को जिस गहराई में उतार देते हैं उससे उबरना कठिन-सा हो जाता है।

अतः परपराप्राप्त मौलिकता को परिलक्षित कर 'गोविन्दस्वामी' के पदसंग्रह के समान यहाँ भी पदों को उक्त दो बिभागों में विभाजित कर ग्रन्थ के सौष्ठवार्थ प्रयत्न किया गया है।

(३) 'प्रकीर्ण' विभाग में ऐसे पदों का समावेश किया गया है जो 'कुंभनदास' की छापसे प्रचलित हैं- सभव है उनका कोई शुद्ध रूपान्तर हो, पर वे वर्तमानरूप में साधारण रचना प्रतीत होते हैं-और कुछ प्रक्षिप्त-से भी प्रतीत होते हैं। उनके सम्बन्ध में भी कुछ निर्देश करना अप्रासंगिक न होगा।

प्रक्षिप्त पद—

कुंभनदासजी की छाप से ऐसे कई पदों की रचना हुई है, जो- प्रारंभिक तुक से तो भव्य लगते है-पर अध्ययन से उनकी वास्तविकता प्रगट हो जाती है। इस प्रकार के पदो की रचना में अन्य पदो की तुकों, शब्द-योजना का समावेश मिलता है—मानना पडेगा कि-ऐसे पद किसी अभाव का अनुभव कर बनाये और गाये गये हैं-जैसे भोगदर्शन के अवसर पर 'टिपारा' या 'कुलह' या 'पगा' किसी भी शृगार का दर्शनकर इधर-उधर की शब्द-योजना द्वारा कीर्तन की सपूर्ति करदी गई हैं।

वार्ता के अध्ययन से ज्ञान होता है कि- 'सूरदास' के समय ही उनकी प्रसिद्धि का लाभ उठाकर ऐसे कई पद उनकी छाप से प्रचलित होगये थे-बाध्य होकर अकबर बादशाह को उनकी वास्तविकता की परीक्षा का एक उपाय करना पडा था *जलमें पद लिखकर डाले जाते थे, वास्तविक होते थे वे तर जाते थे, नकली होते वे डूब जाते थे। सो-इस प्रकार अन्तस्तल के स्वच्छ मीमासा-नीर में ऐसे पद डुबोकर देखे जा सकते हैं। प्रकीर्ण-विभाग में कुभनदासजी की छाप के इस प्रकार के कई भीजें हुए पद दीख पडेगे। वर्षोत्सव और नित्यलीला-संग्रह में भी वे क्वचित दृष्टिगोचर हो जायगे।

यह तो मानना पडेगा ही प्रक्षिप्त पदोका रचना-कार सगीतज्ञ तो अवश्य था-उसने ऐसे पदों पर 'राग और ताल' की छाप लगाकर उन्हें सुदृढ बनाया है-वह प्रसिद्धि लोलुप भी नहीं था, वैष्णवता की सद्भावना और स्वकीय वाणीं को भगवत्-सेवा में विनियोग करने की लालसा ने ऐसे पदो से उसके अहंभाव को समाप्त कर उन पदो को महानुभावी कवियो के नामपर उत्सर्ग कर दिया था। ऐसा सभी के साथ हुआ है।

इसका एक कारण यही भी था कि-पुष्टिमार्ग में उन्ही भक्तों के पदो का कीर्तन होता है, जिन्हें लीला की सानुभावता थी। लगभग १५० वर्ष के इधर फिर किसी भी कीर्तनकार की रचना का समावेश नहीं हुआ और एक रेखा-सी खिचगई, सूची-सी बनगई।

'व्रज में बड़ौ मेवा टेंटी' इस पद को कई गुजराती भावुक वैष्णव 'व्रज' और उसकी 'मेवा टेंटी' के प्रेम के कारण अच्छा महत्व देते हैं। सम्पादन के समय जो पद सन्मुख आया वह इस प्रकार था —

---

* देखो-अष्टछाप वार्ता [सूरदास पत्र ५५] काकरोली प्रकाशन

"ब्रज में बढ़ौ मेवा टेंटी।
जाकौ होत हैं साग संधानौ अरु बेझर की रोटी॥
भरि भरि डला जब पीवन लागे, बड़े गोप की बेटी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर भुज ओढ़नी लपेटी"॥१॥

इन तुकों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? कुछ कहा नहीं जा सकता?

एक दो और—

"धरे कटि स्याम पिछोरा पीरा।
तापे लप्पेदार किनारी किंकिनी-नाद मंजीरा॥
कुंजभवन में बैठे राधा-सग सारंग गावत सीरा।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-सिर धर्‍यौ मुकुट कैसौ चीरा॥२॥

देखि सखी मोहन सिर फेटा।
मन गड़ि रह्यो माधुरी मूरती ज्यों लपटे गुड चेंटा॥
राधा-संग हैं मन मनावत नंदराइ के बेटा।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर अखिल अड जाके पेटा॥३॥

मलार

अवधि अषाढ घाम ग्रीषम रितु अब बरखा रितु आई जू।
दै सिर डला चली गोपीजन, मारग अति अकुलाई जू॥
गिरिवर-धर आतुर उठि आए छाक तरें उतराई जू।
कमलनैन अब भोजन कीजै, षटरस विंजन लाई जू॥
मंडल जोरि सब जैंवन बैठे ग्वाल-मंडली बुलाई जू।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धनधर जैंवत रुचि उपजाई जू॥

मलार

आंधी अधिक ऊठी आवति है, घेरि करो इकठोरी गैयां॥
हरे हरें चहुं ओर निहारत जैंवन ग्वाल मंडली मैयां॥
और लेहु कछु कहत सबनि सों तुम हो कहां बलदाऊ भैयां॥
लेत देत अति रुचि उपजावत अधिक [illegible] कुँवर कन्हैया॥
चहुं दिसि सोभित बन चलि बैठो सुंदर बट की छैयां॥
बरखत बुन्द परसि अंग आनंद 'कुंभनदास' गिरिधर मन भैयां॥

मलार

कित बरखा आगम के डंबर बरसि असाढ के बदरा छाए ।
बन वेली सुख संतति मन हुलसत गाइनि तृन मुख आए ॥
आशा अवधि बधी जड जीवनि मोरनि कूक सुनाए ।
यों कहि के हरि हसत परस्पर बातनि रुचि उपजाए ॥
भोजन भयो अघाने भैया जमनोदक जल भाए ।
'कुंभनदास' गिरिधर मुख बीरी लै ग्वालिनी ढिंग आए ॥

मलार

गिरधर ढूंढत फिरी बन मांही ॥
मास असाढ भाग पथिकनि के कहूं घांम कहू छांही ॥
बादर बने मानों तंबुवास, जो देखहु चहुं घांही ।
नर नारी एकौ न मिले मोहिं मारग में कहू नांही ॥
गैयां देखि भया मन आनंद चिते हुती इकठाही ।
भूलि गई सकेत सघन वन, सौह बाबा की खांई ॥

वार्ता और पदों का पारस्परिक सम्बन्ध—

कुंभनदास के पद-संग्रह में ऐसे बहुत से पद हैं, जो उनकी वार्ता से सम्बन्ध रखते हैं। प्रस्तुत विषय में यह स्वीकार करना पडेगा कि-कुछ पद ऐसे है जिनके आधार पर वार्ता या प्रसगों की रचना हुई है, और कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिनके कारण पद-रचना हुई है। योंतो साधारण रूप में रचना के पूर्व किसी सूक्ष्म उत्थानिका की आवश्यकता रहती ही है-पर उस विषय का विस्तार वार्ता में आदि अथवा अन्त में निश्चित किया गया है-और वे पदरत्न सुवर्ण में जड़ दिये गये हैं।

प्रसङ्गोपात्त पद-रचना का उदाहरण-'टोंड के घना' का पद है, जब म्लेच्छोपद्रम की आशंका से श्रीगोवर्द्धनोद्धरण को 'टोंड के घना' जैसे बीहड स्थान में ले जाया गया था, 'कुभनदास-जो सख्य भक्ति का भी अनुभव करते थे-मार्ग की झझट और निवास की विषम स्थिति से प्रभु को व्यंग रूपमें सुना बैठा .—"भावत तोहि टोंड को घनो" [प्रद स. ३९५] इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है।

पदरचनोपरान्त प्रसङ्ग-निर्माण के सम्बन्ध में—"भक्त कौ कहा सीकरी काम" यह पद लिया जा सकता है। अकबर बादशाह ने गुणग्राहकता-वश

संगीत-कलादक्ष और भक्त कवि के रूप में कुभनदास का परिचय सुना और उन्हें फतहपुर सीकरी के राजदरबार में बुला भेजा। त्याग, विमनस्कता, और औदासीन्य ने संगीत की स्वरलहरी का रूप धारण किया, सम्राट् का सारा ऐश्वर्य प्रभाव-इस भक्त की त्याग एव निर्भय वृत्ति के आगे हतप्रभ और मूर्छित होकर रह गया। मूलस्थिति को लेकर वार्ता-प्रसग की रचना की गई। अस्तु.

इस प्रकार वर्ता प्रसंगों में आनेवाले कई पद वार्ताओं की प्राचीनता की पुष्टि भी करते हैं, तो कई पद वार्ता-प्रसगो की कलेवर की अभिवृद्धि। वार्ता-सम्बन्धी अध्ययन में इस पर विशेष दृष्टि देने की आवश्यकता है।

जैसा कि-वार्ताओ के त्रिविध सस्करण का निश्चय किया गया है-सबसे प्राचीन चौरासी वैष्णव की वार्ता सं १६९७ की लिखित प्राप्त होती है, जिसकी अष्टछाप-वार्ता का संस्करण इसी वर्ष कांकरोली 'विद्याविभाग' से प्रकाशित किया गया है। इस प्राचीन वार्ता और तदुत्तरकालीन वार्ताओं में कुभनदास के जिन पदों का उल्लेख मिलता है, उनका निर्देश करदेना यहा अप्रासगीक न होगा [2]

अष्टछाप के सभी कवियों के पदों की इस प्रकार की सूची उक्त सस्करण में दी गई है-यहाँ केवल कुंभनदास के पदो का परिचय कराने के लिये साथ में दी गई प्रतीक अनुक्रमणिका में उन प्रतीकों को बड़े अक्षरो से छापा गया है जिनका वार्ता-प्रसगों में उल्लेख मिलता है।

पदों का भावार्थ—

प्रस्तुत प्रकाशन में 'अर्थयुग' की यथार्थता को ध्यान में रखकर आर्थिक सहयोग देनेवाले कुछ महानुभावों के आग्रह को सार्थक करने के लिये ही गूढार्थ पदों का सरल भावार्थ प्रकाशित करने का व्यर्थ सा प्रयत्न करना पड़ा है। कहां भक्तकवि, महानुभावी, पदकार कुंभनदास के भावभरित गंभीर गेय पद [2] और कहाँ उनका नि सार भावार्थ प्राकृतिक सुषुमा-सम्पन्न आध्यात्मिक जगत की किसी सरस कुंज में स्वानन्दमग्न होकर रस-साक्षात्कार करने वाले गायक के गीतिमय काव्य का लोहलेखनी द्वारा गद्य में अर्थ लिखना मुझ जैसे अनधिकारी के लिये अशक्य असंभव और अपराध-सा है-पर विवशता है।

चाहिये तो यह था कि सुन्दर पदो पर सारगर्भित भाष्य की पद्धति पर कुछ लिखकर लेखनी को पवित्र किया जाता-पर भाषा-सारल्य की माग ने ऐसा न होने दिया। तीन चार वार की-काट-छांट ने जामा को कुछ का कुछ कर दिया। 'स्वयमसमर्थ. कथ परार्थान् साधयेत्' के न्याय से पाठको का कहाँ तक सन्तोष होगा ? भगवान् जाने। जैसे-तैसे पूर्ति कर दी गई है।

प्रकीर्ण पदो का अर्थ देना आवश्यक नही समझा गया है।

धन्यवाद—

प्रस्तुत प्रकाशन-व्यय में अहमदाबाद-निवासी भगवदीय सेठ श्रीचुन्नीलाल बुलाखीदास के सत्प्रयत्न से प्राय. अर्द्धांशरूप में आर्थिक सहयोग-प्राप्त हुआ है जो स्मरणीय है।

यद्यपि पुष्टिमार्गीय भावनानुसार सेवा के उपलक्ष में यश कामना और प्रत्युपकार की इच्छा स्वय सहायकों को नही है, फिर भी लौकिक व्यवहार-पूर्त्यर्थ-उसका प्रतिनिर्देश करना अप्रासंगिक नहीं है। ऐसे सज्जन धन्यवादार्ह हैं जो-साहित्य की सेवा में द्रव्य का समुचित सदुपयोग करते है—वि. विभाग निम्न लिखित महानुभावों का आभारी है।

(१) भगवदीय सेठ श्रीसाकरलाल बालाभाई अहमदावाद ने प्रथमत ग्रन्थ की ४०० प्रतियाँ वितरणार्थ खरीद कर साहाय्य प्रदान किया है।

(२) भगवदीय सेठ श्रीरतिलाल नाथालालभाई-अहमदाबाद ने ग्रन्थ की २०० प्रतियाँ वितरणार्थ खरीद कर साहाय्य प्रदान किया है।

मुद्रण—

अन्ततो गत्वा ग्रन्थ का मुद्रण 'अशोक प्रिंटरी' बडौदा के अधिपति सेठ श्रीरमणलाल नानालाल शाह द्वारा प्रारभ हुआ। कार्य बाहुल्य-व्यस्तता के कारण मूल पदों के मुद्रण में लगभग ६ मास लग गये। अत भावार्थ आदि मुद्रण का अवशिष्ट कार्य 'कबीर प्रेस' के अध्यक्ष पं. श्री मोतीदासजी चेतनदासजी को सौंपा गया। कहना न होगा कि लगभग दो मास के भीतर ही ग्रन्थ की छपाई समाप्त होने का सौभाग्य आ गया।

इस प्रकार अन्य कार्य-व्यावृत्तिवश एक वर्ष के सम्पादन और लगभग ६ मास के मुद्रण-काल के अनन्तर ग्रन्थ का प्रकाशन हो सका है। सुन्दर छपाई आदि के लिये दोनो महानुभाव सस्मरणीय हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन को लेकर अष्टछाप-साहित्य की लड़ी में अद्यावधि निम्न लिखित महानुभावी कवियों की रचनाएं प्रकाशित हो गई हैं जो-हिन्दी साहित्य के एक महान अंश की पूर्ति करती हैं :—

(१) 'सूरसागर'-सूरदासकृत। प्रकाशक-काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

(२) 'गोविन्दस्वामी'-[पद सग्रह] गोविन्दस्वामी कृत। प्रकाशक-विद्याविभाग काकरोली.

(३) 'नददास-ग्रन्थावली'-नन्ददासकृत [ग्रन्थ-संग्रह] प्रकाशक-विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

(४) 'कुभनदास' [पद-सग्रह] कुंभनदास कृत। प्रकाशक-विद्या-विभाग काकरोली.

अवशिष्ट चार अष्टछाप कवियों में 'परमानन्ददास' कृत 'परमानन्द सागर' [१५०० पद] सम्पादित कर लिया गया है। समुचित अर्थ-सौकर्य प्राप्त कर प्रकाशित करने की प्रतीक्षा में रखा हुआ है। इसके अतिरिक्त कृष्णदास का 'कृष्ण सागर' चतुर्भुजदास एवं छीतस्वामी तथा नन्ददास के पदों के संग्रह का प्रकाशन अवशिष्ट रह जाता है।

श्रीप्रभु के बुद्धि-प्रेरणानुग्रह द्वारा यह मनोरथ भी सफल होगा, ऐसी आशा सेवित करते हुए 'श्रीकुंभनदास' कृत भगवल्लीला-गुण-वर्णनात्मक उनकी पदरचना भगवान, उनके भक्त और भावुक साहित्य-रसिकों की सेवा में सादर समर्पित की जा रही है। इति शुभम्

बड़ौदा
शरदुत्सव
स. २०१०

विधेय,
पो. कण्ठमणि शास्त्री
सचालक,
विद्याविभाग, काँकरोली.
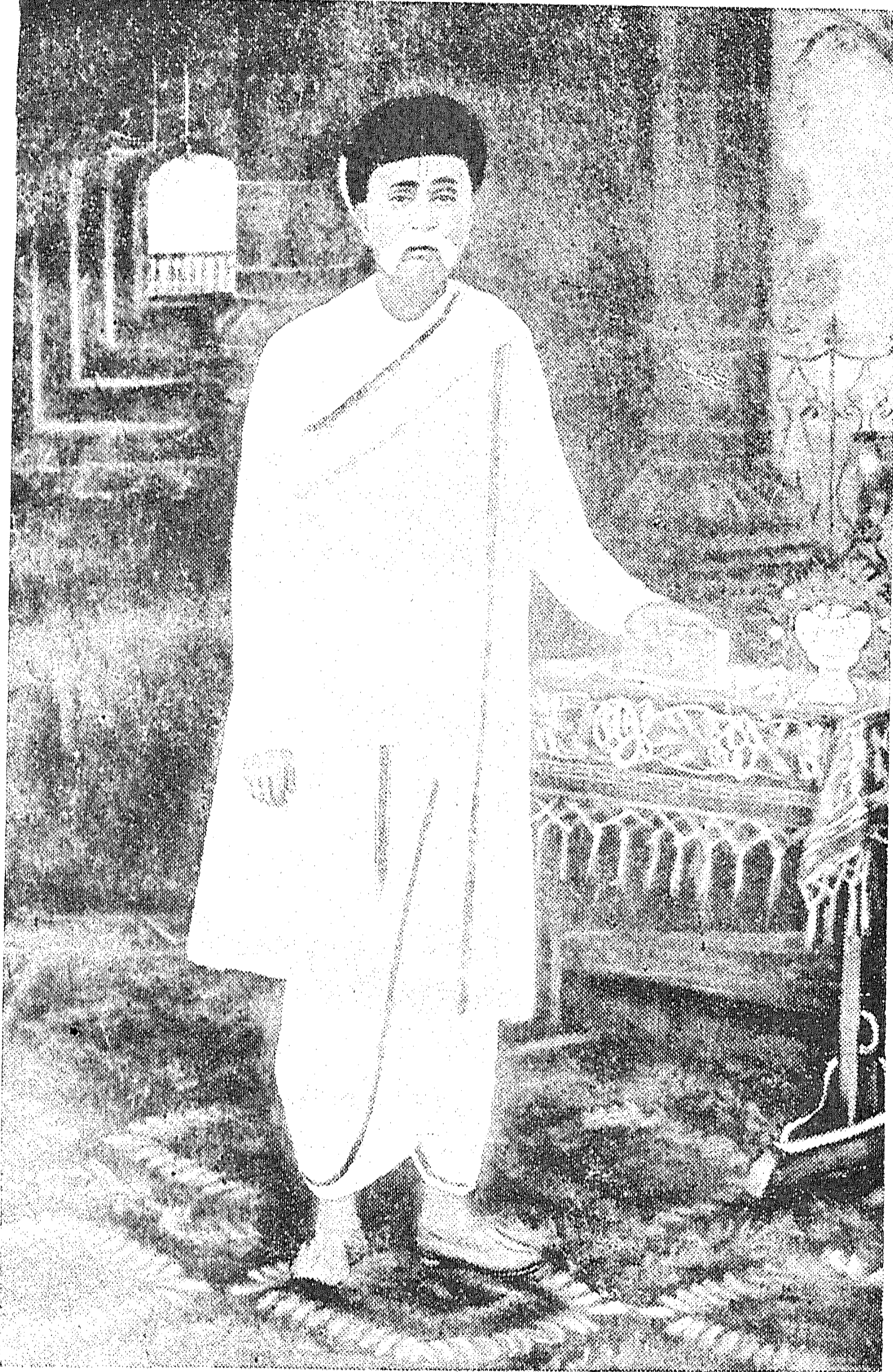
गो. वा. सद्गत सेठ श्रीत्रीकमलाल भोगीलाल
अहमदाबाद ना
स्मरणार्थ
सेठ श्रीरतिलाल नाथालाल ना
जय श्रीकृष्ण

दैवीसम्पत्तिके अन्यतम प्रतीक

— महानुभाव श्रीकुंभनदास —

[एक चारित्रिक विश्लेषण] —प्रो० कण्ठमणि शास्त्री—

लक्ष-लक्ष जागतिक जीवन-परम्परा की साधनात्मक अन्तिम ज्वलन्त ज्योति मानव-जन्म की प्राप्ति और उसका सदुपयोग, करुणावरुणालय स्वानन्दतुन्दिल श्रीप्रभु की परम कृपा की देन है। अन्यथा 'जायस्व म्रियस्व' की आपूर्यमाण परिस्थिति एक ऐसा प्रबल प्रवाह है जो-कभी अवरुद्ध नहीं होता, घर्घर रव करता हुआ निर्बाध अगाध धारा के रूप में बहता ही चला जाता है, जिसका न ओर दीखता है न छोर। वह मानव की बुद्धि से अपरिज्ञेय और उसकी शक्ति से अशक्य सतरण है।

लीलामय की ललित लीलाओ के परिदर्शनोपकार में सतत निरत, स्वय सतरण के दृष्टान्त, परकीय सतारण की साधन-सुलभता के सम्पादक, 'मनुष्याणा सहस्रेषु' के उदाहरण स्वरूप, लोकवन्द्य अनेकों महापुरुष समय-समय पर भूतल पर अवतरित होकर स्वीय आचरण और उपदेश की विविध ज्वलन्त ज्योतियो के द्वारा सृष्टि के पथ को सदा आलोकित करते रहते हैं-जो कष्टों से ऊबड खाबड, यातनाओ से अस्तव्यस्त एव बाधा और चिन्ताओ से टेढ़ामेढ़ा होता रहता है, और निराशा के सूचीभेद्य सतमस के कारण जहा कुछ भी परिलक्षित नहीं होता। उनकी इस दिव्य चेतना, प्रेरणा एव भावना से स्वरूपज्ञान का आलोक पाकर सहस्रश जीव आत्मिक उल्लास का परिदर्शन पाते, कृतकृत्य और धन्य होते आए हैं।

इसी मानवीय महनीयता की एक कडी भक्तप्रवर, कविवर, महानुभावी श्रीकुभनदासजी थे, जो-जगदुद्धारक, स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षम श्रीवल्लभ महाप्रभु के शिष्य और 'येषा त्वन्तगत पाप०' की प्रकाशमान परिभाषा थे। 'अभयं सत्त्वसशुद्धि' इत्यादि दैवी लक्षणो से लक्षित, 'विगतेच्छाभयक्रोध' के स्वच्छ आदर्श के रूप में उनका दिव्य जीवन हमें एक विलक्षण प्रकाश प्रदान करता है।

भौतिक विलास से चकचोंधिया देनेवाले महान् सम्राट अकबर के राजवैभवसम्पन्न, दबदबाभरे दरबार में "भक्त को कहा सीकरी काम" की तान छेड़ कर आश्चर्यचकित कर देनेवाला, "आवत जात पन्हैया टूटी" की पुट देकर वैभव पर तिरस्कार फेंकनेवाला, "जाकौ मुख देखत दु ख उपजत" की मूर्च्छना पर निर्भयता की ठोकर से शाहंशाह के हृदय को तिलमिला देनेवाला क्या साधारण यावदायुष्य जीनेवाला मर्त्य जन हो सकता है? नहीं, वह स्वय अभय की प्रतिष्ठा था। परिश्रमोपार्जित कृषिधान्य-बेजर और टेटी बेरों-से जीवनवृत्ति-निर्वाहक, राजा मानसिंह की ओर उदासीन रहकर परिहास में भी याञ्चावृत्ति दर्शाने वाली भतीजी को झिड़क देनेवाला 'सत्वसशुद्धि' का उदाहरण था, और भगवत्सान्निध्य में अमर गेय पदों की रचना के द्वारा जन-जन के साथ आत्मिक परम सुख का उपासक 'ज्ञानयोग' व्यवस्थिति का केन्द्र-बिन्दु था।

इस प्रकार वार्ता के अध्ययन से अनावश्यक भौतिक परिचय की अपेक्षा कुभनदास के दैवी गुणों का हमें अधिक परिचय प्राप्त होता है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के ८४ और प्रभुचरण श्रीविठ्ठलनाथजी के २५२ शिष्य वैष्णवों का महत्व इन्हीं दैवी सम्पत्ति के गुणों पर आश्रित है- सख्या के न्यौन्य और आधिक्य से उसे आँकना तथा इतिहास के जीर्णशीर्ण पत्रों से उसे टाकना एक बडी सी त्रुटि है।

प्रस्तुत पद-सग्रह के सम्बन्ध मे पद-रचयिता का इत्थम्भूत दिव्य परिचय और क्या दिया जा सकता है? निर्विकार रूप में चिरन्तन परिस्थित, आलोकमय, आदर्श यश काय के सम्मुख अशाश्वत पार्थिव परिचय कुछ महत्व भी तो नहीं रखता? फिर भी लेखिनी को पावन करने के लिये साधारणतया उसका दिग्दर्शन आवश्यक है, जो इस प्रकार है। —

जन्म और परिवार—

स १५२५ मे (का कृ. ११ के दिन) जमनावतौ (व्रजमण्डल) नामक ग्राम में इनका जन्म हुआ। श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्राकट्य वार्ता के अनुसार स. १५३५ में जबकि श्रीगोवर्द्धननाथजी का प्राकट्य हुआ था, कुभनदासजी की वय १० वर्ष की थी। अनुश्रुति के अनुसार कुभ-

---

* इनका जीवन वृत्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में स. ८३ और "अष्टसखानन की वार्ता" मे स ३ पर उपलब्ध होता है।

सक्राति के पर्व मे तीर्थयात्रा के समय इनके पिता को पुत्रप्राप्ति का आशीर्वाद किसी महात्मा ने दिया, जिसके सस्मरण मे इनका ' कुभनदास ' नामकरण किया गया था।

इनके पिता गौरवा* क्षत्रिय थे। पिता का नाम और परिचय प्राप्त नही होता। ' धर्मदास ' नामक इनके एक काका थे-जो एक धर्मशील व्यक्ति थे। सभवतः पिता के दिवगत हो जाने पर कुभनदासजी पर उनके काका की धार्मिक वृत्ति का अधिक प्रभाव पडा। 'परासौली' गाव के पास थोडी सी भूमि इस वश के अधिकार में थी, जहॉ रह कर यह अपना निर्वाह चलाते थे। कृषि के द्वारा ही कुटुम्ब का निर्वाह होता था। ' श्ववृत्ति ' [नौकरी] द्वारा जीवन-निर्वाह कुभनदासजी को अभीष्ट नही था। ' यावल्लब्धेन सन्तोष ' के अनुसार साधारण रूप मे कुटुम्ब का परिपालन कर लेने में ही इन्हे आनन्द एव आत्म-गौरव का अनुभव होता था।

धर्मदास की धार्मिक चर्या से बाल्यावस्था में ही भगवद्-भक्ति एव सदाचरण की ओर इनकी प्रवृत्ति हो गई थी। सासारिक वाद-विवादों, झगडा-झझटो और ईर्ष्या-द्वेष से जीवन को कटु बनाना उन्हे अभीष्ट नही था। उनको बाल्यकाल से ही गृहासक्ति नही थी। असत्य भाषण और पापकर्म से सदा दूर रहकर सीधे-साधे व्रजवासियो की रीति से रहना इनकी एक विशेषता थी। अध्ययनादि की न्यूनता होने पर भी कथा-शास्त्र-पुराणादि-श्रवण के द्वारा बहुश्रुतता और गभीर ज्ञान इन्हे प्राप्त हो गया था-यह मानना ही पडेगा। चाहे सत्सग से हो, चाहे अध्ययन से ? इनका साहित्य-सगीत-कला का ज्ञान पराकाष्ठा को पहुचा हुआ था, इसमे कोई शका नही है। पदरचना-शैली, सगीत-सेवा और प्रख्याति से सहज ही इस कथन की पुष्टि होती है।

समय आने पर इनका विवाह हुआ। ' जेत ' गॉव के पास ' बहुला वन ' में इनका ससुराल था। इनकी स्त्री यद्यपि साधारणतया ग्रामीण थी पर उस पर इनकी सगति का प्रभाव पडा, जिसके कारण इन्हें गृहस्थाश्रम कभी सेवा मे प्रतिबन्धक सिद्ध नही हुआ।

---

* मिश्र 'बन्धुओं'ने इन्हे गोरवा ब्राह्मण लिखा है जो-ठीक नहीं है। इनकी जाति और वश के कई लोग अब भी व्रज तथा मेवाड मे विद्यमान है।

शरणागति-दीक्षा—

स १५५० के आसपास महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जब अपनी परिक्रमा करते हुए झारखड में विद्यमान थे, श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्रेरणा से उनकी सेवा-प्रतिष्ठार्थ गिरिराज पधारे। यहाँ उनके अनेक व्रजवासी शिष्य हुए-जिनमें 'सदू पाडे', 'माणिकचद पाडे' और 'नरो भवानी' आदि मुख्य थे। इसके अनन्तर जब 'रामदास चौहान' को श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सौंपकर उसका प्रकार बढाया गया तब [सभवत स. १५५६ के लगभग] कुभनदासजी श्रीमहाप्रभु के शरण आए। उन्होंने 'अष्टाक्षर' और 'ब्रह्मसम्बन्ध' की दीक्षा देकर पत्नी-सहित कुभनदासजी को अपना शिष्य बनाया। दीक्षा और गुरु के सिद्धान्तोपदेश से कुभनदासजी पर अहेतुकी भक्ति का प्रभाव पडा। भगवल्लीलाओं की इन्हें स्फूर्ति होने लगी। सगीत-विद्या मे तो यह प्रवीण थे ही, कण्ठ भी मधुर था, निर्दिष्ट अवसर पर उपस्थित होकर यह श्रीनाथजी की अहर्निश कीर्तन-सेवा करने लगे।

पुष्टिमार्गीय भावपूर्ण सेवा के कारण इनके सात्त्विक हृदय मे दिव्य अनुभूतियो का प्रकाश होने लगा। नित्य नई पद-रचना और गायन के द्वारा प्रभु को रिझाने और उनके सुमधुर मुखारविन्द के दर्शन करने मे ही इन्हे परमानन्द प्राप्ति का अनुभव होने लगा। दास्य, वात्सल्य, सख्य एव माधुर्य भाव की ऊर्मियो ने इनके हृदय और जीवन दोनो को आप्लावित, रसपूर्ण कर दिया, जिससे हिन्दी-साहित्य में व्रजभाषा-काव्य की एक विशेष धारा को परिपुष्टि मिली।

स १६०२ के लगभग जब महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के स्वनामधन्य आत्मज, आचार्य गो. श्रीविट्ठलनाथजी ने 'व्रजभाषा के अष्टछाप' की स्थापना की, तब उसमें कुभनदासजी और उनके पुत्र चत्रभुजदासजी को सम्मिलित किया गया। इस अष्टछाप की स्थापना में तथाकथित साम्प्रदायिकता की मनोवृत्ति का पुट नही था। इसका वैशिष्ट्य, साहित्यिक पद-रचना के उत्कर्ष, भाव के माधुर्य, सगीत के सौष्ठव और भक्ति के उस प्राञ्जल दिव्य सौन्दर्य पर आधारित था जो-रक से-लेकर सम्राट् तक, गृहस्थ से लेकर त्यागी महात्माओं तक को मुग्ध करता था। राधावल्लभी

सम्प्रदाय के संस्थापक 'श्रीहित हरिवंशजी' का कुंभनदासजी के समीप आ कर पद सुनकर प्रशंसा करना इसी ओर संकेत करता है। *

कुंभनदासजी का परिवार बड़ा था। सात पुत्र, उनकी सात पत्नियाँ और एक विधवा भतीजी तथा दम्पति कुल १७ प्राणी थे। बड़े पाच पुत्र सांसारिक व्यवहारों में आसक्त थे, अत उनके प्रति इनका कोई ममत्व नहीं था +। छठे पुत्र कृष्णदास थे जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की गायों की सेवा किया करते थे। कृष्णदास गोरक्षा करते हुए सिंह के द्वारा आहत होकर 'हरिशरण' हो गये। सप्तम पुत्र चत्रभुजदास थे जो-अपने पिता के अनुरूप भक्त, साहित्यचतुर तथा कीर्तन-सेवा परायण हुए। अष्टछाप में इनका समावेश हुआ। भगवद्-भक्ति के कारण 'पुत्रे कृष्णप्रिये रति' के कथनानुसार कुंभनदासजी का चत्रभुजदास पर अधिक ममत्व था और वे इन्हे अपना 'पूरा बेटा' कहते थे। कृष्णदास को आधा बेटा कहा जाता था। जिसका कारण यह था कि-चत्रभुजदास जहाँ प्रभु की नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा दोनो में निष्ठ थे, वहा कृष्णदास केवल रूप-सेवा (गोचारण) में ही मग्न थे। इस प्रकार श्रीगुसांईजी के समय हास्यवार्ता-प्रसंग में इनके लिये 'डेढ़ पुत्र' की बात प्रचलित थी ×।

सात्विक जीवन—

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है-'कुंभनदासजी अपनी आजीविका कृषि द्वारा चलाते थे। धान्य की उपज के ऊपर ही आश्रित होने और

---

* देखो—अष्टछाप वार्ता—'कुवरि राधिका तू सकल सौभाग्य०' नामक पद और प्रसंग [पत्र २५८] कां० प्रकाशन।

+ सं १६९७ वाली वार्ता के अतिरिक्त अर्वाचीन अन्य वार्ताओं में कुंभनदासजी की स्त्री द्वारा शरण आने के अनन्तर श्रीवल्लभाचार्य से पुत्र-प्राप्ति का वर मांगने और महाप्रभु द्वारा सात पुत्र होने के वरदान का उल्लेख मिलता है, जो ठीक नहीं है। महापुरुषों द्वारा आशीर्वाद से प्राप्त पुत्र ऐसी साधारण कोटि के नहीं होने चाहिये जिनके प्रति कुंभनदास जैसे श्रद्धालु शिष्यों को वैराग्य हो? सन्तत्यर्थ वर-याचना का उल्लेख यदि सत्य माना जाय तो कृष्णदास के जन्म के पूर्व होना चाहिये। फिर भी 'सात' पुत्रों का कथन तो असंगत ही जँचता है।

× कुंभनदासजी की षष्ठ वार्ता [अष्टछाप पत्र २७०, कांकरोली प्रकाशन]

भगवदगुणगान के अतिरिक्त अन्य व्यासङ्ग से विमुख रहने, याञ्चा-वृत्ति का सर्वथा परित्याग करने के कारण कभी २ इन्हें विषम परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता था। महाराजा मानसिंह के प्रसग में वार्ता से स्पष्ट होता है कि-करील और बेर जैसे वृक्षो के फल से भी यह स्वकीय निर्वाह चला लेते थे। स १६२० मे मानसिंह के एक सहस्र स्वर्णमुद्राओं की थली, जमुनावता ग्राम का पट्टा और किसी साहूकार को इनका व्यय चलाते रहने के आदेश का इन्होने सहज परित्याग कर दिया था। राजा ने भी अपने जीवन में कई सन्त, महन्त, त्यागी और भक्तो का सग किया था, पर गृहस्थ त्यागी कुभनदासजी को देख कर तो वह आश्चर्यमग्न हो गया। कुभनदासजी की अपरिग्रह वृत्ति का राजा पर तब और भी प्रभाव पडा जब उसने कुंभनदासजी की भतीजी द्वारा कहे हुए "आसन खाइके आरसी पडिया पी गई" वाक्य का तात्पर्य समझा। सोने की आरसी (दर्पण) में देखकर तिलक करने की लालसा के अभाव और फिर कभी आकर तग न करने की स्पष्टोक्ति से राजा दंग रह गया, श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उसे वहाँ से विदा हो जाना पडा। *

प्रस्तुत प्रसग की अपेक्षा कुभनदासजी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना फतहपुर सीकरी का बादशाही दरबार था। कुभनदासजी की साहित्य, सगीत एव भक्ति की चन्द्रिका से भारतीय प्रांगण धवलित हो रहा था। स १६३८ मे गुणग्राही महान् सम्राट् अकबर के मन में उत्सुकता हुई और उसने राज्यवैभव के प्रखर आलोक मे सगीत की साधना को परखना चाहा। 'जमुनावता' गाव की धूलि से धूसरित होता हुआ-रथ, घोडा, पालकी आदि का शाही वाहन-परिकर दबदबे के साथ 'परासोली' के खेतो की मुडेर पर जा पहुंचा। कुभनदासजी को दरबार का आह्वान था।

"चित्तोद्वेग विधायापि हरिर्यद्यत्करिष्यति, तथैव तस्य लीला" इस गुरु-वाक्य के अभ्यासी ने इसे भी नटनागर की एक लीला समझी। घोड़ा और रथ के बैलों जैसे मूक पशुओ और पालकी के वाहक नरपशुओं को आधि-व्याधि पहुचाना क्या अच्छा काम था? फटी पाग, छोटी अंगरखी, पुरानी अँगोछी, ऊची धोती और टूटी पन्हैया, टेढी लकुटी लिये हुए वे पैदल ही हरिनाम गुनगुनाते हुए फतहपुर सीकरी जा पहुंचे। जडाव की रावटी,

---

* अष्टछाप वार्ता [पत्र २४६ से २५०] काक० प्रकाशन।

मोतियों की झालरों, सुगन्धि की लपटों, मखमली गलीचों तथा सोने चांदी के सिंहासनों ने माया, मोह, लालसा की अपेक्षा उनके वैराग्य को और भी उद्दीप्त कर दिया। श्यामसुन्दर के बिना यह सब वैभव-विलासमय दरबार में उन्हें काटने-सा लगा।

बादशाह अकबर के यथोचित आदर सत्कार को पाकर भी कुंभनदास-जी का उत्तप्त हृदय शीतल नहीं हुआ। संगीत सुनाने का निदेश पाकर उन्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा-संगीत का स्मरण हो आया। झुंझलाहट और विवशता का कडवा घूंट पीकर उन्होंने तानपूरा के तार झनझनाये, कुंठित अंगुलियों की ठोकर खाकर भी तारों ने अपनी मंजुल स्वरलहरी का परित्याग नहीं किया, श्रान्त तृषार्त कण्ठ के माधुर्य ने सारे दरबार को विमुग्ध कर दिया। " भक्त कौ कहा सीकरी काम " [पद सं ३९७] की धुन में दरबारी झूमने लगे। मानो बादशाह संगीत की धारा में बहता चला गया-पर सहसा वह-" जाकौ मुख देखत दुख उपजै ताको करनी परी प्रनाम " की कठोर चट्टान से जा टकराया। गुणग्राहकता की प्रख्याति-वश उसे सावधानतया धैर्य का अवलम्बन लेना पडा। पारितोषक के प्रलोभन पर मुंहतोड़ उत्तर पाकर तो उसे निर्भीक, त्यागी और निर्लोभी सन्त महानुभाव को सादर घर पहुंचा देने में ही निज श्रेय दीख पडा।

समय आने पर बादशाही साम्राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया पर कवि की स्पष्टोक्ति आज भी उनकी स्मृति को प्रदीप्त करती रहती है।+

कुंभनदासजी की इस अपरिग्रह, असंचय एवं अकिंचन वृत्ति द्वारा संभूत सीदत्कुटुम्बता का करुणामय प्रभाव एक बार प्रभुचरण श्रीविट्ठल-नाथजी पर भी पड़ा। उन्हें दृढ विश्वास था कि-सर्वस्व समर्पण कर देने-वाला शिष्य गुरु के द्रव्य को स्वीकार नहीं करेगा, अतः तीर्थयात्रा के व्याज से प्रदेश-परिभ्रमण में धनी-मानी वैष्णवों के द्वारा उसकी सहायता करा देने का विचार उनको आया। सं १६३१ में द्वारिका-यात्रा में साथ चलने के उनके आदेश को कुंभनदासजी कैसे टाल सकते थे? राजभोग सेवा के अनन्तर गिरिराज के समीप में ही 'अप्सराकुण्ड' पर सायंकालीन विश्राम हुआ। प्रातःकाल आगे कूच करने का निश्चय था। अनिश्चित काल के लिये क्षणिक विप्रयोग की ऊष्मा से ही कुंभनदासजी के हृदया-काश में विरह की अकाल जलद-घटा घिर आई। " कहिये कहा कहिवे

+ देखो-अष्टछाप वार्ता [पत्र २२७-२३] का०क० प्रकाशन।

की होइ " [पद–स. ३६२] और " किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे " (पद स ३३७) की झझावात के चलते ही नेत्र–नीरदो से झरझर बरसा होने लगी। गृह–यात्रियो का पारिकरीय वातावरण करुणा से गीला हो गया। श्रीगोवर्द्धन–धरण के एक पहर भर के वियोग की व्याकुलता देख द्रवित होकर श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण को भी वापिस लौट जानेकी कुभनदासजी को आज्ञा देनी पडी, " गुरोराज्ञा बाधन " के अपराध एव प्रभु की विप्रयोग–व्यथा दोनो से बचकर कुभनदासजी को जिस आन्तरिक परमानन्द की उपलब्धि हुई वह–" जो पै चोप मिलन की होइ " [स २२१] इस पद से मूर्तिमती होकर प्रत्यक्ष हो उठती है। *

अष्टछाप के कवियो से कुभनदासजी सब से अधिक दीर्घजीवी थे। परोपकार और भगवद्भक्ति के बिना वे जीवन का मूल्य ही क्या समझते थे? उत्तमश्लोक वासुदेव के चिन्तन के अतिरिक्त जीवन का जो भी क्षण बीतता है–वह एक–अपूरणीय हानि, महच्छिद्र, और बृहद् विभ्रम है–यह सिद्धान्त था जो–कुभनदासजी जैसे भगवद्भक्तों का ध्येय है। अत कहना होगा कि उन्होने अपनी आयु का अधिकाश क्या सर्वांश ही स्वकीय ध्येय–प्राप्ति में सफलतया व्यतीत किया था। जीवन के ११५ वर्षों में १०–११ वर्ष ही उनके खेल–कूद बाल्यकाल से व्यतीत हुए होगे। श्रीवल्लभाचार्य के द्वारा पुष्टिमार्ग में शरण आने के पूर्व भी भगवत्कथा–व्यासङ्ग, सत्संग और सदाचार वृत्ति से उनका समय व्यतीत होता था। दीक्षा के अनन्तर तो उन पर कुछ ऐसा रग चढा जो–वे भक्ति की पराकाष्ठा रूप भगवल्लीलाओ का साक्षात्कार करने लगे। शरण आने के समय से ही इनकी इस लीलानुभूति के पद सुनकर स्वय महाप्रभु श्रीवल्लभ ने इनके भाग्य को सराहा और सदा हरि–रसमग्न रहने का आशीर्वाद दिया था। ×

स. १६४० के लगभग एक दिन नित्य सेवा का लाभ लेते हुए वे भौतिक शरीर का परित्याग कर यश कायाधारी हो गये। भगवत्सान्निध्य और लीला–साक्षात्कार की प्रबल लालसा ने उनके तनुनवत्व का सपादन कर दिया। प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथजी का वरद आश्रय पाकर भगवद्–गुणगान करते वे दिव्य शाश्वत लोक को पदार्पण कर गये, जिसे आम्नाय में " यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम " इन शब्दों से अभिव्यक्त किया जाता है।

* अष्टछाप वार्ता [पत्र २६०–६९]। × अष्टछाप वार्ता [पत्र २११] काक० प्र०।

एक भाव-विश्लेषण

*

क गोकुलानद तैलंग.

अष्टछाप की अमर काव्य-वाणी ने भारतीय साहित्य मे जो अविरल रस-निर्झरिणी प्रवाहित की है, वह भारतीय वाङ्मय के लिये ही नहीं, विश्व-साहित्य के लिये एक अनूठी देन है। अष्टछाप के महानुभावो ने 'अष्टसखा' के रूप में जहा अपने सुहृद् वृन्दावन-विहारी के साथ सख्य-भाव की प्राप्ति की हे, वहा उन्हे अविरल अगाध भक्ति-भावना का अनुगामी एक सरस कवि-हृदय भी मिला है, जो उसी मनमोहन की विश्व-विमुग्धकारिणी वेणु-स्वर-लहरी से प्रतिक्षण अभिगुञ्जित रहता है और जिसके साथ उनकी काव्य-वाणी ने स्वर में स्वर मिला कर समग्र जन-जीवन को अनुपल अनुप्राणित करने की अपूर्व क्षमता पायी है।

इन महानुभावों में एक ओर उस नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में गहन आसक्ति है-तन्मयता है-भाव-विभोरता है, तो दूसरी ओर जगत् के सुखमय भासमान् यावन्मात्र पदार्थों के प्रति एक गहरी विरक्ति है। इसी अनुराग और विराग के अद्भुत सम्मिश्रण के साथ उनकी वाणी-वीणा से अविरत निस्सृत भाव-गीतों की धारा ने काव्य-कला का प्रशस्त आधार लेकर भावुक भक्त, कवि और कलाकारो के समक्ष साहित्य-सङ्गीत-कला के एक मनोरम कल्पना-रूप को प्राण-प्रतिष्ठा दी।

इस प्राणवान् त्रिवेणी-सङ्गम-साधना ने एक ऐसा पावन केन्द्र-बिन्दु दिया है, जिसमें जन-जन की बिखरी भाव-धाराएँ एकत्र परिनिष्ठित हुई और उनके सामने एक दिव्य पुण्य आराध्य की साकार सजीव प्रतिमा खड़ी हो गयी-एक ओर नटवर-वेष नन्दनन्दन मुरली-मनोहर के रूप में और दूसरी ओर युगल प्रिया-प्रियतम, श्याम-श्यामा रूप में। इस आराध्य के प्रति सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार, इन त्रिविध रूपो में अष्टसखाओ की पुनीत भावना प्रस्फुटित हुई। इन महानुभावों ने इसी त्रिविध भावना से समय-समय पर निज-निज रुचि के अनुरूप मधुर गीति-धारा बहायी और सभी ने उसमें गति एव जीवन देकर जन-जन का अशेष कल्याण सम्पादन किया।

परम भावुक कवि 'कुम्भनदास' का इन अष्टसखाओं में एक अन्यतम स्थान है। वे 'यशोदोत्सङ्गलालित', 'गोप-गोकुल-नन्दन' और 'गृहीतमानसा-व्रजश्री-रमण—श्रीकृष्ण की इन त्रिविध स्वरूपों की विविध व्रजलीलाओं के दर्शक, उपासक और अन्तरङ्ग सखा हैं। अतएव उनका काव्य भी वात्सल्य, सख्य, और शृङ्गार-इन तीनों भावनाओं से भीगा और पगा हुआ है। तथापि उनके काव्य के निकट अनुशीलन से यह सहज विदित होता है कि-उनका मन श्यामा-श्याम की निकुञ्ज-लीला और युगल-भावना में अधिकाश रमा है। इसमें कवि की रूपासक्ति और गोपी-भाव-विभावित विरहासक्ति की तीखी अभिव्यञ्जना सवलित है देखिये—

जब वे पावस की सघन-घन-घटाओं के बीच श्यामा-श्याम की युगल-लीला का भाव-तन्मयता से अनुचिन्तन करते हैं, तो मानो वे अपने को कालिन्दी के कल-कूलों पर एक अन्तरङ्ग सखी की भांति खड़ा पाते हैं और उनके अन्तरतम को युगल-स्वरूप के मधुर-दर्शन की उत्कट लालसा विरहाकुल कर उठती है। उनके हृदय-वीणा के सोए तार मानो इन भावों को लेकर झङकृत हो उठते हैं—

> भींजन कब देखोंगी नैना।
> दुलहिन जू की सुरंग चूनरी मोहन को उपरैना॥
> स्याम'स्याम कदँब तर ठाढ़े जतन कियो कछु मैं ना।
> 'कुम्भनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर जुरि आई जल-सैना॥
>
> [पद स १०१]

कवि का चिर-वियोग-तप्त उन्मथित हृदय अन्तर्पीड़ाओं की उमड़ती घुमड़ती धुआधार श्याम घटाओं से ढँक जाता है। उसके अन्तर की अधित्यका में घुटती-सिमटती धारा-प्रवाहिनी रस-वर्षा उसके सन्तप्त लोचनों के मार्ग से प्रेमाश्रुओं के रूप में प्रस्रवित हो जाती है और तब उसे मानो 'सुरग-चूनरी' और 'उपरैना' से विलसित कदम्ब तले खड़े श्यामा-श्याम प्रत्यक्ष दर्शन दे देते हैं। प्रिया-प्रियतम के अनुराग-राग-सम्वलित सुरग-सौन्दर्य की लालिमा कवि के सजल लोचनों को अनुरञ्जित कर देती है। एक ओर तो वर्षा के सजल जलदों का गगनव्यापी समूह और दूसरी ओर कवि के हृदय-प्रदेश से उमड़ने वाली 'जल-सेनाएँ'-ऐसा न हो कि वह

इस प्रेमाश्रु-प्लावन में बह जाय ! इसीलिये वह अपने त्राण के लिये प्रभु 'गोवर्द्धनधर' की शरण मे आकर आर्त्तभाव से कृपा-याचना करता है। इस युगल-दर्शन के लिये भी तो कवि मानता है कि 'जतन कियो कछु मै ना'—अर्थात् उसके आराध्य की अहैतुकी कृपा की ही यह देन है, उसका अपना प्रयत्न कुछ नही। यही तो 'अनुग्रह-मार्ग' वा 'पुष्टिभक्ति' का सिद्धान्त है और कवि उसका साधक पथिक।

इस प्रकार कुम्भनदास बेसुध और विह्वल दशा मे अहर्निश श्यामसुन्दर की सौन्दर्य-सुधा का निर्निमेष दृष्टि से पान करते हुए छके रहते है। किसी रूप-ठगी, थकी-सी, चित्र की लिखी-सी व्रजाङ्गना के शब्दो मे ही उनके रस-लोभी हृदय को परखिये—

लोचन मिलि गए जब चारयौ।
व्है ही रही ठगी-सी ठाढ़ी उर अचर न सभारयौ॥
अपने सुभाइ नदजू के आई सुदर स्याम निहारयौ।
टगटगी लगी चरन गति थाकी जिउऽव टरत नहिं टारयौ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सौं घर कौ काज बिसारयौ।
'कुभनदास' गिरिधर रसलोभी भलौ तैं आरज पथ पारयौ॥
[पद स. १९८]

व्रजराजकुमार नन्दनन्दन की रूप-माधुरी में मोहिनी और मादकता ही ऐसी है कि-एक पल भी जिसने उसका आस्वाद लिया-'आखे चार' हुई कि वह अपना आपा भूल जाता है-नेत्र और चरणो की गति तो ठीक, हृदय भी उसमे अटक कर, ठिठक कर रह जाता है। फिर कैसा गृह-काज, कैसा 'आरज-पथ' और कैसी लोक-लाज !!

कुम्भनदास में भी यही रूपासक्ति है। उनके प्रभु अपरिमित सौन्दर्य-निधि हैं—ऐसी निधि जो अनुपल नवीन, विलक्षण, और विकासमान है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग की अनुक्षण नूतन कान्ति, उनके सौभाग्य-सीमा की परिमिति तथा इयत्ता बताने मे उनकी दृष्टि और कल्पना असमर्थ है—उनकी ही थकित वाणी में—

छिनु-छिनु बानिक और हि और।
जब देखों तब नौतन सखि री दृष्टि जु रहति न ठौर॥

कहा करों परिमिति नहीं पावत बहुत करी चित दौर ।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग सींवा गिरिधरधर सिरमौर ॥
[पद स १५१]

अनन्त सृष्टि के अणु-अणु के सौन्दर्य-द्रष्टा कवि की उन्मुक्त उड़ान भरी कान्त-कल्पना भी इस माधुर्य के आगे पङ्गु और पराभूत हो गयी !

ऐसे निस्सीम नित-नूतन लावण्य को भला कवि का तरल हृदय कैसे भूल सकता है ? मिलन और वियोग दोनो ही क्षणों में उस रूप-मदिरा को पीकर उसकी आखो से प्रेमोन्माद छलकता रहता है-हृदय से वह माधुरी मूर्ति किसी भी क्षण टाले नही टलती। वियोग के क्षणो का रूप तो और भी सजल और मञ्जुल हो जाता है। प्राणो के अन्तरतम से उठी हुई मूक पीड़ा की कसक सम्पूर्ण अङ्गो में एक सिहरन और कम्पन पैदा कर देती है। किसी विरहिणी व्रजाङ्गना की गद्गद वाणी में ही कवि के विरहाग्नि-सन्तप्त उद्गार सुनिये—

कहा करों उह मूरति मेरे जिय ते न टरई।
सुंदर नंद कुँवर के बिछुरें निसिदिन नींद न परई ॥
बहुविधि मिलनि प्रान प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई।
वे गुन समुझि-समुझि चित नैननु नीर निरंतर ढरई ॥
कछु न सुहाइ तलावेली मन, बिरह अनल तन जरई।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई ॥
[पद स. २१४]

कितनी बेबसी है ? प्राणप्यारे की 'बहुविधि मिलनि' के बीते मधुर क्षणो की मादक स्मृतियां कवि-हृदय की अलसाई भावनाओ को कितनी गहरी वेदना के साथ अँगडाइया लेने को विवश कर देती है। आखों में समाई साँवली सलोनी मूर्त्ति भला नीद को अवकाश क्यो देगी ? फिर जहा निरवधि वियोगाश्रु-सलिल का स्रोत उमड़ा करता है और प्रियतम के विरह की धूँ-धूँ ज्वाल-मालाएँ रग-रग, प्राण और आत्मा को झुलसा रही हों, वहाँ 'तलावेली' का क्या कहना ? इस उन्मनता का शमन 'लाल गिरिधर' के ही हाथ है ! 'सुन्दर नन्दकुंवर' में आकर्षण और उनके गुणों में मोहिनी ही ऐसी है। प्रेम की इसी तीखी पीर का अनुभव करके ही तो वे प्रेम-बटोहियों को सावधान कर रहे हैं—

प्रीति तौ काहू सों न कीजै ।
बिछुरत कठिन परै मेरी माई कहु कैसे के जीजै ॥
रति-रति कै करि जोरि-जोरि कै हिलिमिलि सरबसु दीजै ।
एक निमिष सम सुख के कारन जुग समान दुख लीजै ॥
'कुभनदास' इह जानिबूझि कै काहे बिखु जल पीजै ।
गोवर्द्धनधर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥
[पद स २२२]

युग-युग की सञ्चित अनुराग-निधि को-हृदय की सरल और तरलतम भावनाओ को, जिन्हे कण-कण करके सहेजा गया है, मिलन के अल्पकालीन क्षणो में सर्वस्व-समर्पण के रूप में अपने प्रियतम को सौंप देना और दूसरे ही क्षण में उन्हें बिछोह के शून्य रिक्त पलो में हार देना-कितनी विडम्बना है । एक पल के सुख के बदले में युग-युगीन अतृप्ति और पीड़ाओ को समेटना है-अमिय तुल्य मिलन का अवश्यम्भावी परिणाम है, वियोग-विष की जलन-यह जानते हुए भी, सर्वाङ्ग मे उस जलन और तड़पन की टीस देनेवाले विपाक्त विरहानल को अङ्गीकार कर लेना कितना करुण और जीवन के अस्तित्व के लिये घातक हैं । कुभनदास-से भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकते हैं ।

किन्तु इन भोले प्रेमियों से कोई पूछे कि-फिर जान-बूझ कर इस ' बिखु-जल ' के लिये तुम्हारा हृदय क्यो लालायित है ? " प्रीति तो काहू सों न कीजै " के शब्दो में उन्मुक्त उद्घोष वा निषेधादेश करनेवाले भक्त के हृदय में फिर भी उस ' सुन्दर स्याम मनोहर, के साथ केलि की एक अतृप्त लालसा होती है-कितनी विलक्षण और अनिवार्य स्वाभाविक स्थिति है-

कब हौं देखि=हौं भरि नैननु ।
सुन्दरस्याम मनोहर इह अँग-अँग सकल सुख दैननु ॥
वृन्दावन बिहार दिन-दिन प्रति गोप वृन्द संग लैननु ।
हँसि-हँसि हरखि पतौआ पीवनु बांटि बाटि पय फैननु ॥
'कुंभनदास' किते दिन बीते किये रैनि सुख सैननु ।
अब गिरिधर बिनु निसि अरु बासर मन न रहत क्यों हू चैननु ॥
[पद सं ३३४]

कितनी बेचैनी, कितनी तन्मयता है ! वृन्दावन-विहारी की विविध लीला-माधुरी के दर्शन के लिये नेत्रों में कितनी उत्कट प्यास है-आकुल उत्कण्ठा है ! एक-एक निमिष कोटि-कोटि युग-कल्पों के समान बीत रहा है-उन गिरिधर सुन्दर-श्याम के बिना। कवि की उस वियोग-कथा को मार्मिक पीड़ा को कौन जान सकता है ? ये विष के बुझे विरह-बाण मर्मस्थल को सीधा ही बेधते हैं और विरही का रग-रग उनकी चोट से सिहर उठता है। यह वर्णनातीत है-वाणी से परे की अनुभूति है, तथापि एक क्षीण आभास तो इन शब्दों से प्रतिबिम्बित होता ही है—

विरह-बान की चोट जु जाहि लागे सोई जाने।
भोगइये ते समुझि परे जिय कहे कहा माने॥
जैसे कांड सु बधिक चनकटि होत हैं विखु साने।
मरमत नख सिख अंग ततछिनु थोरेहु ताने।
होत न चैनु निमिष निसि बासर बहुत जलद आने।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु बिथा कौन माने॥
[पद स. ३३६]

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट कतिपय पदों के भाव-विश्लेषण से सहृदय जन समझ सकेंगे कि व्रजलीला के रसिक-भक्त, कवि-हृदय कुंभनदासजी काव्य और भक्ति के क्षेत्र में, गीति-लालित्य के तरलित आधार पर अष्टछाप के कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। विप्रलम्भ शृंगार से उनका काव्य विलसित है, जिसमें तदाकार, तद्रूप होकर वे अपने प्रियतम श्याम-सुन्दर के सौन्दर्य-सुधा-सागर में सतत सर्वदा अवगाहन, निमज्जन करते रहते हैं ! !

विषय-सूची

ॐ ग्रन्थ के उत्तरार्ध मे पदसख्या के अनुसार ही भावार्थ दिया गया है ।

[मूल पदों की क्रमसंख्या और विषय के अनुसार भावार्थ देखा जा सकता है]
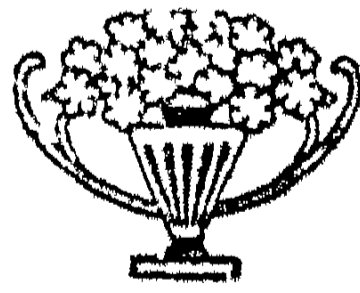
सेठश्री साकरलाल बालाभाई (अहमदावाद) ना
जय श्रीकृष्ण

अ. सौ. चंपाबेन सेठश्री साकरलाल बालाभाईनां धर्मपत्नी

(अहमदावाद) ना

जय श्रीकृष्ण

‘ कुंभनदास ’

वर्षोत्सव

मंगलाचरण—

१

[श्रीराग

जयति जयति श्रीहरिदासवर्य-धरने,
वारि-वृष्टि निवारि, घोष-आरति टारि
देव-पति-अभिमान-भंग करने ॥

जयति पट पीत दामिनि रुचिर, वर मृदुल अंग
सांवल सजल जलद-वरने ॥
कर अधर वेनु धरि, गान कलरव सुशब्द,
सहज ब्रज-जुवतिजन-चित्त हरने ॥

जयति वृंदाविपिन-भूमि डोलनि,
अखिल लोक-वंदिनि अंबुरुह चरने ॥
तरनि-तनया-विहार नंदगोप-कुमार,
‘ दास कुंभन ’ नवय तवसि सरने ॥

जन्मसमय (बधाई) —

२ [कान्हर।

भयो सुत नन्द के चलो ब्रज-जन सबै
होत मंगल, सकल जगत को तिमिर मिटि गये।
तन की त्रिविध ताप सुन्यो काननि जबै ॥
उडत नवनीत, दूध, दधि, हरद, तेल
बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै ॥
'दास कुंभन' प्रगट गिरिवर-धरन
यहै सुख कोउ दिन भयो नाहीं कबै ॥

३ [रायसा

सब ब्रज अति आनँद भयो प्रगटे गोकुलचन्द।
भाग्य सोहागिनि जसुमती पुन्य-पुंज बाबा नंद ॥
भादों कृष्ण पक्ष आठे निशा रोहिणी नक्षत्र बुधवार।
ब्रज-जन करत कुलाहल निरखत नंद-कुमार ॥
गृह-गृह ते गोपनि सबै आए राइ-दरबार।
नाचत हेरी गावही, ग्वाल करत किलकार ॥
हरद, दूध, दधि माटनि बहुविधि लै जु उठाइ।
सब मिलि पकरत नंदै हरषित नाच नचाइ ॥
सुन्दरी गान करति सबै सुढार मिल्यो है समाज।
ताल, पखावज बाजही तूर, नगारे बाज ॥
कान परत सुनिये नहीं रह्यो घोष सब गाज।
ब्रज-जन देत असीस हैं, 'जियो ढोटा ब्रजराज' ॥
जाचक जुरि सब आए जै-जै शब्द उचार।
देत दान सनमान सों कीन्हे सब सत्कार ॥
फूले आनँदराइजू, फूली जसुमति माइ।
गोद लिए हुलसति बडी कमलनैन सुखदाइ ॥

फूली श्रीजमुना बहै, फूले श्रीगिरिराइ।
फूल्यौं श्रीवृंदा-विपिन व्रज-मंडल हरषाइ॥
फूले कीर्ति, वृषभानजू प्रगटी सुंदर जोर।
'दास कुंभन' की जीवनि जियो राधा नंदकिशोर॥

पलना —

४ [रामकली]

पलना झूलत गिरिधरलाल।
जननी जसोदा बैठी झुलावति, निरखति वदन रसाल॥
बालक-लीला गावति, हरषित देति करनि सों ताल।
'कुंभनदास' बड भागिनि रानी वारति मुक्ता-माल॥

५ [बिलावल]

रतन खचित कंचन को पलना, ता-मधि झूलत गिरिधरलाल।
जसुमति हरषि झुलावति, गावति सुंदर-गुन दै-दै कर ताल॥
करि गुलगुली हँसावति हरि कौं, कबहुँक मुख सों चुंबति गाल।
'कुंभनदास' किलकत नँद-नंदन अंगुरी गहिके सिखवति चाल॥

छठी —

६ [धनासिरी]

आजु छठी जसुमति के सुत की चलो बधावन जैए माई!।
भूषन वसन साजि, मंगल लै सकल सिंगार बनाई॥
सलिय बात सब करी वेद-विधि सुत जायो नँद-रानी।
पुन्य पूरन फल प्रगट भयो है, निरखति नैन अघानी॥
सब व्रज मे सुख-रास भयो है गृह-गृह होत भलाई।
'जुग-जुग राज करो गोकुल मे नंद-सुवन सुखदाई॥'
पूरन काम भए निज-जन के जीवेंगे जसु गाई।
'कुंभनदास' प्रभू की जननी निरखि-निरखि सुख पाई॥

राधाष्टमी (बधाई) —

७ [सारंग]

राधेजू[1] सोभा प्रगट भई।
वृंदावन गोकुल-गलियनि में सुख की लता छई ॥
प्रति-प्रति[2] पद संकृत गोवर्धन, उपमा उपजति नई।
'कुंभनदास' गिरिधर आवहिंगे आगे पठै दई ॥

८ [गंधार]

प्रगटी नागरि रूप-निधान।
निरखि-निरखि फूलति व्रज-वनिता नांहिन उपमा कों आन ॥
उपमा कों जे जे कहियतु हैं ते जु भए निरवान।
'कुंभनदास' लाल[3] गिरिधर की जोरी सहज समान ॥

९ [देवगंधार]

यह सुख देखो री! तुम माई!
बरस गांठि वृषभान-लली की बहुरि कुसल सों आई ॥
आगम के दिन नीके लागत सबहिन मन सचु पाई।
धन बड भाग रानी कीरति के पुन्य-पुंज-निधि पाई ॥
प्रगटी लीला सकल या व्रज में आनंद-वेलि बढाई।
'कुंभनदास' की जीवनि राधे! जसुमति-सुत-सुखदाई ॥

श्याम-सगाई—

१० [धनाश्री]

परम कुलाहल होइ श्रीवृषभान कें [टेक]
प्रगटी कुवँरि श्रीराधा जाकें आनंद-निधि सुखदाई।
सुनि गोपी मन मुदित भईं अति घर-घर बजति बधाई ॥ श्रीवृष०।

१ हो गवलि राधा प्रगट भई (व ६/४) श्री राधा सोभा० (वं १४/२)
२ रति-पति. (व २/२) ३ गिरिधर कारन यह जोरी (वं २/८)

भवन-भवन प्रति कलस विराजित, बंदन-माल बंधाई।
साजि सिंगार चलीं व्रज-वनिता भान-भुवन में आईं॥ श्रीवृष०।
कीरति-सुता-वदन विधु देख्यो, निरखि-निरखि सुख पाई।
प्रेम मगन गावति वृज-सुंदरि प्रफुलित मन हरषाई॥ श्रीवृष०।
नन्दीस्वरतें नंद जसोदा गोपनि न्योंति बुलाए।
लली-जन्म सुनि नँद अति आनंदे कीन मनोरथ मन भाए॥ श्रीवृष०।
बल मोहन को उवटि न्हवाए रुचि-रुचि कियो सिंगार।
पट भूषन नौतन पहिराए शोभा बढी अपार॥ श्रीवृष०।
पीत चोलना श्याम-कटि सोभित पहिरेंपीत झंगुलिया सुदेस।
पीत कुलह सिर ऊपर राजति मन हरलियो नरेस॥ श्रीवृष०।
पग नूपुर रुनझुन करें, कटि छुद्र घंटिका सोहै।
मुक्ता के आभूषन ऊपर कुंडल-झलक सब जग मोहै॥ श्रीवृषभ०।
बाँहनि बाजूबंद, कडा जटित कर, अंगुरिनि मुदरी राजै।
जगमगात हीरा ज्यों चिबुक छबि निरखत रवि लाजै॥ श्रीवृष०।
मोतिन लर तुर्रा सिर सोहत, लटकि, करें मृदु हास।
कर्यो सिंगार विविध बिधि नित मन बढत हुलास॥ श्रीवृष०।
चले कुवँर · लै बरसाने कों प्रफुलित मन व्रज-राज।
व्रज-जन व्रज-रानी गोपिनि लै निकसी मंगल साजि समाज॥ श्रीवृष०।
प्रेम मुदित गावत गीतनि सब ब्रज बरसाने आए।
श्रीवृषभान कीरति रानीजू अति आदर करि पधराए॥ श्रीवृष०।
कुशल सबै पूंछत नँदजू की निरखि नैन भरि आए।
देखो या बालक की लीला कोटिक विघन नसाए॥ श्रीवृष०।
गिरि-प्रताप तें सब सुख लहियतु, जहँ हरि प्रगट दिखावत रूप।
हमरी लली, तुम्हारे लालन यह जग जाए परम अनूप॥ श्रीवृष०।
तुम जो-हमारे भवन पधारे भाग्य वडो है आज।
बरसानो रमणीक देखियतु निरखत सकल समाज॥ श्रीवृष०।

भीतर भवन पधारिये नंदजू कनक-पटा बैठाए।
कीरति कन्या महरि-गोद दै निरखि-निरखि सचु पाए ॥ श्रीवृष० ।
गोद लियो जसुमति के सुत कों निरखि नैन सिराई ।
अपनी कुवँरि जसुमती-गोद दै दोऊ उनकी लेत बलाई ॥ श्रीवृष० ।
सुनो महरि! आपुन बडभागिनि, देखो- एसी निधि पाई।
विधना ने आपुन दोऊ जन की तन की तपत बुझाई ॥ श्रीवृष० ।
करि भोजन की पांति सबनि कों कनक-पटा बैठाए।
ढिंग-ढिंग धरीं सबनि को झारी जमुनोदक भरि लाए ॥ श्रीवृष० ।
कचन थार अरु स्फटिक कटोरा, प्रथकु-प्रथकु करि राखे ।
परोसनहारि पुरोहित रस-हित अमृत वचन मुख भाखे ॥ श्रीवृष० ।
बूंदी सेव मनोहर लडुआ, मगद और मोहनथार।
खुरमा, खाजा, जलेबी, फेनी, घेबर घृत तरेज अपार ॥ श्रीवृष० ।
गूंझा, मठरी, सकरपारा, तवापुरी रसभीनी ।
उडद दार पूठन भरि हींग देकरि कचौरी कीनी ॥ श्रीवृष० ।
उपरेठा को खांड पागिके चन्द्रकला रुचि लाई।
सिद्ध करी रस घृत सों पूरित जेवत अति सचु पाई ॥ श्रीवृष० ।
खासापूरी, खरमडा, खोवा बासोंदी और मलाई ।
बिविध भांति पकवान बनाए साजी बहुत मिठाई ॥ श्रीवृष० ।
कनक वरन बेसन व्यंजन अति कहाँ लगि करों बडाई।
बिविध भांति मेवा जु परोसे आम, अमरस अधिकाई ॥ श्रीवृष० ।
खटरस केउ प्रकार अनगिनत, कहत न आवै पार।
जेंवत सकल समाज सहित सुन्दर व्रज-राजकुमार ॥ श्रीवृष०
जेंइ रहे तब सखरी मंगाई अति रस घृत-भीने ।
दार, कढी अरु पिठोर पकौडी, पापर अति मरसीने ॥ श्रीवृष० ।
भेडी, परवर और साक सब-भाजी हींग छोंकारी।
सो जेंवत रुचि उपजी सबकें, स्वाद बढ्यो अति भारी ॥ श्रीवृष० ।

भोजन कियो सबन सुख मानी, सब मिलि अँचवन कीनो ।
हस्त अँगोछि बीडी कर लीनी पान खात सुख दीनो ॥ श्रीवृष० ।
इहि विधि छप्पन भोग कियो सब भयो जु मन-आनंद ।
कुवँर कुवँरि मुख चन्द निहारत कटत सकल दुख-दंद ॥ श्रीवृष० ।
श्रीवृषभान और नंद सब मिलि महामहोच्छव कीनो ॥
नाचत, गावत बिवस भए सब प्रगट्यो प्रेम प्रवीनो ॥ श्रीवृष० ।
भान कहत रानी कीरति सों-हरषि कुवँरि की करो सगाई ।
नन्द-गृह बालक अतिसय सुन्दर जोरी परम सुहाई ॥ श्रीवृष० ।
इतनी सुनत कीरती कुवँरि को जसुमति-गोद बैठाई ।
जसुमति लालन कीर्ति-गोद दै कुवँरी मुदित खिलाई ॥ श्रीवृष० ।
कीरति कही- महरि ! यह लली लला की सगाई कीजै ।
हिलि मिलि के नैननि कौ यह सुख सदा निरंतर लीजै ॥ श्रीवृष० ।
जसुमति कह्यो नद के आगें- कीरति श्रीवृषभाने ।
सुनत सगाई की बातनि सों आनंद उर न समाने ॥ श्रीवृष० ।
कीरति बोलि सबै ब्रज-नारी व्याह के गीत गवाए ।
सुनि सबहिन मन हरष भयो अति भए मनोरथ मन-भाए ॥ श्रीवृष० ।
आज्ञा लै जु चले नँद गृह कों कान्ह कुँवर बल-संग ।
खेलत ख्याल करत गैलनि मे मन मे बढी उमंग ॥ श्रीवृष० ।
पहुंचे जाइ नंदीस्वर कों वृषभान पठायो करन सगाई ॥
स्यामसुंदर की करी सगाई हरषित वधू वृद्ध बुलाई ॥ श्रीवृष० ।
देति असीस सबै मिलि जुवती- सुबस बसो ब्रज-राई ।
चिरजीवो वृषभान-सुता अरु स्यामसुदर सुखदाई ॥ श्रीवृष० ।
को बरनै यह नंद-कुमार गुन लीला ललित अपार ।
रोम-रोम रसना करो, कोउ कवि कहत न पावै पार ॥ श्रीवृष० ।
लाडिली लाल-पदरज उर राखि गावै 'कुंभनदास'।
मागों निरंतर दोउ कर जोरि सदा रहों चरननि के पास ॥ श्रीवृष० ।

दान-प्रसंग—

११ [देवगंधार]

गोपीप्रति प्रभुवचन—

हमारो दान दै गुजरेटी !
नित तू चोरी बेचति गोरस आजु अचानक भेटी ॥
अति मतराति क्यों बछुटेगी बडे गोप की बेटी ।
'कुंभनदास' गोवर्धन-धारी भुज ओढ़िनी लपेटी ॥

१२ [देवगंधार]

आजु उहै बन जाइवौ ।
उह मारग आवति दधि बेचन, छीनि सबै दधि खाइवौ ॥
उहै बन घास बहुत देख्यो है, तामें गांइ चराइवौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर मोहिं कह्यो राधा-रंग रंगाइवौ ॥

१३ [धनाश्री]

आजु दधि देखौं तेरौ चाखि ।
कहे धौं मोलु कितै बेचैगी, सत्य वचन मुख भाखि ॥
जोई तू कहै सोई हौं दैहौं, संग-सखा सब साखि ।
जो न पत्याइ ग्वालिनी हम कौं कठसरी लै राखि ॥
लै संग चले घर दाम देन कौं, तब हि [1]जनायो कटाखि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर सरवसु दियो तताखि ॥

१४ [सारंग]

दान दै रसिकिनी ! चली क्यों जाति है ।
सुनो तुम ग्वालिनि ! आइ मेरी बात
पिए दधि दूध विधि दे ग्वालनि अघाति है ॥

१ जनायो नेकु कटाखि (क)

नैन की सैन मों मीन लज्जित भए
पहिरी तन कंचुकी लिपटी गाति है ॥
पगनि नूपुर बजें, मांग मोतिनि सजें,
भरे जोबन जोर, अग न समाति है ॥
बैन मुख सों बोल, नेकु घूंघट खोल.—
यह सुनि ग्वालिनी मन हिं मुसकाति है ॥
कुचनि अंचल ढांकि, लगी मोतिनि पांति
भरे रस कलस दोउ, मदन ललचाति है ॥
नेकु रस चाहिए अंचल के कलस कौ।
कृपा करि प्यारी ! अब कहा कछु बाति है ॥
स्यामसुंदर लह्यो 'दास कुंभन' कह्यो
सोंह व्रजराज की, दान-दधि खाति है ॥

१५ [सारग]

गोपीप्रभुप्रति वचन .—

जान ब देहु, छांडहु मेरो अंचलु लालन! होति है अवार।
घर ते चले आजु बडी बेर भई मोहि सुंदर नंद-कुमार ! ॥
कालि दधि जमाइ भली भांति सों तुम कों लाइहों बडी सबार[१]।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर ! तुम ह्यांई बैठे रहियहु इहै बिचार ॥

१६ [सारग]

काहू तुम चलन न देत इहि बटियां।
रोकत आइ स्याम घनसुंदर ! निकसत हीं गिरि-घटियां ॥
तोरत हार, कंचुकी फारत, मांग निहारत पटियाँ।
पकरत बांह मरोरि नंद-सुत ! गहि फोरत दधि-चटियां ॥
'कुंभनदास' प्रभु कब दानु लीनों ? नई बात सब ठटियाँ।
गिरिधर ! पांइ परिये[२] तुम्हारे, जानत हो सब गटियां ॥

१ पूजिये (क) २ बडी वार (ख)

१७ [सारग]

इह तौ एक गांउ कौ वास।
केतकु लै बचिये सखि! दिन-प्रति निमिख न छांडत पास॥
इह घाटी पैंडो सब व्रज कौ, नांहिन और निकास।
नँद-नंदन कौ सहज थान ह्यो, बालक-संग विलास॥
कबहुँक भाजन लेत छीनि हठि, कबहुँ करत दधि-नास।
कबहुँक भुज गहि चलत कुंज लै, इह गति कहिये कास॥
बोलि न सकौं सकुच अति जिय मे, लोक-लाज कौ त्रास।
गिरिधर लाल! जानि पाए हो, जानत 'कुंभनदास'॥

१८ [बिलावल]

अरी! इह[1] दान जु लैहैं रस गो-रस कौ, यही हमारौ काज।
हम दानी तिहुं लोक के, चारों जुग मे राज॥
बहुत दिननि की गई अछती दान हमारौ आज।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर वृन्दाबन मे गाज॥

१९ [बिलावल]

गोपीप्रति गोपीबचन —

यह कौन है री! याहि दान न देहैं गोवर्धन के गैंडे।
हाटनि, गामनि, खेत, मडैया कान्हर डोलत ऐंडे॥
बाप देत कर कंस रजा कों, पूत संगाती डोलत मैंडे।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर चले जाउ किन पैंडे॥

१ इह दान, [ख]

२० [देवगधार]

मदन गोपाल हठीलो री ! माई !
कौन वेर भई हम ठाढी हैं, रोकै कुंवर कन्हाई ॥
दान दिये बिनु जान न दैहों तुम्हें वृषभान-दुहाई।
काहे कों रारि बढावति सुंदरि ! देहु हमारो दान चुकाई ॥
दान ही दान कहा कहो मोहन ! इह कैसी वरियाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवद्धन-धर मुसकि ठगौरी लाई ॥

२१ [देवगधार]

मथनियां आनि उतारि धरी,
दान अटपट मांगत ढोटा दोउ कर जोरि खरी ॥
जब नँदलाल चीर गहि झटक्यो, तब मैं बहुत डरी।
'कुंभनदास' प्रभु दधि- बेचन की बिरियां जानि टरी ॥

२२ [सारंग]

दान व्रजराज कौ लाडिलौ लेत है ॥
धरें सिर माट दधि चलो वाही डगर
व्है इक ठौर, करत सॅंकेत है ॥
गई ग्वालिनी प्यभरि सांकरी खोरि,
तहां देखे स्याम ठाढे बात कछु कहत हैं ॥
हॅसी मुख मोरि जब एक अंचलु गह्यो,
छांडु अंचल अबै दान तोहिं देत हैं ॥
आइ पूंछत लाल कहां की ग्वालिनी जाति मिस ही
निकरि, कहति हम सबै वृषभानपुर ही बसत हैं ॥
'दासकुंभन' प्रभु स्यामसुंदर ! सकल पियो-
दूध, दधि, तहां ग्वाल संग बहुत लहत हैं ॥

दानलीला —

२३ [बिलावल]

गोकुल की[1] ब्रज-नारि दह्यो नित बेचन आवैं ।।
भूषन विविध सिंगार बनी अति परम सुहावैं ।। (टेक)
एक तें एक बिराजहीं सोभा बरनि न जाइ ।
बन्यो कुंज फूल्यो सखी ! हो रंग-रस धर्‌यो है बनाइ ।।१।।
कहति ब्रज-नागरी ।।

प्रात उठे नँदलाल सखा सब सैन बुलाए ।
सुनी (है) दान की बात, सकल आतुर उठि धाए ।।
पेडो रोक्यो जाइके कालिंदी के तीर ।
नवल कुंज सुख-दाइका हो तहां बैठे बल-वीर ।।२।।
कहति[2] ब्रज-नागरी ।।

बन मे देखे स्याम सकल मिलि भईं इक ठाईं ।
लागीं करन बिचार अबै कहा करि हो माई ! ।।
या मारग तुम छांडिके और हि मारग जाहिं ।
इहि[3] ढोटा है नंद कौ, सो छीनि-छीनि सब खाहिं ।।३।।
कहति ब्रज-नागरी ।।

सुनिके धाए ग्वाल रोकिके ठाढी कीन्ही ।
कहां जाहुगी भाजि, दुहाई नँद की दीन्ही ।।
दान कृपा करि दीजिये, छांडो अधिक सयान ।
लाग हमारौ लेहु अब, आली ! राखो तेरौ मान ।।४।।
कहत नद-लाडिलौ ।।

कब तुम लीन्हो दान, कबै तुम भए जु दानी ?
सुनी न कब हूं बात, जाइ बूझौ नंद-रानी ।।
उदर बसे तुम देवकी, आए गोकुल भाजि ।
जीए[4] जूठौ खाइके हो अब क्यों नहिं आवै लाजि ।।५।।
कहति ब्रज-नागरी ।।

१ तें २ चली. ३ इहा तो ढोटा नद. ४ अब ही जेहो खाईके (३६/४)

जोवन कौ अति गर्व ग्वालि ! तू बोल सँभारी ।
दही, दूध के मद सु देति है हम कों गारी ?
नंद-दुहाई करत हों, लेउं सबनि कों लूटि ।
भूषन, वसन छिडाइके हो हार[१] सबनि के टूटि ॥६॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

लेत लूट कौ नांउ, कहा कोउ तेरी चेरी ?
कब लीन्हो तुम दान ?, कबै जु दुहाई फेरी ?
सिर पर राजा कंस है, बोलो बचन विचारि ।
जो अब के सुनि पाइ है तो दुख पावै नँद-नारि ॥७॥
कहति व्रज-नागरी ॥

तुम हो ग्वालि ! गँवारि कहा मोकों समुझावै[२] ?
सिव, विरंचि. सनकादि निगम मेरौ अंत न पावै ॥
भक्तनि की रच्छा करों दुष्टनि कौ संहार ।
कंस केस धरि मारि हों सो धरनी उतारों भार ॥८॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

बंधन पाए मात, तबै क्यों न ऐसी कीन्ही ?
मथुरा छांडी राति, सरन गोकुल में लीन्ही ॥
बहुत बडाई करत हो सोचो मन हिं विचार ।
खाए आघे वेर के हो सो वन[३] मे होत कुमार ॥९॥
कहति व्रज-नागरी ॥

तप करिके नँद-नारि मांगि मो पे वर लीन्हो ।
बचन वेद वपु धारि, आइ गोकुल सुख दीन्हो ॥
तुम कहा जानो बावरी ! हम त्रिभुवन-पति राइ ।
जो[४]व जलस्थल मे वसै, सो घट-घट रह्यौ समाइ ॥१०॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

---

१ ओर सबनि के टूटि (३६/४) २ डर पावै (२२/१२) ३ सो वत होत (बंध ३६/४)
४ जीवजल (पाठ)

जो–तुम ऐसे कान्ह ! करत क्यों घर–घर चोरी ।
मैं झगरी जब जाइ लियो पीताम्बर छोरी[1] ।।
तनक दही के कारने बांधे जसुमति मात ।
हम निज बंध छुडावही, सो बोलत कहा इतरात ? ।।११।।
कहति व्रज–नागरी ।।

नल कूबर के हेत जानि हम आपु बधाए ।
तोरे तरुवर जाइ, बचन मुनि सत्य कराए ।।
मन मे सोचो राधिका ! चीर–हरन की बात ।
नगन जमुना तें निकसिके मो आईं हा हा खात ।।१२।।
कहत नंद–लाडिलौ ।।

ढीठ भये तुम कान्ह ! बचन बोलत जु कठोरे ।
वन हिं चरावो गांइ, फिरो ग्वालनि–संग दोरे ।।
वा दिन विसरे सांवरे ! छाक हिं चुनि–चुनि खात ।
ऐंडे–ऐंडे जात हो सो–बोलत कहा इतरात ? ।।१३।।
कहति व्रज–नागरी ।।

अवनि–असुर अति प्रबल मुनीजन–कर्म छुडाए ।
गऊ संतनि के हेत, देह धरि व्रज मे आए ।।
जेते संगी ग्वाल हैं, ते ते सब हैं देव ।
हमनि गर्व इन्द्र कौ हरयो सो करत तुम्हारी सेव ।।१४।।
कहत नंद–लाडिलौ ।।

बन मे बोलत बोल कहा अब मोहि सुनावै ?
जानों तेरी रीति कहा बलवंत कहावै ।।
जो एसे हो सांवरे ! तो काटौ वसुदेव–फंस ।
सात बालक जब मारियों हो तो क्यों न मारयौ–कंस ।।१५।।
कहति व्रज–नागरी ।।

१ कोरी (बध ३६/४)

केसी कंस हिं मारि, बंध वसुदेव छुडाऊं।
उग्रसेन कों राज देउं, कर चंवर दुराऊं॥
भुवन चतुर्दस गावही अहनिसि अतुल प्रताप।
मल्ल कुवलया मारि हों, सो तोरोंगो गहि चाप॥१६॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

कहा अधिकाई देत कान्ह हौ नीके जानों?
जाति-पांति-कुल-रीति कछू हम ते नहिं छानों॥
लरकनि के संग खाइके नांउ धर्‍यो है ग्वाल।
अब कैसें दधि खाउगे, सो- हम तो हैं व्रज-बाल॥१७॥
कहति व्रज-नागरी॥

दधि-भाजन लेऊं छीनि कंठ-मुकावलि तोरों।
धरों पानि पर पांइ भले नव तनिया तोरों॥
तुम ग्वालिनि वृषभान की, हम हैं नंद-कुमार।
जाके बल पर आई हो- सो तापे जाउ पुकार॥१८॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

हम हैं जाति अहीर दह्यो नित बेचन आवें।
सुन्यो न दधि कौ दान कहा अब नई चलावें?॥
तुम अनवीगे सांवरे! रोकत हो वन मांहि।
या मुख सों दधि खाउगे, सो- बैठि कदम की छांहि?॥१९॥
कहति व्रज-नागरी॥

ग्वालि! नचावति नैन-सैन सूधे नहिं बोलति।
हम अनवीगे नांहि, तुम हि अनवेगी डोलति॥
जब ते व्रज में हौ भयो, तब तें लीन्हो दान।
जाइ कहो व्रजराज सों हो दूरि करों अभिमान॥२०॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

टेढी बांधी पाग स्याम! टेढे रहो ढाढे।
रोकत हो व्रज-नारि रावरे घर के वाढे॥
जाके आसरे पाइके भले बने हो? नाथ!
सखा भाजि सब जाइंगे तेरे कोउ न आवै साथ॥२१॥
कहति व्रज-नागरी॥

एसो भूपति कौन? जो- हम पे हाथ उठावै।
बंदीजन जुग वेद पढै, द्वारे नित गावै॥
ब्रह्म-रूप उतपति करों, रुद्र-रूप संहार।
विष्णु-रूप रक्षा करों, सो मैं हो नंद-कुमार॥२२॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

जो- तुम एसे ब्रह्म हमारे छीके ढूंढो?
घर-घर माखन खाइ कान्ह! तिरियनि-संग खूंढो॥
तुम हिं दोस नहिं सांवरे! जाए काली रात।
वन में ब्रह्म कहावहीं सो-क्यो तजे पिता अरु मात?॥२३॥
कहति व्रज-नागरी॥

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सबै मेरी ठकुराई।
हौ वृंदावन-चद रह्यो सब मांझ समाई॥
तू जो वदति है बावरी! मेरो कहा है नांउ।
गज[1] पिपीलिका आदि दै हो सब ही मेरौ ठांउ॥२४॥
कहत नंद-लाडिलौ॥

दधि-खैवे की बात मांगि खुधेर्ड लीजे।
काहे करत विवाद लाल! ऐसी नहिं कीजै॥
जो-ऐसे बलवंत हो तो मथुरा लेन किन जाहु?
कंस मारि घर आहुगे हो तब मेरौ दधि खाहु॥२५॥
कहति व्रज-नागरी॥

१ गजद पछद विपील ये हो सो है मेरौ ०। (पाठ)

सुनु राधे ! नवनारि ! जबै हौ मथुरा जैहों ।
करनो है बहु काज, फेरि गोकुल नहिं ऐहों ॥
कौतकु देख्यौ चाहही, अबहिं दिखाऊं तोहिं ।
अबकौ गयो नहिं आइ हों फिरि देखौ नहिं मोहिं ॥२६॥
कहत नंद-लाडिलौ ॥

काहेकों मथुरा जाहु, वैन ऐसे नहिं बोलो ।
हम तुम रहे समीप सदा गोकुल मे खेलो ॥
दही, दूध की को गनै नित प्रति मांगो दान ।
तुम्हे लाज या बात की सो हमें होत अति[1]मान ॥२७॥
कहति व्रज-नागरी ॥

तुम अबला अज्ञान हमारे कृत्य न जानों ।
पठयों काली देस, कियो दावानल पानों ॥
सुरपति व्रज पर कोपियो गिरिवर लियो उठाइ ।
वन हिं बकासुर मारियो हो बालक वच्छ छुडाइ ॥२८॥
कहत नद-लाडिलौ ॥

मुदित भई व्रज-नारि दह्यो लै आगें राख्यौ ।
ग्वालनि दीन्हों बांटि, रह्यौ[2] प्रभु आपहि चाख्यौ ॥
प्रीति पुरातन जानि मिली वृषभान-कुमारी ।
तन मन अरप्यौ[3] स्याम कों सो बस कीन्हें गिरिधारी ॥२९॥
कहति व्रज-नागरी ॥ (?)

तुम त्रिभुवन-पति नाथ ! करो सोई जिय भावै ।
तुम्हरे गुन अरु कर्म कछू हम कहत न आवै ॥
सेस सहस्र मुख गावहीं ध्यान धरें त्रिपुरारि ।
हम अहीरि व्रजवासिनी हो क्यों हू करि पावे पारि ॥३०॥
कहति व्रज-नागरी ॥

---

१ अभिमान (३६/४). २ कछू एक आपुन चाख्यौ (३६/४) ३ सौंप्यौ (३६/४)

राधाकृष्ण–विवाद परस्पर गाइ सुनावै ।
मन–वांछित फल होइ हिदै के ताप समावै ॥
स्यामा स्याम विराजहीं अवलोके सुख–रास ।
यह बानिक मो–हिय बसो हो बलि २ 'कुंभनदास' ॥३१॥
कहत नंद–लाडिलौ ॥ (१)

दशहरा —

२४ [सारंग]

आजु दसहरा सुभ दिन नीकौ ।
गिरिधरलाल जवारे पहिरत, बन्यौ है भाल कुमकुम कौ टीकौ ॥
मात जसोदा करति आरती, वारति हार देति मोतिनि कौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर त्रिभुवन कौ सुख लागत फीकौ ॥

२५

धनि दिन आजु विजय–दसमी कौ ।
ग्वाल बाल सब बनि–बनि आए, नंद–नँदन तामें सोभित नीकौ ॥
लाल पाग झीनी रंग भीनी, ता–मधि लसत मृग–मद कौ टीकौ ।
'कुंभनदास' प्रभु श्रीविट्ठलेस, पूजत वृच्छ समी कौ ॥

रास —

२६

मोहन मधुर कूजत वेनु ।
सरस गति संगीत उघटत, धरत मन नहिं चैनु ॥
जाइ मिलिए प्रानपति सों अंग व्याप्यौ मैनु ।
'दास कुंभन' लाल गिरिधर, चली सब सुख दैनु ॥

२७ [बिलावल]

चलहि राधिके ! सुजान, तेरे हित सुख-निधान,
रास रच्यौ कान्ह तट-कलिंद-नंदिनी ॥
निर्तत जुवती-समूह, रागरंग अति कुतूह,
बाजति रस-मूल मुरलिका अनंदिनी ॥

बंसीवट निकट तहां, परम रमन भूमि जहां,
सकल सुखद वहत मलय वायु मंदिनी ॥
जाति ईषद विकास, कानन अतिसय सुवास।
राका-निसि सरद-मास विमल चंदिनी ॥

'कुंभनदास' प्रभु निहारि, लोचन भरि घोष-नारि,
नख-सिख-सौन्दर्य काम-दुख निकंदिनी ॥
विलसहु भुज ग्रीवा मेलि, भामिनी सुख-सिंधु झेलि,
गोवर्द्धन-धरन-केलि जगत वंदिनी ॥

२८ [गौडौ-इकताल]

कमलनयन प्यारे अवघर तान जानत।
अलग सों लग, अरु राग सों रागिनि, बहुत अनागत आनत ॥
रसिक-राइ सिर-मौर, गुनिनि मँह गुनी तुम हिं जानत।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर हरत लाल सब कौ मन, जब गानत ॥

२९ [श्रीराग-चर्चरीताल]

गोपाल[1] तरनि-तनया-तीर रास-मंडल रच्यौ,
अधर कल मधुर सुर[2] बैनु बाजै ॥
जुवति-जन जूथ-संग नृत्तत अनेक रंग,
निरखि अभिमानु तजि काम लाजै ॥

१ तरनि तनया-तीर (क) २ धुनि (क)

स्याम तनु पीत कौसेय, सुभ पद नखनि-
चंद्रिका सकल भुव-तिमिर भाजै ॥
ललित अवतंम, भ्रुव धनुष, लोचन चपल-
चितवनि जनु मदन-बान माजै ॥
मुखर मंजीर, कटि किंकिनी कुनित रव
बचन गंभीर जनु मेघ गाजै ॥
'दास कुंभन' नाथ हरिदासवर्य-धर
नख-सिख सुरूप अद्भुत बिराजै ॥

३० [केदारा]

पूरत मधुरे[1] बैनु रसाल ।
चारु धुनि वह सुनत स्रवननि, विमोही ब्रज-बाल ॥
राज रितु, गिरि गोवर्धन-तट रच्यौ रास गोपाल ।
देखि कौतकु चंद भूल्यौ, तजी पश्चिम चाल ॥
थकित सुर, मुनि, पवन, पसु, खग, सुधि न रही तिहि काल ।
'दास कुंभन' प्रभु हरचौ मन गोवर्द्धन-धर लाल ॥

३१ [केदारा]

गोविंद[2] करत मुरली-गान ।
अधर कर धरि स्याम सुंदर सप्त सुर बंधान ॥
विमोही ब्रज-नारि[3], पसु, पंखि सुनैं दै धरि कान ।
चर स्थिर[4] हो फिरत चल, सब की भई गति आन ॥
तजि समाधि जु मुनि रहे, थके[5] व्योम विमान ।
'कुंभनदास' सुजान गिरिधर रची अद्भुत ठान ॥

---

१ मधुर (ख) २ मोहन (वव ९/२ ५५). ३ बाल (क) ४ स्थिर रह्या फिरें अचल. (क)
५ सब थके व्याम (क)

३२ [मालवगौरौ]

रास-मंडल बने गिरिवर-धरन लाल।
सुभग यमुना-पुलिन अति प्रफुलित कदंब,
सरद्-निसि चंद् निरखि थकित व्रजबाल ॥
भूषन, बसन अंग-अंग नौतन सखी!
चले दोऊ मदन करत अधर पान।
बनी गौर स्याम-छवि कोटिक सोभा--
कहा कवि कहै? 'कुंभनदास' जिय जान ॥

३३ [मालवगौरौ

रास-विलास रंग भरि नाचत नवल किसोर, नवीन[1] किसोरी।
एक हि बैस, रूप सम एक[2] हि गिरिधर स्याम, राधिका गोरी ॥
नव पट पीत, अरुन नव भूषन, नव किंकिनि कटि-तट धुनि थोरी।
सकल सिंगार विचित्र[3] बिराजित मानहु सोभा-त्रिभुवन चोरी ॥
तान, बंधान, मान रव सों मिलि[4] बिधिना रची सरस जोरी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर सुरति-केलि कंचुकी छोरी ॥

३४ [केदारौ]

रास-रंग नृत्य मान अद्भुत गति लेत तान,
जमुना-पुलिन परम रवन गिरिवर-धरन राजै ॥
वनिता सत-जूथ मंडल गंडनि पे झलकें कुंडल,
गावत केदार राग, सप्त सुरनि साजै ॥
दोऊ स्यामा-मध्य मोहन रचित मरकत मनि कंचन खचित,
सिथिल बसन कटि-तट ते आपुने हाथ साजै।
'कुंभनदास' प्रभु नव रंग सकल कला गुन-निधान,
स्वर-जाति हि लेति स्यामा अंग हि अंग बिराजै ॥

१ नवल (क) २ सम एक, गिरिवरन स्याम (ख) ३ बिराजित मानो सोभा त्रिभुवन की है चोरी (क) ४ रव समिलित (क)

३५ [केदारौ]

गावति गिरिधरन-संग परम मुदित रास-रंग,
उरप, तिरप लेत तान नागर नागरी ॥
सरि-गम-पध-धनि, गम-पधनि, उघटित सप्त सुरनि,
लेति लाग, दाट, काल अति उजागरी ॥
चर्वन ताम्बूल देत, ध्रुव ताल हिं गति हिं लेत,
गिडि-गिडि तत-थुंग-थुंग अलग लाग री ॥
सुरति-केलि रास-विलास बलि-बलि ' कुंभन दास '
श्रीराधा नंद-नँदन वर सुहाग री ॥

३६ [केदारौ]

चलहु नव नागरी रूप गुन-आगरी,
रास ठान्यौ स्याम सुभग जमुना-तीर ॥
साजि भूषन सकल, मुदित कर मुख कमल,
बिविध सौरभ मिल्यो पहिरि दच्छिन-चीर ॥
अधर मुरली लसैं, प्रान तोमें बसैं,
नाहिं भावै कछु, बढी अति स्मर-पीर ॥
जाइ मिलि बिमल मति, छांडि सब आन गति,
ज्यों-जिय सुख लेहु मीन पावै नीर ॥
कटि जटित पीत पट, सीस लटकत मुकट,
कुनित भर कुसुम-मध्य मधुप, कोकिल, कीर ॥
' दास कुंभन ' प्रभु सप्त सुर सों मिले--
गावत हैं केदारौ राग गिरिवर-धरन धीर ॥

३७ [मालव]

नाचति रास में गोपाल-संग मुदित घोष-नारी ।
तरु तमाल स्यामलाल, कनक-बेलि प्यारी ॥

चल नितंब, किंकिनि कटि लोल, बंक ग्रीवा।
राग, तान, मान-सहित बेनु-नाद सींवा ॥
स्रम-जल-कन सुभग धरे रैनि-रंग सोहैं,
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर व्रज-जुवतिनि मोहैं ॥*

३८ [केदारौ]

नव रंग दूलह रास रच्यौ।
आसपास व्रज-जुवती राजति सुघर राग केदारौ सच्यौ ॥
ललितादिक मृदंग बजावति तान-तरंग, सुरंग खच्यौ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाग, दाट मिलि नीकें नच्यौ ॥

३९ [बिलावल]

मंजुल कल कुंज-देस, राधा हरि विसद वेस,
राका कुमद-बधु सरद-जामिनी ॥
सांवल दुति कनक मग, बिहरत मिलि एक सँग
मानों नील नीरद-मधि लसति दामिनी ॥
अरुन पीत पट दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ सीतल अनिल मंद-मंद गामिनी ॥
किसलय-दल रचित सैन, बोलत पिक चारु बैन,
मान-सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी ॥
मोहन मन्मथन-मार, परसत कुचनि विहार,
वेपथु जुत बदति नेति-नेति भामिनी ॥
'कुंभनदास' प्रभु केलि, गिरिधर सुख-सिंधु झेलि
सौरभ त्रैलोकनि की जगत-पाविनी ॥

* 'कृष्णदास' छाप से भी प्राप्त-मुद्रित [वर्षोत्सव पद स. जे आ ट्रस्ट बबई]

४०

[श्रीराग]

यह गति नांचि–नांचि लई ।
वृन्दावन मे रास–विलास सुख बाढत सई ॥

भांति–भांति राग गावत सुर अलापत कई ।
उरप, तिरप, मान लेत ताता–तत–थई ॥

स्यामसुदर करत क्रीडा प्रेम–घटा छई ।
'कुभनदास' प्रभु गिरिधर छिनु–छिनु प्रीति नई ॥

४१

[सारग]

या ते तू भावति मदन गोपालै ।
सारग रागै सरस अलापति, सुघर मिलत इक तालै ॥

अतीत, अनागत, अवघर आनति, मस्रक कंठ भरी (इक) चालै ।
अलप, सुलप, सच बहु मिलवति, किंकिनी कूजत जालै ॥

'कुंभनदास' प्रभु रसिक–सिरोमनि सोहति रतिपति–बालै ।
गावति हस्तक–भेद दिखावति गोवर्द्धन–धर लालै ॥

४२

[सारग]

रास में गोपाल लाल नाचत, मिलि भामिनी ।
अंस–अंस भुजनि मेलि, मडल–मधि करत केलि,
कनक–बेलि मनु तमाल स्याम–सग स्वामिनी ॥

उरप, तिरप, लाग, दाट ग्रग्र–ताता–थेई–थेई थाट,
सुघर सरस राग तैसी–ए सरद–जामिनी ॥

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नटवर–वपु–भेप धरे
निरखि–निरखि लज्जित कोटि काम–कामिनी ॥

४३

रास रच्यौ नंदलाला
एहो लीन्हे सकल ब्रज-बाला ।। [टेक]
एहो अद्भुत मंडल कीन्हे ।
अति कल गान सरस सुर लीन्हे ।।
लीन्हे सरस सुर राग-रंग बीच मिलि मुरली कढी ।
होन लाग्यौ नृत्य बहु विधि, नूपुरनि-धुनि नभ चढी ।।
डुलत कुंडल, खुलत बेनी, झूलति मोतिनि-माला ।
धरत पग डगमग विवस रस रास रच्यौ नंद-लाला ।।१।।
पगनि-गति कौतुक मचै, कटि मुरि मुरि मध्य लचै ।
सिथिल किंकिनी सोहै, ता-पर मुकुट लटक मन मोहै ।।
मोहै जु मन्मथ मुकुट लटकनि, मटक पग-गति धरन की ।
भँवर भरहर चहूं दिसि छबि, पीत पट फरहरन की ।।
गिर्‍यौ लखि मन्मथ मुरछ लै, भजी रति मुख मधु अचै ।
नचत मनमोहन त्रिभंगी, पगनि-गति कौतुक मचै ।।२।।
चित्त हाव भावनि लुटै, अभिनव दृग मोहन सर छुटै ।
ललित ग्रीव भुज मेलत, कबहुंक अंकमाल भरि झेलत ।।
झलत जु भरि-भरि अंक निसंकनि, मगन प्रेम आनंद मे ।
चारु चुबन अरु उगारै धरत तिय-मुख चंद में ।।
उडत अंचल, प्रगट कुच वर-ग्रंथि कटि-तट पट छुटै ।
बढ्यौ रंग सु अंग स्यामा चित्त हाव भावनि लुटै ।।३।।
बृंदावन सोभा बढ्यौ, ता पर व्योम विमाननि सों मढ्यौ ।
दुंदुभि देव बजावैं फूलनि अंजुलि बहु वरखावैं ।।
वरखैं जु फूलनि अंजुली बहु अंबर घन कौतुक पगे ।
विवस अंकनि निज-वधू लिए निरखि मनमथ-सर लगे ।।
व्है गए थिर चर, अचर चर, सरद-पूरन ससि चढ्यौ ।
'दास कुंभन' रास-औसर बृंदावन सोभा बढ्यौ ।।४।।

४४ [विहागरा]

रास-रस गोविंद करत विहार ।
सूर-सुता के पुलिन-मधि मानों फूले कुमुद कल्हार ॥
अद्भुत सतदल विकसित मानों, जाही जुही निवार ।
मलय पवन वहै सरद्-पूरन चंद, मधुप-झंकार ॥
सुघरराइ संगीत कला-निधि मोहन नंद-कुमार ।
व्रज-भामिनि-संग प्रमुदित नांचत, तन चरचित घनसार ॥
उभय सुरूप सुभगता-सींवां कोक-कला सुख-सार ।
'कुंभनदास' प्रभु स्वामी गिरिधर पहिरे रसमय हार ॥

४५ [विहाग]

रसिक रास सुख-विलास, तरनि-तनया-तीर रच्यौ,
नंदलाल-संग, कोटि कामिनी ॥
प्रफुलित नव-नव निकुंज, त्रिविध पवन लै झकोर,
चंद-जोति छिटकि रही, सरद्-जामिनी ॥
मंडल-मधि नाइक हरि, नांचत भुज असनि धरि,
गौर स्याम अंगनि मानों, मेघ दामिनी ॥
उरप, तिरप तांडव करें, ता-थेई रचि उघटि तान,
सुधँग चाल लेत हैं, संगीत स्वामिनी ॥
अद्भुत रस-केलि निरखि, मदन-मान हारि रह्यो,
मुरली अधर गुंजत रस-रंग धामिनी ॥
बलि-बलि 'कुंभनदास' तन, मन, धन देत वारि,
गिरिवर-धर संग खेलें, राधा भामिनी ॥

४६

स्याम-संग स्वामिनी बिलास रास में बनी ।
निर्तत दोऊ सुघंग, रूप राखि अंग-अंग,
नाइका-समाज मानों, राजति घन दामिनी ॥

मिलवत संगीत तान, वेनु कल मधुर गान,
थेई–थेई उचरति, रास–रंगिनी ॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर, रीझि लिये
ललना उर, मानो मनि–माल बरसत रस की कनी ॥

४७ [कदारौ]

सुंदर करत गान गोपाल ।
तरनि–तनया तट मनोहर राम–रंग रसाल ॥
जुवति कंचन–बेलि, मरकत मनि जु स्याम तमाल ।
उरप, तिरप संगीत उघटत तत–थेई तत–थेई ताल ॥
जुवती–मध्य गोविंद इंदु हिं बनी उडुगन–माल ।
'कुंभनदास' प्रभु सुभग–सीवां गोवर्धनधर लाल ॥

धनतेरस —

४८ [देवगधार]

आजु माई ! धन धोवति नंद–रानी ।
कातिक वदि तेरस दिन उत्तम गावति मंगल बानी ॥
नव सत साजि सिंगार अनूपम आपु करति मनमानी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर प्रभु देखति हियो सिरानी ॥

गो–क्रीडा (कान जगाई) —

४९ [सारग]

खेलन कों धौरी अकुलानी ।
डाढ मेलि आतुर सनमुख व्है, नंद–नंदन की सुनि मृदु बानी ॥
वडडे गोप थकित भए ठाढे, यह अद्भुत देखी न कहानी ।
नाचत गांइ देखत नौतन व्रज बरसों–बरस कुसल यह जानी ॥
नंदकुवँर झारत मुख अचल, जै–जै शब्द उचरत कल बानी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की सदा रहो ऐसी रजधानी ॥

५०

गांइ खिलावत स्याम सुजान।
कूकैं ग्वाल टेरि दै 'ही-ही' बाजत बेनु विषान॥
कियो है सिंगार धेनु सगरिनि कौ, करि सकै कौन बखान।
बिफरि फिरनि पूछ हिं उन्नत करि, करि-करि सूधे कान॥
पांइ पैंजनी, मेहदी राजति, पीठि पुरट के पान।
'कुंभनदास' खेली गिरिधर पें जिहिं विधि उठी उठान॥

दीपमालिका —

५१ [सारंग]

देखो इनि दीपनि की सुंदराई।
मानो[1] उडुगन राजत नभ-मंडल, तम[2]-निसि परम सुहाई॥
नंदराइ अगनित बाती रचि, अद्भुत जुगति बनाई।
बिविध[3] सुगंध कपूर आदि मिलि घृत परिपूरनताई॥
घर-घर घोष[4] परम कौतूहल, आनंद उर न समाई।
'कुंभनदास' प्रभु धेनु खिलावत गिरिधर सब-सुखदाई॥

गोवर्द्धन-पूजा —

५२ [सारंग]

गोवर्द्धन पूजन चले गोपाल।
मत्त गयंद देखि जिय लाजत निरखि मंद गति चाल॥
ब्रजनारिनि पकवान बहुत करि, भरि-भरि लींने थाल।
अंग सुदेस बिविध पट भूषन, गावति गीत रसाल॥
बाजे अनेक बेनु रव संमिलित चलत बिविध सुर-ताल।
ध्वजा, पताका, छत्र, चमर धरें करत कुलाहल ग्वाल॥

---

१ जनु (क) २ तामे निसि (क) ३ मृगमद मलय कपूर आदि दै क) ४ मगल होत सबहि के

बालक-वृन्द चहू दिसि सोभित, मनहु कमल अलि-माल ।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहत गोवर्द्धन-धर लाल ।।

५३ [सारंग]

मदनगोपाल गोवर्द्धन पूजत ।
बाजत ताल, मृदंग, संख-धुनि मधुर-मधुर मुरली कल कूजत ।।
कुमकुम तिलक ललाट दिये नव बसन साजि आईं गोप-धनी[1] ।
आसपास सुंदरी कनक तन, मध्य गोविंद मानों मकरत मनी ।।
आनद मगन ग्वाल सब टेरत 'ही-ही' धौरी धुमरि[2] बुलावत ।
राते पीरे बने हैं टिपारे मोहन बानी धेनु खिलावत ।।
छिरकत हरद, दूध, दधि, अच्छित, देत असीस सकल लागत पग ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर गोकुल करु पिय! राज अखिल जुग ।।

५४ [सारंग]

*गोवर्द्धन पूजत परम उदार ।
गोप-वृंद गोहन मोहन के सोभा बढी अपार ।।
षट रस बिंजन भोग सकल लै धरत बिविध उपहार ।
पूजा करि पांइ लागि प्रदछिना देत, दिवावत ग्वार ।।
चहूं ओर गोपी कंचन-तन मानों गिरि पहिरयौ हार ।
'कुंभनदास' प्रभु की छबि निरखत रह्यौ विथकि सुनि मार ।।

५५ [सारंग]

गोवर्द्धन पूजत हैं व्रजराइ ।
बल मोहन आगे दै लीन्हे गोप-वृंद सब लाइ ।।
दीप-मालिका महा महोच्छौ, ग्वालनि लेहु बुलाइ ।
बिविध भांति वस्त्र पहिरावहु, जो जाके मन भाइ ।।

१ धनी (क) २ धेनु (क) * परमानन्दसागर 'ग' प्रति में [स ५९४] परमानददास की छाप से है।

दूध दही भाजन भरि लीन्हे, पायसु बहुत बनाइ ।
बैठे है गोपाल सिखर पर भोजन करत दिखाइ ॥
फूले फिरत सकल व्रजवासी खरिक खिलावत गांइ ।
'कुंभनदास' गिरिधर गिरि पूज्यो-- भयो भक्तनि मन-भाइ ॥

गोवर्द्धनोद्धारण (इन्द्र-मानभंग) ——

५६ [केदारो]

*नंदलाल[1] गोवर्द्धन कर धार्‍यौ ।
व्रज कुल[2]-प्रलय करन कों सुरपति पठए कोपि मेघ वार्‍यौ ॥
सात दिवस मूसलधार बरखत, एकौ छिनु न बीचु पार्‍यौ ।
गोपी[3] गांइ गो-सुत ग्वाल सब अखिल राखि गरबु टार्‍यौ ॥
छांड्यौ सब अभिमान अमरपति अपनों बिगारु जिय बिचार्‍यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन के आइ पर्‍यो पांइनु हार्‍यौ ॥

५७ [सारंग]

गोकुल की जीवनि गोपाल लाल प्यारौ ।
सुंदर मुख निरखत सखि ! नैन सैन पाऊ
गोपी ग्वाल-आँखिनि कौ तारौ ॥ .
रूप की निधि काम को सिद्धि,
जानत सब प्रेम की बिधि
धेनु-सैन लैके घर आवै सकारौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर अपने कर
कोमल ऐंचि लियो गोवर्द्धन भारौ ॥

---

१ मेरे लालिडे गोपाल गाव० [बध १८/१] २ पुर, (क) ३ गोप ग्वाल गो-सुत गाय (क)
* 'नदके लाल गोबर्द्धन धार्‍यौ' इस प्रारंभ और पाठ भेद के साथ यह 'गोविन्दस्वामी' के पद संग्रह में है । साधारणतया समान रचना है । पर 'क' 'ख' प्रति में होने से कुंभनदास कृत ही है । [देखो ' गोविंदस्वामी-[पद संग्रह] ' पद सं ७३ विद्याविभाग-काकरोली प्रकाशन]

५८ [सारग]

व्रज पर स्याम घटा झर लाई ।
नंदजू कौ लाल सलोनौ–सो ढोटा ता–पर इन्द्र चढि धाई ।।
तब मन मे इक बात उठाई (?) नख परवत ले उठाई ।
गोप ग्वाल संग लिये परस्पर, 'कुंभनदास' गुन गाई ।।

श्रीगुसांईजी की बधाई —

५९ [देवगधार]

आजु बधाई श्रीवल्लभ–द्वार ।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम प्रगट करन लीला–अवतार ।।
भाग उदै सब दैवी जीवनि के निःसाधन जन किए उद्धार ।
'कुंभनदास' गिरिधरन जुगल–वपु निगम–अगम सब साधन सार ।।

६० [देवगधार]

गोकुल घर–घर होत बधाई ।
सुत श्रीवल्लभ के गृह प्रगटे, करुना की निधि आई ।।
देखि–देखि व्रज–बनिता सब मिलि मोतिनि चौक पुराई ।
प्रगट भयो गोवर्द्धन–धारी पुहुपनि वृष्टि कराई ।।
देत आसीस सकल गोपीजन उर आनंद न समाई ।
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर गिरिधर सब सुख–दाई ।।

६१

प्रगटे श्रीविट्ठल बाल गोपाल ।
कलि–जुग जीव–उद्धारन–कारन संतनि के प्रतिपाल ।।
तिलक तिलंगा द्विज–कुल–मंडन, वल्लभ–वश रसाल ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर नई केलि व्रज–बाल ।।

६२ [सारग]

प्रगट भए फिरि वल्लभ आइ ।
सेवा-रस विस्तार करन कों गूढ ज्ञान सब प्रगट दिखाइ ।।
निज-जन सकल किये हैं पावन घर-घर वंदनवार बधाइ ।
'कुंभनदास' गिरिधर-गुन महिमा बदी-गन चारन गुन गाइ ।।

६३ [कानरो]

श्रीविट्ठल जू के चरनकमल भजि रे मन ! जो चाहत परमारथ ।
मारग नाम काम--हित कारन सब पाखंड परम उदारथ ।।
देवी दैव देवता हरि--विनु सब कोउ जपत आपने स्वारथ ।
श्रीभागवत--भजन रस--महिमा श्रीमुख--बचन कहे सो जथारथ ।।
तीन हूं लोक विदित यह मारग जीव अनेक हिं किए कृतारथ ।
'कुभनदास' सरन आए--विनु खोए दिन पाछिले अकारथ ।।

६४

श्रीविट्ठल -चरन-प्रताप तें नांहिन और मेरे जिय वाम बाधा ।
हस्त कमल माथे जु धरत हैं गए सकल अपराधा ।।
महापतित उद्धार करन कों प्रगटे पुहुमि अगाधा ।
'कुंभनदास' फूलत आनंद में निडर भए रिपु सब साधा ।।

वसन्त-धमार —

६५

सुभ दिन, सुभ घरी, सुभ मुहूरत, साधि राधिका
श्रीपंचमी सदा ही बधाई ब्रज-राज-लाल
वृंदावन कुंज--धाम, विरहत पिया--संग स्याम,
उडत गुलाल, लाल गावत वेनु रसाल ।।१।।

कचन बेलि बनी व्रज-बाल
ज्यों लपटी घनस्याम तमाल, करत परस्पर ख्याल ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
रीझि परस्पर भरि लीने अंकमाल ॥२॥*

६६ [वसत]

स्याम सुभग तन सोभित छीटें नीकी लागी चंदन की ।
मंडित सुरंग, अबीर, कुमकुमा अरु सुदेस रज वंदन की ॥
'कुंभनदास' मदन तन-मन बलिहारि कियो नॅदनंदन की ।
गिरिधरलाल रची विधि मानों जुवतीजन[1]-मन-फंदन की ॥

६७ [वसत]

आई रितु चहुं दिसि फूले द्रुम कानन
कोकिला समूहनि गावति बसंत हि ।
मधुप गुंजारत, मिलत सप्त सुर
भयो हुलास तन उमगित[2] सब जत हिं ॥
मुदित रसिक जन उमग भरे हैं,
नांहिने[3] पावत मनमथ-सुख अंत हिं ॥
'कुंभनदास' स्वामिनी वेगि चलि,
इहि समै[4] मिलि गिरिधर नव कंत हिं ॥

६८ [वसत]

चलि बन, बहत मंद सुगंध सीतल मलयज समीरे
तुव पथ निहारत[5] सखी ! हरि सूरजा-तीरे ॥
चहुं दिसा फूले लता द्रुम हरखित सरीरे
तुव ।वरन सम स्यामसुदर धरत पट पीरे ॥

*साधारण एव शिथिल रचना होनेसे कुभनदास कृत होने मे सन्देह है ।

१ जूथ:(क). २ मन सब (क). ३ नहि पावत जुवतिनि सुख (क) ४ औसर (क)
५ निहारत हे (क)

विविध सुर अलि गुंज, कूजित मत्त पिक कीरे
तुव मिलन-हित नद-नंदन हैं अति अधीरे ॥
'दास कुंभन' प्रभु करत तन बहु जतन सीरे
तुव विरह व्याकुल, गोवर्द्धन-उद्धरन-धीरे ॥

६९   [बसत]

जुवतिनि-संग खेलत फागु हरी ।
बालक-वृंद करत कोलाहल सुनत न कान परी ॥
कुमकुम वारि अरगजा विविध सुगंध मिलाइ करी
पिचिकाइनि परस्पर छिरकत अति आमोद भरी ॥
बाजत डफ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरि सुर कोमल री
तिनहिं मिलत सुघर नँद-नंदन मुरली अधर धरी ॥
टूटत हार, चीर फाटत गिरि जहां-तहां धरनि धरी
काहू नहीं संभार क्रीडा-वस सब तन-सुधि विसरी ॥
अति आनद मगन नहि जानत, बीतत जाम घरी
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सब सुख[१]-दानवरी ॥

७०   [वसत]

उडत वंदन, नव अबीर, बहु कुमकुमा,
खेलत वसत बन, लाल गिरिवर-धरन ॥
मंडित सुअग, सुभ स्याम सोभित ललित
मनहुं मनमथ वान साजि आयो लरन ॥
तरनि-तनया तीर ठौर रमनीक अति,
द्रुम, लता, कुसुम मधु कलित सु नाना बरन ॥
मधुर सुर मधुप गुंजार मधुरस-लुब्ध,
पिक-सबद लागे दुहुं दिसि कुलाहल करन ॥

१ सुख दै निवरी (क)

आईं बनि-बनि सकल घोष की सुदरी
पहिरें तन कनक नव चीर पट आभरन ॥
मधुर सुर गीत गावति सुघर नागरी,
चारु नृत्तत मुदित कुनित नूपुर चरन ॥
वदन पकज, अधर-बिंब सोभित चारु
झलकत कपोल अति चपल कुंडल करन ॥
'दास कुंभन' प्रभु घोष सौभग - सींव
नंद-नंदन कुंवर जुवति-जन मन - हरन ॥

७१ [वसत

देखि वसंत समै व्रज-सुंदरि तजि अभिमान चली वृंदावन
सुंदरता की रासि किसोरी नवसत साजि सिगार सुभग तन ॥
गई तिहिं ठौर देखि ऊंचे द्रुम लता प्रकासित गुंजित अलिगन ॥
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंवरि राधा हुलसत मन ॥

७२ [वसत]

गिरिधर लाल रस भरे खेलत विमल वसंत राधिका-संग
उडत गुलाल, अवीर, अरगजा, छिरकत भरत परस्पर अंग ॥
बाजत ताल, मृदंग, अधौटी वीना, मुरली, तान तरंग
'कुभनदास' प्रभु इहि विधि क्रीडत जमुना-पुलिन लजावत अनंग ॥

७३ [वसंत]

खेलत वन सरस वसंत लाल कोकिल कूजत अति रसाल
जमुना-तट फूले तमाल, केतकी, कुंद, नौतन प्रवाल ॥
तहां बाजत वेनु, मृदग, ताल, बिच-बिच मुरली अति रसाल
नव वसंत साजि आईं व्रज की बाल साजें भूषन, वसन-अंग, तिलक भाल ॥
चोवा, चंदन, अवीर, गुलाल छिरकत हैं पिय मदनगोपाल
आलिंगन, चुबन देत गाल, पहिरावत उर फूलनि की माल ॥

७५

होरी कौ है औसरु जिनि कोऊ रिस मोनै
काहू कौ हार तोरै, काहू की चूरी फोरै,
काहू की खुंभी लै भाजै अरु अचानक
काहू कों पिचकाई नेत्रनि तकि तानै ॥
काहू की नकवेसरि पकरि काहू की चोली,
काहू की बेनी गहे, अरु कंठसरी झटकि आनै ॥
'कुंभनदास' प्रभु इहि विधि खेलत,
गिरिधर पिय सब रंगु जानै ॥

७६ [श्रीराग]

खेलत फाग गोवर्द्धन-धारी 'हो होरी' बोलत व्रज-बालक संगे
आई बनि नवल-नवल व्रज-सुंदरि, सुविधि सँवारि सुठि सिंदुर मंगे ॥
बाजत ताल, मृदंग, अधौटी, बाजत डफ, सुर, बीन, उपंगे
अधर बिंब कूजै बेनु मधुर धुनि, मिलत सप्त सुर तान तरंगे ॥
उडत अबीर, कुमकुमा वदन विविध भांति रंग मंडित अंगे
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन-मोहत नवल रूप छबि कोटि-अनंगे ॥

७७ [कल्याण]

माई ! हो हो होरी खिलाइए ॥
झांझ, वीन, पखावज, किन्नरी, डफ, मृदंग बजाइए
ताल, त्रिवट, ततकार, चांचर-खेल मचाइए ॥
चोवा, चंदन, मृगमद छिरकिके अबीर गुलाल उडाइए
खेलत फाग व्रजराज-लाडिलौ श्रीबल्लव-जसु गाइए ॥
नवसत साज सज्यौ व्रज-वनितनि चलो नंद-गृह जाइए
'कुंभनदास' लाल गिरिधर पे अपुनों सरवसु वारिए ॥

७८ [सारंग]

'हो हो होरी' कहि खेलत होरी, अब तो रंग मच्यौ है
कहा कहिए सब समिटि गईं मन-मोहन रंग रच्यौ है ।।
खेलहि खेल खेल-सो कीन्हो अब कछु कहा बच्यौ है
रस-गारी तारी दै गावै अब तो उघरि नच्यौ है ।।
चंद वदन मांडत गुलाल सों द्रगनि अति आनि खच्यौ है
पिचकाई प्यारी की छूटति रंग भरि लाल चच्यौ है ।।
रस-निधान ब्रज-लाडिलौ हो ! सोभा-सिंधु खच्यौ है
'कुंभनदास' प्रभु की छवि निरखत मनमथ-मनहिं तच्यौ है ।।

७९ [विहाग]

होरी खेलत कुंवर कन्हाई ।
चोवा चंदन, अगर कुमकुमा घरती कींच मचाई ।।
अबीर, गुलाल उडाई ललिता सोभा बरनी न जाई
अरस-परस छिरकें जु स्याम कों केसरि भरि पिचकाई ।।
नख-शिख अंग प्रतिरूप माधुरी भूषन, बसन बनाई
गिरिवर-धर की इहै छवि निरखत 'कुंभनदास' बलि जाई ।।

डोल —

८० [देवगंधार]

मोहन (मन) झूलत बढ्यौ आनंद ।
एक ओर वृषभान-नंदिनी एक ओर ब्रज-चंद ।।
ललिता बिसाखा झुलवति ठाढीं कर गहि कंचन-डोल
निरखि-निरखि प्रीतम पिय प्यारी बिहसि कहति हंसि बोल ।।
उडत गुलाल, कुमकुमा, चंदन परसत चारु कपोल
छिरकत फूल मदनगोपालें आनंद हृदै कलोल ।।

कहा कहों रस बढ्यौ परस्पर त्रिभुवन बरन्यौ न जाई ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक पर बलि जाई ॥

फूल-मण्डली —

८१ [सारंग]

बैठे लाल फूलनि के चौवारे ।
कुरवक, बकुल, मालती, चंपौ, केतकी, नवल निवारे ॥
जाई, जुही, केवरो, कूजो, राइवेलि, सहकारे
मंद समीर कीर पिक कूजत मधुप करत गुंजारे ॥
राधा-रवॅन रग भरि क्रीडत, नाचत मोर अखारे
कुंभनदास' लाल गिरिधर पर कोटिक मनमथ वारे ॥

श्रीमहाप्रभुजी की बधाई —

८२

श्रीलछमन-गृह आजु बधाई ।
प्रगट भए पूरन पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुखदाई ॥
देत दान सनमान बहोत करि, सुख की वेलि छवाई
'कुंभनदास' गिरिधर अति हरखे उर आनंद न समाई ॥

८३ [कान्हरो]

बरनों श्रीवल्लभ-अवतार ।
गोकुलपति प्रगटे श्रीगोकुल सकल विश्व-आधार ॥
सेवा भजन बताइ निज-जन कों मेटचौ जम-व्यौहार
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर आए सब ही उतारे पार ॥

८४　　　　　　　　(विहागरो)

हौ श्रीवल्लभ की बलिहारी ।
सबहिनि कों वचनामृत सींचत कहि, अंतर दुख-हारी ॥
नव निकुंज-मंदिर की लीला विहरत नित्य बिहारी
'कुभनदास' प्रभु, गोवर्द्धनधर ! व्है हों दासी तिहारी ॥

८५

ना तरु लीला होती जूनी
जो प श्रीवल्लभ प्रगट न होते, वसुधा रहती सूनी ॥
दिन-दिन प्रति छिन-छिन राजत हैं ज्यों कुंदन पर चुनी
'कुंभनदास' कहि कहां लों वरनें जसु गावे जाकौ मुनी ॥

अक्षय तृतीया—

८६　　　　　　　　[सारग]

चंदन पहिरत गिरिधर लाल ।
कंचन बेलि प्यारी राधा कें भुज वामभाग गोपाल ॥
प्रथम ही चित्रित अछित तृतीया वदन, भ्रकुटी भाल ।
स्वेत तहां बागा, पाग लपेटी, पीताम्बर, लोचन बिसाल ।।
कुंकुम कुच-जुग हेम-कलस मे कठ दोई लर बनी मनिमाल ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि विलसत व्रज की बाल ॥

८७　　　　　　　　[सारग]

टीक दुपहिरी में खस-खाने रचे तामधि बैठे लाल बिहारी ।
खासा कौ कटि बन्यौ पिछौरा चंदन-भीजी कुलह सँवारी ॥
चंदन स्याम - तन ठौर-ठौर लेपन करति वृषभान-दुलारी ।
बिविध सुगंध के छुटत फुहॉरे कुसमनि के बिजना ढोरत पियप्यारी ॥
सघन लता द्रुम झरत मालती सरस गुलाब-माल गूंथति है प्यारी ।
'कुंभनदास' लाल छबि-ऊपर रीझि, अँकोरि देत तन मन वारी ॥

रथयात्रा —

८८ [भैरव]

रथ बैठे मदन गोपाल अंग-अंग सोभा बरनी न जाई।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजित, पीतांबर अरु तिलक सुहाई॥
गज-मुकता की माल कंठ सोहै[1] मानों नील गिरि सुरसरि धँसि आई।
श्रीवृन्दावन-भूमि चारु सँग सोहै
राधा नागरि मानों घन दामिनी की छवि पाई॥
बोलैं पिक, मोर, कीर त्रिगुन वहै समीर,
पुहुप बरिखा करैं अमरपति आई।
'कुंभनदास' प्रभु लाल गिरिधर की या बानिक पर बलि-बलि जाई॥

८९ [मलार]

रथ पर राजति सुंदर जोरी।
श्रीघनस्याम लाडिलौ सुंदर, श्रीराधा जू गोरी॥
व्योम विमान-भीर भई, सुर मुनि 'जै-जै' सब्द उचारी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक की बलिहारी॥

९० [बिलावल]

रथ बैठे श्रीत्रिभुवन-नाथ।
बहिन सुभद्रा अरु बल भईया और सखा सब लीन्हे साथ॥
कनक कलस रथ-ऊपर राजत नील बरन मृदु गात
नीलाम्बर, पीताम्बर की छबि चक्र सुदर्शन हात॥
ए दोउ नील-सिखर पर राजत इन्द्र हु देखि लजात।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ जसु गावत न अघात॥

---
१ सोहै नदलाल मानो (क)

वर्षा ऋतु-वर्णन —

९१ [नटनारायण अठताल]

रिमि-झिमि बरखत मेह प्रीतम संग री !
चलो सखी ! भींजत सुख लागैगो ।।
तैसेई बोलत चातक, पिक, मोर
तैसेई गरज मधुरी तैसोई पवन सीतल लागैगो ।।
तैसीये घटा स्याम रही है झुमि चहुंघा
तैसिये पहिरी सुरंग चूनरी तैसेई भेष लागैगो ।।
'कुंभनदास' प्रभु तैसोई गोवर्द्धन—धर
लाल रसिक हृदय लागैगो ।।

९२ [मलार]

सारी भीजि है नई ।
अबहिं प्रथम पहरि आई हों पिता बृषभान दई ।।
अपनों पिताम्बर मोहि उढ़ावहु बरिखा उदित भई ।
सुंदर स्याम ! जाइगौ इह रंगु बहुविध चित्र ठई ।।
कहि हों कहा जाइ घर मोहन डरपति हौ इतई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मुदित उछंग लई ।।

९३ [मलार अठताल]

गोवर्द्धन पर्वत के ऊपर परम मुदित बोलत हैं मोर ।
अति आवेस भयो सब के चित ।
ठां ठां नांचत सुनि-सुनि मुरली की मद कल[1] घोर ।।
श्रीअंग जलद--घटा सुहाइ बसन दामिनी,
इन्द्र—धनु बनमाल, मोतिनि हार बलाक डोर ।
'कुंभनदास' प्रभु प्रेम नीर बरखत गिरिवरधर[2] लाल नवल नंदकिशोर ।।

---
१ मद सुर कल घोर (ख) २ धरन (ख)

९४ [मलार]

पहिरें सुभग अँग कसूमी सारी सुरंग
भूमि हरियारी मे चद्र वधू-सी सोहै ॥
हरि के निकट ठाढी, कंचुकी उतंग गाढी
बाल मृगलोचनी देखत मन मोहै ॥
पावस रितु तैसिये, मेघ उनए तैसिये,
तैसिये वानिक बनी उपमा कों को है ॥
'कुंभनदास' स्वामिनी, विचित्र राधा भामिनी
गिरिधर इकटकु मुख जोहै ॥

९५ [मलार]

देखो[1] सखी ! चहुं दिसि तें झर लायौ ।
स्याम घटा जु उठी चहुं दिसि तें, दामिनी अंबर छायौ ॥
रस की बूंद परति धरनी पर ब्रज-जन प्रेम बढायौ ॥
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर राग[2] मलार जमायौ ॥

९६ [मलार]

देहु कान्ह ! कांधे कौ कंबर ।
रिमि-झिमि रिमि-झिमि घन बरसत है भींजै कसूभी अंबर ॥
घन गरजत डरपति हों भामिनी देखि मेघ कौ डबर ।
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर साथ ग्वाल कौ संभर ॥

९७ [मलार]

ब्रज पर नीकी आजु घटा हो ।
नन्ही-नन्ही बूंद सुहावनी लागति, चमकति विज्जु-छटा हो ॥

---

१. आजु माई आगे नई झर लायौ (बध ५/१/९९)
२ उछग हि हिये लगायौ (,,)

गरजत गगन मृदंग बजावत, नाचत मोर-नटा हो।
तैसेई सुर गावत चातक, पिक, प्रगट्यो है मदन-भटा हो॥
सब मिलि भेट देत नँदलाल हि बैठे ऊंचे अटा हो।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सिर कसूभी पीत पटा हो॥

९८ [मलार]

बोले माई! गोवर्द्धन पर मोर।
कारी-कारी घटा सुहावनी लागति, पवन चलत अति जोर॥
स्याम घन तन दामिनी दमकति बूंद परति थोर-थोर।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर करत चातक, पिक सोर॥

९९ [मलार]

* दोऊ जन भींजत अटके बातनि।
सघन कुंज के द्वारें ठाढे बुंद बचावत पातनि॥
स्यामा स्याम उमगि रस भरियां अंबर लपटे गातनि।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर नेह बढावत घातनि॥

१०० [सोरठ]

+ भींजत कुंजनि में दोउ आवत।
स्याम सुंदर वृषभान-कुवरि कों कांवरि तन लिपटावत॥
हिलि-मिलि प्रीति परस्पर बाढी, दोऊ मिलि अंग प्रेम उपजावत।
'कुंभनदास' प्रभु स्याम राधिकै दगा देत कहि भाजत॥

१०१ [मलार]

भींजत कब देखोंगी नैंना।
दुलहिनजू की सुरग चूनरी मोहन कौ उपरैंना॥

* इसी तुक, कुछ पाठ-भेद और परिवर्तन से यह पद 'सूरसागर' (ना प्र सभा) परिशिष्ट स. ११३ पर छपा है। सम्पादक को इस पद के सूरकृत होने मे अर्द्ध सदेह हे। वास्तव मे यह पद कुभनदास कृत है (सर० भ ब. ५/१ पत्र ९३)

+ 'सूरसागर' स २६१० पर इसी तुक से पद छपा है पर दोनो विभिन्न है।

स्यामा स्याम कदँब-तर ठाढे जतन कियो कछु मैं ना ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जुरि आई जल-सैंना ॥

१०२ [मलार]

सखी री ! ये बडभागी मोर ।
याके पंख कौ मुकुट बनत हैं सिर धरैं नंदकिसोर ॥
ये बडभागी सकल व्रज-वासी चितवत हरि-मुख ओर ।
निसिदिन स्याम-संग मिलि बिहरत आनद बढ्यौ न थोर ॥
ये बडभागिनि व्रज की ललना गान करति घन-घोर ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर विहरत गोपिनि के चित-चोर ॥

१०३ [मलार]

लाल ! देखौ बरसन लाग्यौ मेहौ ।
भींजति है मेरी सुरंग चूनरी मोहिं जान घर देहौ ॥
तुम मन-मोहन चितव अटपटो मोहि जिय उपजत तेहौं ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर राज करो यह नेहौ ॥

१०४ [मलार]

स्याम ! सुनु नियरें आयौ मेहु ।
भींजेगी मेरी सुरंग चूनरी ओट पीतांवर देहु ॥
दामिनि तें डरपति हों मोहन निकट आपुनी लेहु ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों वाढ्यौ अधिक सनेहु ॥

१०५ [मलार]

* सखी री ! बुंद अचानक लागी ।
सोवत हुती मदन-रसमाती घन गरज्यौ तब जागी ॥
दादुर, मोर, पपैया बोलत गुंजत मधु-अनुरागी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों जाइ मिली बडभागी ॥

* सूरसागर परिशिष्ट (1) स १४२ पर इसी तुक से पद छपा है। प्रथम अश समान है, शेष भिन्न है सर. भ ब व १३/३ पत्र २८१ मे कुंभनदास कृत है)

हिंडोरा —

१०६ [केदारो]

सुरंग हिंडोरे झूले नागरि नागर,
दंपति अंग-अंग सब सुखदाई ।।
सुंदर स्याम के संग सोभित गोरी
भामिनि मानों घन मे दामिनि,
तैसीये पावस रितु परम सुहाई ।।
पीत पट, लाल सारी सुरंग सु छबि भरी,
तैसेई मनि खचित खंभ, मरुए विधि बनाई ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ सुजसु गावति
ललितादिक, निरखत[1] रतिपति रह्यौ लजाई ।।

१०७ [मलार]

झूलें माई ! जुगल किशोर हिंडोरें ।
ललिता, चंपकलता, विसाखा देति हैं प्रेम-झकोरे ।।
तैसिये रितु पावस सुखदाइक मंद-मद घन घोरें ।
तैसोई गान करति ब्रजसुंदरि निरखि-निरखि चहुँ ओरें ।।
कोटि-कोटि मदन-छबि निरखत होत सखी मन भोरें ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रीति निबाहत जोरें[2] ।।

१०८ [मलार]

हिंडोरें हरि झूलत ब्रजनारी ।
सांवन मास एु ही थोरी-थोरी तैसीये भूमि हरियारी ।।
नव वन, नव घन, नव चातक पिक, नवल कसूंभी सारी ।
नवल किसोर-वाम अँग सोभित नव वृषभान-दुलारी ।।

---
१ निरखति, (क) २ डोरै (क)

कंचन खंभ, मनि जटित पेटला, डांडी सुभग संवारी ।
'कुंभनदास' प्रभु मधुर झोंटका देत लाल गिरिधारी ।।

१०९ [गौरो]

आईं सकल व्रजनारि झूलन हरि कें[1] हिंडोलनां ।
नवसत साजि कुरंग-नैनी आभूषन चारु[2] सुरंग बसन अमोलनां ।।
कचन रतन आछे जटित, मानिक मनि पटिला,
सुगंध चंदन-बाही सुमन अरु सुस्वर सुनि सुबोलनां ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल मधुर-मधुर दै झोलनां ।।

११० [पूरबी]

झूलें माई ! गिरिधर सुरंग हिंडोरें ।
रतन खचित पटुली पर बठे नागर नंदकिसोरैं ।।
पीत बसन घनश्याम सुंदर तन, सारी सुरंग हि वोरैं ।
अंसनि बाहु परस्पर जोरें मंद हसनि पिय ओरैं ।।
घोषनारि जुरि आईं चहूं दिसि झुलवति थोरें-थोरैं ।
'कुंभनदास' गिरिधरन लालछवि व्रज-जुवतिनि चित चोरैं ।।

१११ [मलार]

झूलें माई ! स्यामा स्याम हिंडोरैं ।
मनि कंचन कौ रच्यौ सच्यौ सखि ! राजत जोवन जोरैं ।।
आसपास सुंदरि मिलि गावतिं श्रीमंडल कल घोरैं ।
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, रुचि और बांसुरी थोरैं ।।
पुलकित पुलकि प्रीतम-उर लागति देति बहुत अंकोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिक प्रीति निरवाहत औरैं ।।

---
१ के सग (ब १।१।१२४) २ तन आछे (ब १।१।१२४.)

११२ (विहाग)

पिय-संग[1] झूली री ! सरस हिंडोरैं ।
व्रज-जुवती[2] चहुं दिसि तें सजि सजनी ! झुलवति थोरें-थोरैं ॥
[3]नीलांबर पीताम्बर राजत घन-दामिनि चित चोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर देखत[4] छबि की उठत झकोरैं ॥

११३ [मलार]

* नटवर झूलत सुरंग हिंडोरैं ।
धरत चरन पटुली पर मोहन अरस परस्पर जोरैं ॥
पीत वसन वनमाल बिराजित सारी सुरंग हिं बोरैं ।
सजल स्याम घन, कनक, वरन तनु मानिनी-मानहि तोरैं ॥
जोरी अविचल तेज विराजित कुंडल वर हिल्लोरैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरराधा प्रीति निवाहत औरैं ॥

११४

नवल लाल के संग झूलन आई हो हिंडोरैं ।
लपटनि पाग की चुनरी सुरंग बंदसि परी सखी ओरैं ॥
मगसगाति गिरिधर पिय के सग बतियां कहति प्रीतम चित चोरैं ।
'कुभनदास' प्रभु रमकि-झमकि झूलति कछुक हँसति. मुख मोरैं ॥

११५ [मलार]

मोहिं घरी इक झूलन देहु हिंडोरना
हो पिय! रमकि झुलावों।
तैसेई स्याम तन हो हो प्रानपति !
हमें न डर आवै एसेई अति रस-रंग बढावां ॥

---

१ हौ तो झूलीरी रमकि २ सुरंग० (व ४/२/४०) २ आसपास व्रज-जुवती गावति (व ४-२-४०) ३. नील पीत पट की दुति राजति (व ४-२-४९) ४ तुहि देखत (व ४-२-४०)

* इसी तुक से सक्षिप्त पद 'गोविदस्वामी' मे पद स २०१ पर छपा है — देखो काकरोली प्रकाशन। आदि अन्त मे साम्य होने पर भी दोनो पृथक है ।

कबहुंक पटुली बैठिय प्रानपति !
और सखिनि सब निकट बुलावौं ॥
तिनसों मिलत मंद मुरली-सुर
प्रमुदित राग मलार हिं गावौं ॥
जब हौं उतरौं तुम तब झूलो प्रीतम !
झौंटा देहौं एसें-जेसें तुम्हें दिखावौं ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
सोई करौं जैसे तुव सुख पावौं ॥

११६ [नट]

मुदित झुलावति आपु अपने औसरे
माई ! नवल हिंडोरो सज्यौ नवल किसोर ॥
नवल कसूंभी सारी ओढे नव वधू प्यारी
नव भूमि हरियारी सोभित चहुं ओर ॥
नवल गीत झुंडनि गावति, कंचन खंभ की ढिग
तैसेई बन में नव बोलत चातक मोर ॥
नवल घटा सुहाई, परत थोरी-थोरी बुंद
बिच-बिच ए नव घन की घोर ॥
राधे-तन नव चूनरी नव पीत सुंदर स्याम कें
अरु मनिगन खचित पटेला बैठे इक जोर ॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धारी लाल
नव रस भीजे देत मधुरें रोर ॥

११७ [नट]

× हिंडोरें झूलत स्यामा स्याम ।
गौर स्याम तन, पीत कसूंभी पहिरें, आनंद मूरति काम ॥
मरकत मनि के खभ मनोहर, डांडी सरल सुरंग
पांच पिरोजनि की पटुली बनी झूमक अति बहु रंग ॥

× सूरसागर पद सं. ३४५२ पर भी इस तुक से एक पद है पर दोनों प्रथक है ।

ललिता, विसाखा देति झोंटा गावति राग रसाल
हंस, मोर, कोकिला, चकोर हि चातक शब्द रसाल ॥
अद्भुत केलि कौतूहल देखत चढि विमान सुर आए
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धर बहुविध पुहुप बरसाए ॥

११८ [पूरवी]

× हिंडोरें व झुलवन आई ।
नवसत साज सज ब्रज-वनिता लागति परम सुहाई ॥
बनि-ठनि बैठे स्याम मनोहर स्यामा संग बिराजें
नख-सिख की सुंदरता निरखत कोटिक रति-पति लाजें ॥
प्रमुदित व्है सहचरी झुलावति मुख मधुरे स्वर गावे
तान, मान, बंधान, भेद, गति, ताल, मृदंग बजावें ॥
नव निकुंज जमुना-तट सुंदर माच्यौ रसिक-विलास
गुन-निधान राधा गिरिधारी गावत 'कुंभनदास' ॥

११९ [नट]

पावस-रितु कुंज-सदन, जमुना-तट, वृन्दावन,
झूलत ब्रजराज-कुंवर नव हिंडोरनां ॥
कनक खंभ सरल मांहि, चारि डांडी अति सुहांहि,
झूमका नवरंग पटुली अति अमोलनां ॥
बैठे बनि गोपाल लाल, सग ब्रज की नवल बाल,
चहुं दिसि राजे रसाल गोपी-टोलनां ॥
गावत नटनाराइन राग, नाचत मुदित नारि,
झोंटा देति वैसि-वैसि वृंद-टोलनां ॥
बाजत बांसुरी, पखाज, ठाठ बन्यौ मधुर साज,
छायो गान गगन, मगन जुवती-टोलनां ॥

× इसी तुक से स ३४५५ पर सूरदास कृत पद सूरसागर मे है-पर दोनो प्रथक है ।

माच्यौ नवरंग बिलास, निरखि हरखि 'कुंभनदास'
लै बलाइ कहत हैं, गुन गिरिवरधर लोलनां ॥

१२० [मलार]

नवल हिंडोरना हो ? साज्यौ नवल किसोर ।
जहां भूमि हरित सुरंग देखियत कल्पद्रुम के पुंज
पारिजात, मंदार प्रफुल्लित घूर्नित अलि-कुल गुंज ॥ (टेक)
हंस चातक मोर कूजत कोकिला कल कीर
चक्रवाक चकोर बोलत तरनि-तनया-तीर ॥
मल्लिका मालती विकसति विविध खंड कदंब
और प्रबाल चंपक बकुल जम्बू अंब ॥
उनई घटा घन घोर, मानों इंद्र-धनु अबकास
फूली भार सुडार सोभित विविध सौरभ-वास ॥
द्वै खंभ मरकत मनि बिराजित रतन पटिला चारु
बठि जुगल किसोर सुन्दर परम रसिक उदारु ॥
सुभग सरस जराउ डांडी मियार मरुवा-सारि
उछंग गिरिधर लाल के सँग बैठी सुन्दरी नारि ॥
वेनु, बीना, ताल उघटित मुरज, मृदंग रबाव
महुबरी, किन्नरि, झांझ बांजत शंख, ढप पिंनाक ? ॥
सरस सरोवर मांझ देखियतु फूले कुमुद कल्हार
तान, मान, सुगान गावे जम्यौ राग मल्हार ॥
कुंज-कुज झुलाइ झुलवति सब सखी सोहें संग
चंद्रावली, ललिता, विसाखा उपजे कोटि अनग ॥
लेत झोंटा जुगल सुंदर करत केलि-विलास
देवगन मिलि कुसुम वरस बलि बलि 'कुंभनदास' ॥

पवित्रा —

१२१ [सारंग]

पवित्रा पहिरत गिरिधर लाल।
रुचिर पाट के फोंदना करि-करि पहिरावत सब ग्वाल ॥
आसपास सब सखा-मंडली मनों कमलअलि-माल।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहत गोवर्द्धन-धर लाल ॥

१२२ (सारंग)

* पवित्रा पहिरें श्रीगिरिधरलाल।
वाम भाग वृषभान-नंदिनी बोलत वचन रसाल ॥
आसपास सब ग्वाल-मंडली मानहुं कमल अलि-माल।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन-मोहन नंदनँदन वृजपाल ॥

१२३ [सारंग]

पवित्रा पहिरें श्रीगोकुलराइ।
श्याम अंग पर अमित माधुरी सोभा कहिय न जाइ ॥
वाम भाग वृषभान-नंदिनी अंग-अंग रस माइ।
गोपी सनमुख ठाढीं चितवति दुति दामिनि-दमकाइ ॥
भक्त-हेत मनमोहन लीला गूढ रहसि उपजाइ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कौ रूप न वरन्यौ जाइ ॥

१२४ [सारंग]

पवित्रा पहिरे राज-कुमार।
तीनों लोक पवित्र किये हैं श्रीगिरिधर सुकुमार ॥
सावन सुदी बिदित एकादसी होत है मंगलचार।
करि सिंगार सिंघासन बैठे सब बालक परिवार ॥
व्रज-सुंदरि मिलि गावति, आवति मोतिनि भरि-भरि थार।
'कुंभनदास' प्रभु 'तुम चिर जीवो' देत पवित्रा उदार ॥

* इसी तुक से गोविन्द स्वामी का एक पद है जो प्रथक है। (देखो- गोविंद स्वामी' पद सं २ ६) काकरोली प्रकाशन। सं १२१ और १२२ एक ही पद है।

राखी —

१२५ (सारंग)

मात जसोदा राखी बांधै बल कें श्रीगोपाल कें ।
कनक-थार अच्छित, कुंकुम लै तिलकु कियो नंदलाल कें ।।
बसन विविध आभूषन साजे पीताम्बर वनमाल के ।
मृगमद, अगर, घनसार, अरगजा लावति मदन गोपाल के ।।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर उर राजत मनिमाल कें ।
देत असीस सकल गोपीजन, नव घनस्याम तमाल कें ।।

१२६ [सारंग]

राखी बांधति है नँदरानी ।
रत्नजटित की सुभग बनी अति मोहन के मन मानी ।।
बिप्र बुलाइ दई बहु दच्छिना जसुधा हिय हरषानी ।
'कुंभनदास' गिरिधर के ऊपर रसबस वारति पानी ।।

१२७ [सारंग]

* रच्छा बांधति जसुधा मईया ।
बिविध सिंगार किए पट भूषन पुनि-पुनि लेति बलईया ।।
तिलक करति, आरती उतारति हरषि-हरषि मन-मईया ।।
नाना भांति भोग आगें धरि कहति- जेंउ बल-भईया ! ।।
नरनारी सब आए तहां मिलि निरखन नंद-ललईया ।
'कुंभनदास' गिरिधर चिर जीवो सकल घोष सुख-दईया ।।

❀

इति वर्षोत्सव-पद

* इसी तुक से गोविंदस्वामी का पद है, जो पृथक है। देखो —'गोविंदस्वामी' पद सं० २२० कांकरौली प्रकाशन,

लीला
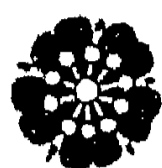
कलेउ —

१२८

नंद के लाल ! मन-हरन सुंदर स्याम !
जाऊं बलि-बलि अब कीजिए कलेवा ।।
बिविध पकवान, दधि, दूध, मांखन, मिश्री,
पहरि लेउ बसन, कटि बांधि लेहु मेवा ।।

बलराम-संग मिलि जाउ खेलन लाल !
सकल ब्रज-जनआनंद-देवा ।
'दास कुंभन' प्रभु नंद-नंदन, कुवर—
जसोदा के प्रान, मेरे देवाधिदेवा ।।

माखन-चोरी —

१२९ [सारंग]

आनि पाए हो हरि ! नीकें ।
चोरि-चोरि माखन सबु खायो गींधि रहे दिन-प्रति इहि छीकें ।।
रोक्यौ भवन द्वार ब्रज-सुंदरि नूपुर मूदि अचानक हीकें ।
'अब कैसे जईयतु बल अपने, भाजन फोरि, दूध-दधि पीकें ?' ।।
'कुंभनदास' प्रभु भले परे फग देहुं [1]न जान भांवते जीकें !'
भरि गंडूष छींटि नैननि में गिरिधर धाइ[2] चले दै कीकें ।।

---

१ जा-न न देहु (क) २ भाजि (क)

१३० [आसावरी]

बालक–ही तें चोरिये हो! जानत?
मांखन दूध धरयौ उन छांडयौ बहुरि अचानक भाजन भानत ॥
अबहिं लाल मेरयौ सर्वसु मूस्यौ अरु उलटे तुम कैसी बानत?
गोवर्द्धन–धर! संग लागि डोलत 'कुंभनदास' प्रभु अजहुं न मानत ॥

१३१ [विभास]

बिलगु जिनि मानो री! कोउ हरि कौ।
भोर हिं आवत, नांच नचावत, खात दह्यौ घर–घर कौ ॥
प्यारौ प्रान–दिए जो–पैए नागर नंद–महर कौ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर रसिक राधिका वर कौ ॥

क्रीडा —

१३२ [गौरी]

क्रीडत कान्ह कनक–आंगन मांही।
निज–प्रतिबिम्ब विलोकि, किलक करि, धावत पकरन कों परछांही ॥
पकरि न पावत स्त्रमित होत जब, आवत उलटि लाल तिहिं ठांही।
'कुंभनदास' प्रभु की यह लीला निरखि जसोमति हँसि मुसिक्याहीं ॥

१३३ (सारंग)

गोपाल हिं लावो हो! मोपें टेरि।
कुंज–सदन में जाइ सखी री! खेलत भई अबेरि ॥
बिनु लाएं जिनि आत्रो सजनी! उतहीं रही हौं हेरि।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर हिं लै आवौ बहुरि न पठै हों फेरि ॥

१३४

लला रे! आजु अबेरो आयो?
बडीय बार की मारग जोवति, तैं कित गहरु लगायो ॥

अब कहुं बाहरि जान न दैहौं मेरौ हियो जुडायो।
घर ही बोहोत खिलौना तेरें काहेकों बाहरि धायो॥
एक ठोंई दैन उराहनो आई, 'मैं काहू कौ दधि नही खायो'।
'कुंभनदास' गिरिधर यों कहें तब करत आपुनो भायो॥

१३५ [गौरी]

अरी माई! देखत कौ कान्ह बारौ।
निर्मल जल जमुना कौ कीन्हो, घीसि आन्यौ नाग कारौ॥
अति सुकुमार कमल हू ते कोमल, गिरि गोवर्द्धन धारयौ।
बूडत तें व्रज राखि लियो है-मेटि इन्द्र कौ गारयौ॥
है कोउ देव, बडौ देवनि में जसुमति! पूत तिहारौ।
'कुभनदास' भक्त की जीवनि सर्वसु प्रान हमारौ॥

व्रजभक्त-प्रार्थना —

१३६ [देवगधार]

तुम नीकें दुहि जानत गईयां।
चलिये कुँवर रसिक नंदनंदन! लागों तुम्हारे पईयां॥
तुम हिं जानिके कनक-दोहिनी घर ते पठई मईयां।
निकटि हिं है इह खरिक हमारौ नागर! लेऊं बलईयां॥
देखी परम सुदेस सुंदरी चितु चिहुटयौ सुंदरईयां।
'कुंभनदास' प्रभु मानि लई मन[१], गिरिगोवर्द्धन-रईयां॥

१३७ [ ]

* कान्ह! तिहारी सौं हौं आउंगी।
सांझ सजोखन खरिक वछरुवा, स्याम! समौ जो- पाउंगी॥

१ रति (क)

* इसी तुक से पाठ-भेद के साथ यह पद परिशिष्ट २ स २३८ प' सूरसागर मे छपा है। सपादक को इस के सूरकृत होने पूर्ण सन्देह है। इस मे छाप की तुक इस प्रकार है-" सूरदास प्रभु तुमसो छल करि कब लो आपु छुडाऊंगी। यह कुभनदास कृत ही है।

जो–मेरे भवन भीर नहिं व्है है, तौ हौ तुम्हें बुलाउंगी।
बाल गोपाल–झुलावन के मिस ऊंचौ सुर लै गाउंगी ॥
होत अवार दूरि घर जैवो ऊतर कहा बनाउंगी ?।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर! अधरसुधा–रस पाउंगी ॥

१३८ [गोरी]

कान्ह ! दुहि दीजै हमारी गईयां।
तुम्हें जानि सतभाइ लडैते नित उठि पठवति मईयां ॥
सब कोउ कहत–'परम उपकारी संकरषन कौ भईयां'।
लेहु कुंवर ! कर कनक–दोहिनी नंद–नंदन ! हौ लेउं बलईयां ॥
हम ते बहुत तिहारें गोधन, बहुत दूध–दधि, घईयां।
'कुभनदास' प्रभु करो कृपा नेंकु गिरि गोवर्द्धन–रईयां ॥

परस्पर हास–वाक्य —

१३९ [नटनारायण]

गोपाल ! तोसों खेलै कौन बहोरि ?
रहु मोहन ! इह कौन चतुराई मोतिनि–लर लई तोरि ॥
इह विनोद नीकौ तुम पहियां पकरत बांह मरोरि।
हौ अपनें घर कहा कहोंगी ? चुरियां डारि सब फोरि ॥
'कुंभनदास' प्रभु कहत–'खिझति कत ? ल्याउ देऊं'गौ जोरि।
लाल गोवर्द्धन–धारी सों मुसकाइ चली मुख मोरि ॥

१४० [आसावरी]

ग्वालिनि ! तै मेरी गेंद चुराई।
अब ही आइ परी पलका पे अँगिया–बीच दुराई ॥
एहो गोपाल ! झूठ जिनि बोलो, एते पर कहा सीखे चतुराई ?
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर ! छतियां छुओ न पराई ॥

मुरली-हरण —

१४१ [विलावल]

नंद-नंदन के अंक तें मुरली सुंदरि चतुर हरति ।
नूपुर मुखर मूंदि, अछन-अछन पांइ धरति ।।
कनक-वलय, कंकन जुग भुजानि उछिप्त करति ।
'कुंभनदास' गिरिधर के मुदित नैंन देखति
चकृत मंद हास कौतुक-रस तें जागनि ते डरति ।।

१४२ [विलावल-जतिताल]

नागर नंद-कुमार मुरली हरत न जानी ।
गिरिवर-धर के अंक तें अचानक लई राधिका सयानी ।।
व्रजसुंदरि जतनतु मूंदन की नूपुर कंकन-बानी ।
'कुंभनदास' मुसकात मंद गति अछन-हिं अछन पयानी ।।

१४३

आवत ही जु करी चतुराई ।
नव नागरी निकुंज-ओट व्है लै मुरली कहु अनत दुराई ।।
मृदु मुसकाइ, कही इक बतियां सो ब तियनि बरनी नहिं जाई ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर नौतन प्रीति आजु ही पाई ।।

प्रभु-स्वरूप वर्णन—

१४४ [धनासिरि]

सुंदरता की सींवा नैंन ।
अति हि स्वच्छ, चपल, अनियारे, सहज लजावत मैंन ।।
कॅवल, मीन, मृग, खंजन आदिनि तजि अपने सुख चैंन ।
निरखि सबनु सखि ! एक अंस पर सरवसु कीयो दैंन ।।
जब अपने रस गूढ भाव करि कछुक जनावत सेंन
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जुवतिनि मन हरि लैंन ।।

१४५ [धनासरी]

वदन की भांति सवै सखि ! चारु ।
कर कपोल की मदन कोटि–छबि लोचन भरि व निहारु ॥
सुदरता–सिंधु तजि है मरजादा बाढ्यौ अति विस्तारु ।
जुवतिनि–नैंन रहे थकि तामें तरत न पावत पारु ॥
सरद्–कमल, ससि की उपमा कौ आवै न जिय हिं बिचारु
' कुंभनदास ' लाल गिरिधर कौ अद्भुत रूप सुढारु ॥

१४६ (धनासरी)

देखो[१] री सोभा श्याम–तन[२] की ।
मानहुं लई कुवर नँद्–नंदन गति सब नव घन की ॥
तडिदिव पीत बसन जु पुरंदर–धनु जनु माला बन की ।
मुक्ताहार कंठ उर पर सखि ! पंगति बक–गन की ॥
रूप–वारि बरखत निसि वासर सींचत वृत मन की ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन–धर जीवनि व्रज–जन की ॥

१४७ [सारग]

नंद्–नंदन नवल कुँवर व्रज वर सौभाग्य–सीव
वद्न–ओप देखि सखी ! नैननि मन हरत री ! ।
स्याम सेत अति हि स्वच्छ, बंक चपल चितवनी
मानहुं सरद्–कमल ऊपर खजन द्वै लरत री ? ॥
अलकावलि मधुप–पांति अंगर छबि कहि न जाति ।
निरखत सौन्दर्य मदन–कोटि पांइनु परत री ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर स्यामरूप–मोहिनी,
दिवि–भुवि–पाताल जुवति सहज ही बस करत री ! ॥

---

१ तुम देखो री (प्रचलित पाठ) २ नागर नट की (व १५५–२–९२)

१४८ [सारंग]

कहत न बनि आवै हरि के मुख की सुंदरता ।
नख-सिख अंग विचारत ही नित यहै पचत हारचौ करता ।।
सरद्-चंद जे जलजात सवनि की ओप कांति-हरता ।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग-सींवा ललनु गोवर्द्धन-धरता ।।

१४९ [गौरो]

हरि के नैंननि की उपमा न बन ।
खंजन, मीन, चपल कहियतु ए एसेनि कोन गन ।।
राजीव, कोकनद, इंदीवर और जाति सब रही बिचारि जिय अपनै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर ए परम निचोल रचे सुठनै ।।

१५० [धनाश्री]

रंगीले री! छबीले नैना रस भरे, नाचत मुदित अनेरे रे ।
खंजरीट मानों महामत्त दोउ कैसे हू घिरत न घेरे रे ।।
श्याम, सेत, राते, रँग-रंजित मानों चित्र चितेरे रे ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर स्याम-सुभग तन हेरे रे ।।

१५१ [केदारो]

छिनु-छिनु बानिक और हि और ।
जब देखों तब नौतन सखि री! दृष्टि जु रहति न ठौर ।।
कहा करों परमिति नहीं पावत बहुत करी चित दौर ।
'कुंभनदास' प्रभु सौभग[1]-सींवा गिरिवर-धर सिरमौर ।।

१५२ [केदारो]

सरद्-सरोवर सुभग अग म वदन कमल चारु फूल्यौ री माई ! ।
ता-ऊपर बैठे लोचन दोउ खजन मत्त भए मानों करत लराई ।।
कुंचित केस सुदेस सखी री ! मधुपनि की माला फिरि आई ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरि(वर) धरन लाल हैं भए जुवतिनि सुखदाई ।।

---

१ गोवर्द्धन धर, रसिकराइ सिर० [बध २७-८-१४१]

१८३ [विभास]

तरनि-तनया तीर आवत प्रभात समै
गेंदुका खेलत देख्यौ आनंद कौ कदवा ।
नूपुर कुनित पग, पीतांबर कटि बांधे,
लाल उपरेना, सिर मोरनि कौ चंदवा ॥
पंकज नैन सलोल, बोलत मधुरे बोल,
गोकुल नारी – संग बनी दस छंदवा । १
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धारी लाल,
चारु चितवनि, खोलै कंचुकी के बंदवा ॥

१८४ [पूरबी]

जमुना के तट ठाढो मुरली बजावत
मोहन मदन–गोपाल ।
सीस टिपारो, कटि लाल काछिनी,
पीत उपरेना, उर राजति बनमाल ॥
कमल फिरावत, गति उपजावत,
गावत अति रस–गीत रसाल ।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन मोहत
गोवर्द्धन–धर लाल ॥

१८५ [आसावरी]

जमुना–तट ठाढो देख्यौ आली ! मोहन मदनगोपाल री ।
कसूंभी पाग, पीत उपरेना, उर गज–मोतिनि माल री ॥
देखत ही मन मोहि रहत सखि ! अँग-अग रूप रसाल री ।
'कुंभनदास' प्रभु त्रिभुवन–मोहन गोवर्द्धन–धर लाल री ॥

१९६ (सारंग)

× सोभित लाल परधनी झीनी ।

ता-पर एक अधिक छबि देखियतु जलसुत-पांति बनी कटि छीनी ॥

उज्वल पाग स्याम-सिर राजति अलकाबलि मधु-पीनी ।

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर चपल नयन जुवतिनि बस कीनी ॥

१९७ [केदारो]

सखी ! तू देखि मदनगोपाल ठाढे, आजु नव निकुंज ।

रसिक, रूप-निधान, सुंदर स्याम आनंद-पुंज ॥

कमल नैन विसाल, चंचल, सरस चितवनि-दैन ।

मंद मुसकनि, बदन-छबि पर वारों कोटिक मैन ॥

हिदै माल, मराल गजगति परम मधुरे हास ।

श्रीगिरिधरन-छबि सुजस चित धरि गाइ 'कुंभनदास' ॥

१९८ [विभास]

श्रीस्वामिनी-स्वरूप वर्णन —

सखि ! तेरे चपल नयन, अरु बडे-बडे तारे ।

हरि-मुख निरखि न मात पटनि मे खनु,

निसि-दिनु रहत उघारे ॥

जो आगें तें पंथु रोकते नाहिं स्रवनु तौ

नां जानों कहां चलेजात[1] अपढारे ।

'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन रसिक ए

कृपा-रस सींचि[2] अति सुख बाढे भारे ॥

× इसी प्रकार "ओढे लाल उपेरनी झीनी" इस तुक से परमानंददास कृत पद भी है ।

१ जाते (क) २ सीचे (क)

१५९ [देवगधार]

कुंवरि राधिका ! तू[1] सकल-सौभाग्य सींव
या बदन पर कोटि-सत चंद्र वारों।
खंजन कुरंग-सत कोटि नैननि-ऊपर
वारनैं करत जिय में न विचारों ॥
कदलि सत-कोटि जंघनि-ऊपर,
सिंह सत-कोटि कटि पर न्योंछावरि उतारों।
मत्त गज कोटि-सत चाल पर
कुंभ सत-कोटि इनि कुचनि पर वारि डारों ॥
कीर सत-कोटि नासा-ऊपर,
कुंद सत-कोटि दसननि-ऊपर कहि न पारों।
पक्व किंदूर बंधूक सत-कोटि
अधरनि-ऊपर वारि रुचि गर्व टारों ॥
नाग सत-कोटि वेनी ऊपर
कपोत सत-कोटि ग्रीव-पर वारि दूरि सारों।
कमल सत-कोटि कर-जुगल पर वारने
नांहिन कोउ लोक उपमा जु धारों ॥
'दास कुंभन' स्वामिनी-सुनख सिख
अंग अद्भुत सुठान कहां लगि संभारों ? ॥
लाल गिरिवर-धरन कहत मोहि तौलों सुख
जौलों-उह रूप छिनु-छिनु निहारों ॥

१६० (कल्पान)

सखि ! कहा कहों तुव रूप की निकाई।
नख-सिख अंग-अंग लाल गिरिधरन-हित
रचि-पचि विरंचि अद्भुत बनाई ॥

---

१ राधिका सकल (क)

चाल मत्त मराल, जंघ कदली–खंभ
कटि सिंघ, गौर तन सुभग – सींवा।
उरज श्रीफल पक्व, अलक केकी–छटा
बचन पिक मोहत, कपोत ग्रीवा॥

तरल जुग लोचनं नलिन–श्री-मोचनं
चिबुक सॉवल बिंदु चारु वेस।
स्रवन तार्टंक हाटक रत्न खचित
सुमधिक छबि सोभित कपोल बेस॥

अधर बंधूक – दुति कुंद दसनावली,
ललित वर नासिका तिल–प्रसूनं।
निरखि मुख चंद्रमा रयनि संभ्रम चित्त
चलत ततच्छिन बिछुरि कोक दूनं॥

सकल श्री-सिं इहिं कहां लगु वरनिये ?
कोटि मुख जीभ परमिति न पावै।
'दास कुंभन' स्वामिनी कौ सुजसु
अंतरंगिनी सहचरी मुदित गावै॥

१६१ [नटनारायण]

सखि ! तेरे तन की सुंदरता।
नख–सिख अंग–अंग अवलोकन करि चकृत भयो करता॥
गति अनूप, कटि कृस अनूप, अति उर अनुपम सुभरता।
छबि अनूप उपजति छिनु–छिनु सखि ! अनुपम उज्वलता॥
परमिति करत विचार बिबिध चित नांहिन रहत सुमिरता।
'कुंभनदास' स्वामिनि ! तोहि–वस गोवर्द्धन–धरता॥

१६२ (नट नारायण)

विधाता एकौ विधि न बच्यौ।
लै सब सबु[1] कौ सार राधिका ! तेरे तन आनि सच्यौ ॥
कर पद कमल, जंघ कदली, गति मत्त गयंद मराल
ग्रीवा कपोत, उरज श्रीफल, कटि केहरि, भुजा मृनाल ॥
मुख चंद्रमा, अधर बिंबा, विद्रुम बंधूक सुरंग।
तिल प्रसून शुक नाक, नयन-जुग खंजन, मीन कुरंग ॥
दसनावली वज्र, बिज्जुलता दारयों कुद-कली।
छवि-रुचि कनक, बचन पिक के सम मयूर मधुप-अवली ॥
अद्भुत रचना रची प्रजापति नख-सिख अंग सुख दै।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवरधर-हित पच्यौ परम चित दै ॥

१६३ [नट नारायण]

गिरिधर पिय के हृद बसी तेरे बदन की परम सुदेस छबि।
एक अंग के रूप के आग जात[2] सखि! कोटिसत चंद्रमा दवि[3]॥
नैन अस की सोभा वरनि सकै एसौ कौन कवि ?
'कुंभनदास' स्वामिनि राधिका ! इहै गति तोहि कों यों आइ फवि ॥

१६४ [नट नारायण]

विधि कै रचे विधाता माई री !
तेरे नैन परम रंजन।
सहज सुतिक्ष, सौभाग्य-सींव, गिरिधरलाल[4] के
हृदै में बसत, निसि-दिनु उपमा कों कंज न॥
जब तू व्रज-कुमारि! मुदित अपनें रस,
सकल सुहथ धरि हरि-हेत अंजन।
'कुंभनदास' निरखत हीं गरबु छांडत,
अपनी रुचि कौं खंजन ॥

१ सचु (क) २ भाजत (क) ३ रवि (क) ४ गिरिधरनलाल (क)

१६५ [कानरो]

री राधे ! वदन तेरौ विधि कै रच्यौ ।
त्रिभुवन की कृति छांडि विधाता चितु दै पच्यौ ॥
कमल, इंदु, बंधूक, शुक, पिक, अलि सबु कौ रूप लै छांई सच्यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधारी कों दै भेंट नच्यौ ॥

१६६ [केदारो]

सखि ! तेरी मोहिनी टेढी भोंहैं ।
मोहिनी सुगति टेढी दुंहुं नैननि की
अरु[1] चितबनि टेढी अधिक सोहैं ॥
मोहिनी अलक टेढी – बेढी बहु भातिनि
अरु टेढिये चलनि, पग धरनि धरति सुठोहैं ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर इहि छबि
मोहे री ! इकटकु जोहैं ॥

१६७ [बिलावल]

सखी री ! जिनि व सरोवर जाहि–
अपनें रस कों तजि चक्रवाकी बिछुरि चलति मुख चाहि ॥
सकुचत कमल अकाल पाइके, अलि व्याकुल दुख दाहि ।
तेरौ सहज आन सब की गति, इह अपराधु कहि काहि ॥
इक अद्भुत ससि रच्यौ विधाता सरस रूप अतिसाहि ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर नागर देखे फूलें ताहि[2] ॥

१६८ [बिलावल]

तेरे तन की उपमा कों[3] देख्यौ
मैं विचारि के कोउ नांहिन भामिनि !
कहा बापुरो कंचन, कदली, कहा केहरि, गज,
कपोत, कुंभ, पिक कहा चंद्रमा कहा बापुरी दामिनि ? ॥

१ अति (क) २ चाहि (क) ३ क्यो रच्यौ (क)

कहा कुरंग, सुक, बंधूक, केकी, कमल या आगें
श्री देखिये सब की निःकामिनि ॥
मोहन रसिक गिरि—धरन कहत 'राधे'
परम भांवती तू है' 'कुंभनदास' स्वामिनि ॥

१६९

तेरे नैन चंचल वदन कमल पर जनु जुग खंजन करत कलोल।
कुंचित अलक मनों रस-लंपट चलि आए मधुपनि के टोल ॥
कहा कहों अँग-अँग की सोभा खुंभीनि परसत चारु कपोल।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर देखत वाढै मदन अमोल ॥

१७०

सींवा नैंननि तेरे की ?
अब नहिं दृष्टि दुरांउ री प्यारी सखि! सुनु जिय मेरे की ॥
कमल, मीन, मृग-जूथ भुलाने वर कटच्छ फेरे की।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर रिझवति भ्रुव-विलास घेरे की ॥

युगलस्वरूप-वर्णन—

१७१ (सारग)

बनी राधा गिरिधर की जोरी।
मनहुं परस्पर कोटि मदन रति की सुंदरता चोरी ॥
नौतन स्याम नंद-नंदन वृषभान-सुता नव गोरी।
मनहुं परस्पर वदन चंद्र कों पीवत तृषित चकोरी ॥
'कुंभनदास' प्रभु रसिक लाल बहुविधि व रसिकिनी निहोरी।
मनहिं परस्पर बढ्यौ रंग अति उपजी प्रीति नहिं थोरी ॥

१७२ (बिहागरी)

रसिकनी रस में रहति गडी
कनक-बेलि वृषभान-नंदिनी स्याम तमाल चढी ॥

विहरत लाल संग राधा के कौने भांति गढी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-संग रति-रस केलि पढी ॥

छाक (वनभोजन)—

१७३ [सारग]

सुबल गिरि-ऊपर चढि टेरत।
आबहु वेगि चतुर छकहारी! गिरिधर पेंडों हेरत ॥
भई अबेर भूख जब लागी तब उपरेना फेरत।
'कुंभनदास' औसर पर पहुँची रस में दान निवेरत ॥

१७४ [सारंग]

बिहारीलाल! आई छाक सलोंनी।
अति अद्भुत पठई चंद्रावलि एक गांठि है दोंनी ॥
टेरत स्याम भुजा ऊंची करि गई सुवास आग्योंनी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों विधना रसिक रिझोंनी ॥

१७५ [सारग]

घर-घर तें आई छाक।
खाटे-मीठे और सलौने विविध भांति के पाक ॥
मंडल-रचना करि जमुना-तट सघन लता की छांही।
गोपी ग्वाल सबै मिलि जैंवत मुख हिं सराहत जांही ॥
बांटत बल मोहन दोउ भईया कर दोना अति सोहैं।
चाखत आप सखनि-मुख देखें गोपीजन, मन मोहैं ॥
टेंटी, शाक, सधानो, रोटी, गोरस, सरस महेरी।
'कुंभनदास' गिरिधर रस-लपट नाचत दैदै फेरी ॥

१७६ [मलार]

गहरी सघन स्याम ढाक की छांहि बैठे।
आई सब छाक मिलि काहे कों करत अबारि ॥

उमडि-घुमडि लूमि-झूमि चहुं दिसि तें घटा आई
निधरक भए डोलत देखो निहारि ॥
हाहा ! कहि भली भांति टेरि ग्वाल कीन्ही पांति
अर्जुन ! तुम लेहु. भईया पनबारे देहु डारि ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन लाल छाक बांटि-
जैंमन लागे, आग्यां दीनी तिहीं वारि ॥

१७७ [मलार]

गरजि-गरजि रिमि-झिमि रिमि-झिमि बरसन लाग्यौ
बन मे लै आई छाक औचक गई हौ अटकि ॥
दूजें गई भूलि बाट, निकसी औघट घाट
कठिन पाई गैल तातें फिरी हौं भटकि ॥
भींजें उर व्यजन ढिंग जोबन की संक मानि,
देखि ढाक सधन छांहि धर्यौ डला भूमि लटकि ॥
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धरन-कूक स्रवन सुनत
छाक ढांपि पातनि सों, चली सटकि ॥

१७८ [मलार]

मोहनलाल, बाल हरखि निरखि रीझि रहे,
भींजे सब बसन देखि कहत ' लै री ! पलटि ।
पीतांबर पहरि लीजै छाक बांटि सबनि दीजै
बरखा रितु आई घर कों सिदोसी जाओ उलटि ॥
भूख तें अकुलाइ रहे, खीजत कहत रटत भए,
सकल दुख गए भटू ! तोकों तो भए सुलटि ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर लाल ! अनत जात रहे
तेरे भागि तोहिं पाए अति हि निकटि ॥

१७९ [मलार]

बरजि-बरजि हारे बरजत न डारे
जूठनि मांझ बिंजन, भयौं भोजन हरि।
नीकें सब लिये अघांइ कौर न मुख दियो जाइ
जमुनोदक पान करत अचवन करि ॥
सुबल, तोष, मधुमंगल–परिवृत अर्जुन, भोज, बाहु–सहित
हरि — समीप श्रीदामा कोरि भरि।
बाँटत है बीरा ग्वाल गोवर्द्धन–धरन लाल
'कुंभनदास' बरखा – रितु बरसत झरि ॥

१८० [मलार]

आजु हरि जैंवत अति सुख दीनों।
बरसत मेह नेह उपजावत रुचि-रुचि भोजन कीनों॥
बिडरी धेनु करै इकठौरी भेजि सुबल कों दीनों।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर भक्ति कृपा–रस भीनों॥

१८१ [मलार]

लाल ! बन भयो सकल हरियारौ।
चहूं ओर करि नहारौ लागत है अति प्यारौ॥
यही ठौर भौजन करिवे की बिंजन कहा संभारौ।
सघन कुंज बरसौ किन बादर झूलन और बिचारौ॥
आग्यां दई गोपाल ग्वालनि कों भलौ मतौ जिनि टारौ।
'कुंभनदास' मंडल–मधि सोभित गिरिधर नंद–दुलारौ॥

१८२ [मलार]

आरोगत मोहन मंडल–जोर।
बिंजन स्वाद भेल अति लागत ज्यों गरजै घन–घोरि॥
नन्हीं–नन्हीं बूंद सुहावनी लागत तैसीय पवन–झकोरि।
बौछारनि की फुही परत, कर मेलत मुख में कोरि॥

देखी लाल गांइ सब इत-उत बछरनि घेरत दोरि।
गिरिधर पिय कों देखि महासुख 'कुंभनदास' तृन तोरि ॥

भोजन —

१८३ [टोडी]

जैंवत री! मोहन अब जिनि जाओ तिवारी।
सिंहपोरि तें फिरि-फिरि आवति बरजी हौ सौ वारी ॥
रोहिनि आइ निकसि ठाढी भई दैदे आडि मुख सारी।
तुम तरुनी जोबन-मदमाती एसी जु देखन-हारी ॥
कोउ गरजत कोउ लरजत आवति कोउ बजावति तारी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अब हीं बैठे थारी ॥

१८४ [टोडी]

आजु हमारें मोहन जैवें सोई कीजै व्रजरानी!
कहा भवन मो दूरि जु रहे अब दधि-ओदन भरि धरि हों पानी ॥
वडी बार की उठी बहू बिटिया, कोउ है भोरी कोउ है सयानी।
रचि-रचि बिंजन खाटे-मीठे करि-करि लांउ जोई मनमानी ॥
कहति रोहिनी सुनु हो जसोमति! प्रेम लपेटी बानी।
सैननि-सैननि समझि-समझि करि मन-ही मन मुसकानी ॥
बलदाऊ कों टेरि लिये हैं, दिये सखा पठै, त्रिधि जानी।
'कुंभनदास' गिरिधर लै आए महलनि – सुरति-निसानी

आवनी —

१८५ [धनासिरि]

देखि री! आवनि मदनगोपाल की।
सक्र-वाहन मत्त निरखि लाजत जिय, गति अनूप लटक-चाल की ॥
स्याम-तन कटि-चसन मन हरत, सुन्दर्यता उरसि माल की।
भौंह धनु साजि मानों, मदन-सर चितवनि लोचन बिसाल की ॥

रेनु-मडित कुटिल अलक सोभा कस्तूरिका तिलक भाल की ।
'दास कुंभन' चारु हास मोहै जगतु गोवर्द्धन-धर कुवर लाल की ॥

१८६ [गोरी इकताल]

देखो[1] वे आवें हरि धेनु लिये ।
जनु प्राची दिसि पूरन ससि रजनी-मुख उदौ कियें ॥
मंडल विमल सुभग वृन्दावन राजत व्योम बियें ।
बालक-वृंद नछत्र, सोभा मन चोरत दरस दियें ॥
गोपिनि नैन-चकोर सीतल भए रूप-सुधा हि पिये ।
'कुंभनदास' स्वामी गिरिधर व्रज-जन आनंद हियें ॥

१८७ [श्रीराग]

आवत मोहन[1] चित्त हरयो ।
हौं अपने गृह सचु सों बैठी निरखि वदन अचरा विसरयौ ॥
रूप-निधान[2] रसिक नंद-नंदन देखि नयन धीरजु न धरयौ ।
' कुभनदास ' प्रभु गोवर्द्धनधर अँग-अँग प्रेम पीयूष भरयौ ॥

१८८

एरी ! यह फेंटा ऐंठवा सीस धारें ।
चारु चन्द्रिका राजति तापै राजतार हिं सुधारें ॥
ताढिंग लटकि रही अलकावलि वहु मोतिनि के भारें ।
सुंदर मुख पर रज राजति है [सखनि सहित] गऊ चारें ॥
वन तें वने री ! आवत वनवारि जुवती-जूथ निहारें ।
'कुंभनदास' गिरिधर की छबि पर तन-मन-धन सब वारें ॥

१ देखो हरि आवत धेनु (क) २ आवत गिरिधर मन जु हरयो हो । (वार्ता)
३ रूप अनूप स्याम सुदर कौ देखत मन. (ब १-९/१८१)

१८९ [मलार]

गांइ सब गोवर्द्धन तें आई ।
बछरा चरावत श्रीनँद-नंदन वेनु बजाइ बुलाईं ॥
घेरी न घिरतिं गोप-बालनि पें अति आतुर व्है धाईं ।
बाढी प्रीति मदन-मोहन सों दूध की नदी बहाईं ॥
निरखि सरूप ब्रजराज-कुंवर कौ नैननि हरखि सिराईं ।
'कुंभनदास' प्रभु के चहुं दिसि ते मानों चित्र लिखाईं ॥

१९० [गौरो]

फुटिफट किन लै हौं घेरि ।
बहुतक फैलि रहीं खादर में मुरली सुनावो टेरि ॥
चारि अंजुली न पानी पीजै जमुना कौ, बहुरि अघानी फेरि ।
हुलकत हुँकत करति बछरनि-सुधि धावति खरिकनि हेरि ॥
जो कोउ रहीं और लहेडे में ताहिब लैंहों निवेरि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर भई दुहन की बेरि ॥

१९१ [केदारो]

गोपाल[1] के वदन पर आरती वारों
एकचित्त मन करों साजि नीकी जुगति
बाती अगनित घृत कपूर सों वारों ॥

संख[2]-धुनि, भेरि, मृदग, झालरि,
झांझ, ताल, घंटा जे बहु विस्तारों ।
गाऊं सांवल-सुजसु-रस नेकु सुस्वाद रस
परम हरषित नित चंवर कर टारों ॥

१ लाल के (अष्ट छाप-वार्ता काकरोली)

२ ताल डफ मृदग सख झाझ झलरी घटा बाजे आनग विरुवारौं [ब. २७।४ १४०]

१९४ [धनासिरी-अठताल]

कहा नंद कैं तू आवति-जाति ?
यो भेदै हौं जानति नांहिन?
कहु री? कवन ग्वालि ! तोहि नाति ॥
सांझ सवारें हौं एहि देखति हों
ना जानौं क्यों तोहि रैनि बिहाति ।
अब तो काज सकल बिसराए
गृह-पति तें नांहिन सकुचाति ॥
मदनमोहन सों तेरौ मन अरुझानौं
गृह नहिं चैन होत किहिं भांति ।
'कुंभनदास' लाल गिरधर कौ-
रूप, नयन पीवत न अघाति ॥

१९५ [सारंग]

देखत स्याम-सरूप सखी री ! तेरे नैनां रहि गए एक हिं टक ।
नागरि ! मनहुं चितेरे चितेरी थकित चरन भूली अक-बक ॥
परी सिरसि अति कठिन ठगौरी सुधि-बिनु को मानें काकी सक ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर तनु-मनु चोरि लियो जु अचक ॥

१९६ (सारंग)

तू भांई गोपाल हिं चितै जु हँसी ।
नंद-कुमार[१] देखि अति रीझे मृगनैनी जिय मांझ बसी ॥
गज-गति, चपल सुदेस, किसोरी कुच कठोर चोली सुविधि कसी ।
कचन वरन नवल ब्रज[२]-सुंदरि वदन चारु मानौं सरद-ससी ॥
बोलत चले सुंदर ब्रज-नाइक जहाँ नव निकुंज द्रुम-बेलि गसी ।
'कुंभनदास' प्रभु[३] गिरिधर देखत आरज-पथ तें को न खसी ? ॥

---

१ मदन गोपाल (क) २ गुन (क) ३ गिरिधर मुख देखत (क)

१९७ [सारग]

मोहन हरि मोहनी तोहिं मेली।
रह्यौ न जाइ बढी चौप मिलिवे की कठिन जु प्रीति नवेली ॥
जा दिन तें सुभाइ मृगनैनी ! तू स्यामसुंदर[१]–सँग खेली।
ता दिन तें न सुहाइ भवन सुनि सब बन भँवति अकेली ॥
वा पें प्रान रहत निसि–बासर जहां बनि[२] कुंज द्रुम–वेली।
'कुंभनदास' गिरिधर–रस अटकी श्रुति[३]–मरजादा पेली ॥

१९८ [सारग]

लोचन मिलि गए जब चारयौ।
व्है ही रही ठगी–सी ठाढी उर–अंचर न संभारयौ ॥
अपनें सुभाइ नंदजू के आई सुंदर स्याम निहारयौ।
टग–टगी लगी, चरन–गति थाकी, जिउ व टरत नहिं टारयौ ॥
उपजी प्रीति मदनमोहन सों घर कौ काज विसारयौ ॥
'कुंभनदास' गिरिधर रस–लोभी भलौ तैं आरज-पथ पारयौ ?॥

१९९ [केदारो]

देखे-बिनु नैननि चटपटी लागति
नंद–नँदन की ठगौरी तोहिं है परी ॥
सकल काज विसारे री ! अब तोकों-
रह्यौ न परै घर एकौ घरी ॥

आवत–जात संक न मानति काहू की,
हिलग जु कठिन लोक की लाज बिसरी।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर मन चोरयौ,
गोवर्द्धन–धर तू अपने बस करी ॥

---
१ नदनदन सो (क) २ वन (क) ३ चित्त (क)

२०० [केदारौ]

नैननि चटपटि लागिये रहति है।
हौ देखति हों निसि-दिनु माई! निमि-निमेख न सहति है॥
स्यामसुंदर कौ रूप, माधुरी, देखि-देखिके अंग-अंग[1] लहति है।
'कुभनदास'प्रभु गिरिधर पिय सों तू बतियाँ सैननि हीं[2] कहा कहति है?॥

२०१ [बिलावल]

देखो माई! देखहु उलटी रई ग्वालिनि रीती मथनियां (दही) बिलौवै।
बिनु हि नेत कर चंचल, फुनि तजि नवनीत हिं टकटोवै॥
देखत रूप चिहुँटि चित लाग्यौ इकटकु गिरिधर-मुख जोवै।
'कुंभनदास' बिसरयौ दधि अकबक, औरै भाजन धोवै॥

२०२ [बिलावल]

रूप मनोहर सांवरो नंदजू कौ छोरा
पाछे-पाछें डोलत फिरै तुम करो झकझोरा॥
लालच बिराने अंग की नहीं मानै निहोरा।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर प्रीतम मोरा॥

२०३ [देवगधार]

प्रेम सों झुकि-झुकि मिलवत सोंवत मुख गोपी कौ।
झंका करत भोंह नैननि हँसि लागत है अरु नीकौ॥
कहा री? करों अँचरा गहि ऐंचत गोपी गहति कर पी कौ।
झकि-झोरनि अँचरा कपोल गहि चाहत-चाहत जी कौ॥
या रस कों अनरस नहिं जानत-जानत, हैं हित ही कौ।
'कुभनदास' गिरिधर कौ ध्यान उर और रुचिर वररस फीकौ॥

२०४ [देवग धार]

बहुरि निहोरत[3] स्याम धनी।
नंद-नॅदन, वृषभान-नंदिनी रति रस-रंग सनी॥

---
१ अग लहति है (क) २ मैननि कहा (क) ३ निवेरत (३/१)

स्याम सरूप सुन्यौ पिय-तन में ज्यों धन-तडित बनी ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर बस भए गुन गावति सजनी ॥

२०५ (सारंग)

बिसरि गयो माई ! लाल हि करत गो-दोहनु ।
निरखि अनूप चंद्र मुख इकटकु रह्यौ सांवरौ मोहनु ॥
नवल नागरि विचित्र चतुर अति रूप अँग-अँग सुठोहनु ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ मन हर्यौ कटीली भौंहनु ॥

आसक्ति-वचन

[प्रभुप्रति]

२०६ [सारंग]

परम भांवते जिय के हो मोहन ! नैननि आगें तें मति[1] टरहु ।
तौलों जिउं जौलों देखों वारंवार पा लागों चित अनत न धरहु ॥
तन सुख चैन तोही लों प्यारे ! जौ लों लै-लै आंकौ भरहु ।
रसिकनु मांझ रसिक नँद-नदन तुम पिय ! मेरे सकल दुःख हरहु ॥
आवहु, जाहु, रहहु गृह[2] मेरे स्याम मनोहर ! संक न करहु ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! तुम अरि-गजन कातें व डरहु ॥

२०७ [ईमन]

लाल ! तेरी चितवनि चित हिं चुरावै ।
नंद-गांउ वृषभान-पुरी बिच मारगु चलन न पावै ॥
ह्रौ हरी भरि होत ही काहूं ललिता दृगनि दिखाइ दृगनि दिखावै ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, धर्यौ है तो क्यों न बतावै ॥+

[सखीप्रति]

२०८ [सारंग]

छबीलौ लाल दुहत हे धनु धौरी ।
बारक फिरि चितयो मो-महियां निरखि वदन भई बौरी ॥

१ जिनि (क) २ घर (क)   + यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला ।

कंकन कुनित, चारु चल कुंडल, तन चदन की खौरी।
माथें कनक बरन कौ टिपारो, ओढें पीत पिछौरी ॥
कहा करों मोपे रह्यौ न परतु सखि ! मेली है कठिन ठगौरी ॥
'कुंभनदास' तब सुख, गिरिधर कों जब भेंटों भरि कौरी ॥

२०९ [सारग]

दरसन देखन देहु मेरे आतुर हैं नैन।
बदन चंद-कर पान करें ए चकोर तब हिं माई ! चैन ॥
केते द्यौस भए बीच पारें रोम-रोम रह्यो पूरि मैन।
'कुंभनदास' जब भेटों अंकौ भरि गिरिवर-धरन सब सुख-दैन ॥

२१० [धनासिरी

तौ हौं कहा करों री माई ।
सुंदरस्याम कमल-दल लोचन मेरौ मन लियो है चुराई ॥
लोक-कुटुंब सबनि मिलिके हौं बहुत बार समुझाई।
तऊ मोहिं जसोधा-गृह-बिनु नांहिन परत रहाई ॥
अब तौ कठिन हिलग के कारन, लाज सबै बिसराई।
'कुंभनदास' प्रभु सैल-धरन मोहिं मुसकि ठगौरी लाई ॥

२११ [धनासिरी-इकताल]

मोरे जिय तौ ही तें परति कल नां जौ तें देख्यौ स्यामु।
अंग-अंग की सोभा बरनी न जाइ मो-पहि
मानों प्रगटित अलि ! कोटि-अंम कामु ॥
'कुंभनदास' प्रभु बन गवनत हे कमल नयन धरे भेखु अभिरामु।
गिरिधर नव वर-तनु मन हरिलियो रहि न सकौं कलप-समजात जामु ॥

२१२ [धनासिरी]

जोरी रति नैननि नन मिलाइ।
दूरि हिं भए स्याम घनसुंदर चले द सैन बुलाइ ॥

जब तें दृष्टि परे नँद-नंदन घर आँगन न सुहाइ ॥
अति आतुर मन भयो मिलन कों छिनु-छिनु कलप बिहाइ ॥
सजि सिंगार चली मृगनैनी सब की दृष्टि चुराइ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कों मिली कुंज-वन जाइ ॥

२१३ [सारंग-इकताल]

हिलगनि कठिन है या मन की ।
जाके लयें देखि मेरी सजनी ! लाज जात सब तन की ॥
धर्म जाउ अरु हँसो लोक सब अरु, आवौ कुल-गारी ।
सो[1] क्यों रहै ताहि बिनु देखें, जो जाकौ हितकारी ॥
रस-लुबधक एक निमिख न छांडत ज्यों अधीन मृग गानै ।
'कुंभनदास' सनेह-मरमु इहि गोवर्द्धन-धर जानै ॥

२१४ [सारग-जतिताल]

कहा करों उह मूरति मेरे जिय तें न टरई ।
सुंदर नंद-कुंवर के बिछुरें निसि-दिन नींद न परई ॥
बहुबिधि मिलनि प्रान-प्यारे की सु एक निमिख न बिसरई ।
वे गुन समझि-समझि चित्त नैननु नीर निरंतर ढरई ॥
कछु न सुहाइ तलावेली मन, विरह-अनल तन जरई ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु समाधान को करई ॥

२१५ [सारग-जतिताल]

सुंदर साँवरे कछु कियो
नयन द्वार व्हैं अंतर गवनें मन मानिकु हरि लियो ॥
मारग चले जात मो पहिंतें छीनि कुंवर दधि पियो ।
बदन चूंबि मुसकाइ छबीले कर परस्यो मेरो हियो ॥
इहै पछिताति सखी ! अब जिय में संग हिं क्यों न गियों ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु नाहिंन परत जियो ॥

1 तऊ न रहै (क)

२१६ (धनासिरी)

मेरी अंखियनि यही टेव परी ।
कहा री ! करों सखी ! वारिज मुख पर लागति ज्यों भँवरी ॥
सरकि-सरकि प्रीतम-मुख निरखति रहति न एक घरी ।
ज्यों-ज्यों जतन करि-करि राखति हों त्यों-त्यों होति खरी ॥
खुच रही सखी ! रूप-जलनिधि मे प्रेम-पीयूष भरी ।
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखत लुटत निधी सगरी ॥

२१७ [सारग]

माई ! री नागर नंद-कुमार मो-तन चितैके हसै ।
नवघन श्री बदन, दसन दामिनी लसै ॥
तबहिं और भवन नैन-द्वार व्है धँसै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर प्रान में बसै ॥

२१८ [सारग]

लोचन करमरात हैं मेरे ।
देखन कों गिरिधरन छबीलौ करत रहत बहु फेरे ॥
स्यामघन तन, बदन चंद के तृषावंत ताप सहत घनेरे ।
सादर ज्यों चातक चकोर 'कुंभनदास' ए न रहत घेरे ॥

२१९ [सारग]

मोहिनी मेली हो ! मधु बैननु ।
'मारग छोडि' कह्यौ जब मोसों तब बेधी सर-मैननु ॥
चंचलता की सींव सखी री ! सरद-कमल दुहुं नैननु ।
परम सुजान जनाई सब विधि गूढ भाव गति सैननु ॥
अब तब तें मोहिं कछु न सुहाई, जिय न रहत क्यों ही चैननु ।
'कुंभनदास' प्रभु ठगी अचानक गिरिधर मन हरिलैननु ॥

२२० (सारग)

मान तौ करि हू न आव ।
वह चितवनि, वह हास मनोहर कोटिक दुख विसरावै ॥
निमिख के ओझल होत तलमली तब हि चटपटी नैननि लावै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय सों रूसे ही बोल्यौ भावै ॥

२२१ [सारग]

जो पें चोंप मिलन की होइ ।
तौ कत रह्यौ परै सुनि सजनी ! लाख करै जो कोइ ॥
जो पें बिरह परस्पर व्यापै तौ इह बात बनैं ।
डरु अरु लोक-लाज अपकीरति एकौ चित न गनैं ॥
'कुंभनदास' जो मन मानै तौ कत जिय औरु सुहाइ ?
गिरिधर लाल रसिक बिनु-देखें छिनु-भर कलप बिहाइ ॥

२२२ [सारग]

प्रीति तौ काहू सों न कीजै ।
बिछुरत कठिन परै मेरी माई ! कहु कैसें के जीजै ॥
रति-रति कै करि जोरि-जोरि कै हिलि-मिलि सरबसु दीजै ।
एक निमिख-सम सुख के कारन जुग-समान दुख लीजै ॥
'कुंभनदास' इह जानि बूझिके काहे कों बिखु-जल पीजै ।
गोवर्द्धन-धर सब जानतु हैं उपजि खेद तन छीजै ॥

२२३ [गौरी]

गोपाल सखी ! लियो मेरौ मन चोरि ।
मदनगोपाल[1] चतुर अति नागर नैननि सों नैन जोरि ॥
कमल नयन बैठे हे झरोखां हौं आवति ही खोरि ।
देखत स्याम मनोहर मूरति मारी मदन-सर तोरि ॥
किहिं विधि[2] मिलों सुजान कों[3] सखि ? किहिं मिस जाउं बहोरि ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धारी लाल लई हौं अचानक भोरि ॥

---

१ नदकुमार (क)   २ मिस (क)   ३ को हौ सखि (क)

२२४ [गौरी]

इनि नैननि तुम देखो री माई ! सर्वसु हरिके हरि कों दियो ।
घर में के चोर कैसें रुकत हैं तिन कौ कछु नांहिन जात कियो ॥
कहा करों मेरौ[1] वसु नाहीं परवसु भयो तनु–मनु, बुधि–हियो ।
'कुंभनदास' गिरिधर–बिनु मो पें क्यों हू न परतु जियो ॥

२२५ (नट नारायण)

जो कछु बात कहि गए हो ललनां,
सो कत कीजै स्याम मनोहर ! बन गवनत जब हि गहे मेरे अँचलनां ॥
तब हि तें मोहिं कछु न सुहाइ प्रान–रति–जोयें[2] परै कल नां ।
कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर, पंथ जोवत, इत हिं नैननु लागै पल नां ॥

२२६ [केदारौ]

मन मोह्यौ री ! मोहन नैननु ।
भौंह विसाल, चपल अवलोकनि मनहु नचावत मैननु ॥
'कुंभनदास' प्रभु रसिक–सिरोमनि समुझि न कछुक[3], जनायो सैननु ।
गोवर्द्धन–धर ठगी हौं अचानक रहि न सकति हों चैननु ॥

२२७ [धनासिरी]

इनि ढोटा हौं डहकी री[4] मेरी माई !
चितवनि में कछु टोनों–कीनों मोहन–मंत्र पढाई ॥
विकल भई मन लीने[5]–डोलति बिनु–देखें न रहाई ।
वाट-घाट पुर–बन–बीथिनि में लोक कहै– बौराई ॥
मगन भयौ मन स्याम सिंधु में खोजत ही गैहराई[6] ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर बात कही समुझाई ॥

---

१ मेरे (क) २ ज.बे (क) ३. परी जो जनाई (क) ४ री माई (क)
५ लीनो (क) ६ गै हराई (क

२२८ [धनासिरी]

नयन भरि देखे नंद–कुमार ।
ता दिन ते सब भूलि गयो है[1] बिसरे पति, परिवार ॥
बिनु–देखे हौ विकल भई हों अंग–अंग, सब हारे ।
तामे सुद्धि है साँवरी मूरति लोचन भरि ब निहारे ॥
रूप-रासि परमिति नहिं मानति[2] कैसे मिलों कन्हाई ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर[3] कों मिलबहु री मेरी माई ! ॥

२२९ [रामश्री]

माई ! गिरिधर के गुन गाऊँ ।
मेरे तो व्रत एई है निसिदिन और न रुचि उपजाऊं ॥
खेलन आंगन आउ लाडिले ! नेंकहु दरसन पाऊं ।
'कुभनदास' हिलग के कारन लालचि लागि रहाऊ ॥

२३० [सामेरी]

नैंननि टगटगी लागि रही ।
नखसिख–अंग लाल गिरिधर के देखत रूप सब ही ॥
प्रात कालि घर तें उठि सुंदरि ! जात ही बेचन मही ।
व्है गई भेंट स्याम सुंदर सों अध–भर बिच–पथ ही ॥
घर–व्यौहार सकल सुधि भूली, ग्वालिनि! मनसिज दही ।
'कुंभनदास' प्रभु प्रीति बिचारी रसिक कचुकी गही ॥

२३१ [गौरी]

हरयौ मन चपल चितवनी चारु ।
तक्ति तामरस लोहित लोचन, निरखत नंद-कुमारु ॥
बुद्धि बिथकी, बल बिकल सकल अग, बिसरयौ गृह–व्यौहारु
'कुंभनदास' लाल गिरिधर–बिनु और नहीं उपचारु ॥

---

१ सखि (क)   २ माने (क)   ३. –धर मिल० (क)

२३२ [नट]

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन-धर अंग-अग प्रति जहां[1] ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं ॥
कहा कहों कछु कहत न आयो चोरयौ[2] मन मांगि वे दही।
'कुभनदास' प्रभु के मिलिवे की सुंदर बात सकल[3] सखीनु सों कही ॥

२३३ [नट]

मेरो मन तौ हरि के संग गयो।
नांहिन काहू कों दोस री माई! नैननि के घालें पर-बस भयो ॥
नंद-कुमार जब हीं दृष्टि परे स्यामरूप अपने द्वार व्है अंतर लयो।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों कहा हौ[4] कहोंरी! इननु अपबल मूसि दयो॥

२३४ [केदारौ]

नद-नंदन की बलि-बलि जैये।
स्याम मृदुल कलेवर की छबि देखि-देखि सुख पैये॥
सकल लोक-पति, श्री-पति, ठाकुर रसना रसिक-बिमल जसु गैये।
'कुभनदास' प्रभु गिरिवर-धर कों तनु-मनु सरवसु दये ॥

२३५ [केदारौ]

मोहन-मूरति जिय में बसी।
स्याम-अंग नभ प्रगटित मानों माई! वदन चारु सोभा सरद-ससी ॥
गोप-वृंद-संग खेलत हे सखी री! देखत ही हौ मदन-भुअंगम डसी।
'कुंभनदास' प्रभु अब देखों तब सुख गिरिधरलाल रसिक-रस में रसी ॥

२३६ (सारग)

एक गांउ कौ वास सखी री! कैसै कैं धीर धरों।
लोचन मधुप अटक नहीं मानत जद्यपि जतन करों ॥

१ निरखि नैन, मन रहत तही-(ब व ९८।२) २ चित चोरयौ वे मागि दही (ब. १।१।१७९)
३ सखियनु सो (ब १।१।१७९) ४ कहो री! (क)

इहि पथ गॅवनत हैं गोचारन हौं दधि लै निकरों ।
निरखत रोम-रोम गदगद सुर आनंद उमगि भरों ॥
विनु देखें पलु जात कलप भरि विरहाअनल जरों ।
'कुंभनदास' कहां लों अनुदिन आरज-पथ हि डरों ॥

२३७ (सा ग)

*अब हौं कहा करों ? मेरी माई !
जब तें दृष्टि परे नंद-नंदन घर अगना न सुहाई ॥
घर में मात-पिता मोहिं त्रासत 'तैं कुल-लाज गवाँई'।
बाहिर सब मुख जोरि कहत हैं- कान्ह-सनेहिनि आई ॥
रैनि दिवस मोहिं कल न परति है घर अगना न सुहाई (?)
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर हँसि चित लियो है चुराई ॥

२३८ (जैतश्री)

अरुझि रह्यौ मोहन सों मन मेरौ ।
छूटत नेंकु न छुडायौ सजनी ! चहुं दिसि प्रेम रह्यौ करि घेरौ ॥
नख-सिख अंग रॅगीली बानिक मुसकनि मंद महारस झेरौ ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु भावत नांहिन कोउ अनेरौ ॥

२३९ [नट]

को रोकै री ? आवत इहिं मग पूतरी पोरिया उनके भए ।
अंजन छडनि दई कर सॉकरि पलकनि पल(क) कपाट दए ॥
ठाढे रहे अति प्रेम के बाढे निसि-वासर हरि-रूप छए ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मन के भाजन सब ढूंढि लए ॥

२४० [बिहाग]

निरखत रहिये गोवर्द्धन-रानों ।
मनसा वाचा सुनु री सखी ! मन याहीके हाथ बिकानों ॥

* यह पद स ३८१८ पर सूरसागर मे इसी तुक से छपा है, शब्द-साम्य होते भी दोना अलग से हैं ।

सुंदर स्याम कमल-दल लोचन मो-तन मुरि मुसिकानों ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर मेरे नैननि-मांझ समानों ॥

२४१ [सारंग]

माई री ! स्याम लग्यौ संग डोलै
जित हीं जाउं तित हीं आवतु है अन-बुलाए बोलै ।
कहा री ! करों इनि नैना लोभी बस कीनें बिनु-मोलै ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर हंसि कर घूंघट खोलै ॥

२४२ [सारंग]

मदनमोहन सों प्रीति करी मैं कहा भयो? जो-कोउ मुख मोरयौ ।
इह व्रत तें हौं कबहुं न टरि हों जानि सबनि सों नातो तोरयौ ॥
सास रिसाउ, मात गृह त्रासौ, हौं पति सों मानहुं घट फोरयौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर सों मिलि हों आरज-पथ हौ सबनि सों छोरयौ ॥

२४३ [बिलावल]

लाल-मिलन कौ आगम हौ जान्यों फरकन लागे कुच भुज बांई ।
सुनि री सखी ! इक बात, आवेंगे आजु प्रात,
इनि आनंद अँखियाँ पहिले ही मिलि आंई ॥
कर कौं कंकन दैहों, हिय कों मोतीहार
जिनि मेरे प्रीतम की बात चलाई ।
'कुंभनदास' गिरिधर आवहिंगे तब हौं करोंगी आनंद बधाई ॥

२४४ [सारंग]

सखि ! हौं कहा जानों संकेत ?
'स्याम सुंदर' नाम लै-लै दोस सब मिलि देत ॥
काननि सुन्यौ न नैननि हीं देख्यौ किधौं कारौ के सेत ?
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर जाकौ जासों हेत ॥

२४५ (सारंग)

सखी री ! जीवति हों मुख हेरें ।
कोउ मेरौ सगौ न हौ काहू की, कहति सबनि सों टेरें ॥
जो मन हतो सोई भले करि हों कहा भयो कहे तेरें ?
'कुंभनदास' हिलग की बातें निबरति नांहि निवेरें ॥

२४६ (अडानो)

मोह्यौ री ! ब्रज-मोहन काहे न ऐंडी डोलै ।
भूलि गयो बन धेनु-चरावन बूझति हों बाहै मोहिं बतावो कब वह बोलै ॥
कहूं लकुट, कहुं मुरली, पीतांबर कहुं भूषन खोले डोलै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर मोह्यो खाज परी यह डोलै ॥

मान—

२४७ (धनासिरी)

बतियाँ तेरी ये जिय भावति ।
तबहिं लों सुख गिरिधरन छबीले, जौलों रहों सुनावति ॥
तब ही उत चटपटी लागति जब हि हौ छिनु घर आवति ।
एक तें एक पठावत बोलनु चैनु न क्यों ही पावति ॥
वांरं-वार इहै चरचा सखि ! और न जिय हिं सुहावति ।
'कुंभनदास' प्रभु अति आतुर चित प्रेम-प्रबोध रहावति ॥

२४८ (धनासिरी)

बोलत स्यान मनोहर बैठे कदंब-खंड की छहियां ।
कुसुमित द्रुम अलि-कुल गुजत सखि ! कोकिल कल कूजत तहियाँ ॥
सुनत दूतिका की बचन माधुरी भयो उल्लास वाके मन महियां ।
'कुंभनदास' ब्रज-कुंवरि मिलन चली रसिक कुंवर गिरिधर-पहियाँ ॥

२४९ (धनासिरी)

अब ए नैनांई तेरे करत बसीठी ।
इह नागरि ! जानति हों तातें अब मेरी बात लागति है सीठी ॥

'कुंभनदास' प्रभु तुव रस-बस भए कहि न सकति करुई अरु मीठी।
गिरिधर लाल हिं नचांवति त्यों नांचत इतनी कहति हों दिएं ढीठी॥

२५० [धनासिरी]

हरि कौ वदनु देखत पलु न लागै।
नटवर-वेखु धरें निकुंज मंडप[1] बैठे मनहुं प्रगट ससि श्री लांछनु न लाग॥
इह औसरु टरि जैहै, गहरु न करि मेरी ब कही री! जो[2] इह तेरे मन लागै।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के मिलनु कों,
वेगि चलहु सखि! ज्यों छिनु न लागै॥

२५१ [धनासिरी]

पठई गोपाल हौ तोकों लैन आई॥
ऊतरु न देति मोसों बचन कहत रिसाति अति,
जीत्यो योंही चाहति इह प्रकृति है तेरी मैं जानि पाई॥
भलौ री! सुभाव जनावति अपनों आवत हीं जु लै ठानी लराई।
कहति है सु कहि तूं प्यारी नंदकुमार की,
तातें न हौ बोलति इह जिय जानिके राखों तेरी बडाई॥
बाहिर के फेर करति हैं दूती सों अंतर फूल भई जिय बात भाई।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धरनसबघोष-पति,
अरु गांव के ठाकुर! चलु कहा करों नांहिं कीनी न जाई॥

२५२ [सारंग]

तू नंदलाल हिं बहुत भावति है जु मिलति सुभाइ हँसि करि।
मदनगोपाल निमिख विसरत हदै मॅह रही सुजान वसि करि॥

१ मडल (क)   २ जाइ ले रे (क)

अंग-अंग प्रति तूं मृगनैनी? साजि सिंगार कचुकी के बंद कसि करि।
मांग सुधारि, पहिरि नव भूषन, चंदन अंग चढाइ घसि करि॥
कनकलता-सी तूं व्रजभामिनि! स्यामतमाल कान्ह सों ग्रसि करि।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि मदन-ताप जैसें जाइ निकसि करि॥

२५३ [गौरी]

मनायो न मानें मेरौ हौं हारी।
सिखवत-सिखवत जाम गए पें एकौ न विचारी॥
तूं गुनरूप गरव कत भूलति? समुझति नाहिं न घोष-नारी।
'कुंभनदास' प्रभु बहु-नाइक (लाल) गोवर्द्धन-धारी॥

२५४ [गौरी]

कब की वचन तोसों कहति री माई! हौ
चलति नाहिं न हरि पिय-पहियां॥
रजनी बीतन लागी है एक हि जक,
करत-करत सखि! नांहि[1]-नहियां॥
तोहि मिलन-हित गोवर्द्धन-धर[2] कबके बैठे अकेले बन महियां।
'कुंभनदास' प्रभु के बोलत तोहिं इह ज्ञान रहति जु बार-बार छुडाइ बहियां॥

२५५ [गौरी]

बोलत कान्ह निकुजं।
रितु बसंत मुकुलित द्रुम कानन, विविध कुसुम मधुकर गुंजें॥
नील निचोल पहरि, तजि नूपुर समै जोग्य सजु सुंजें।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलि ससि-विनु निसा तिमिर पुंजें॥

२५६ [नटनारायण]

हरि जु आवन कह्यौ।
काहे कों अब अकुलाति सखी! तूं है दिनु अलप रह्यौ॥

१ नहि नाहि (क) २ .. .धर लाल (क)

नवसत साजि मुदित चित भामिनी! काहे कों मानु गह्यौ।
'कुंभनदास' गिरिधरन मिले-बिनु निमिख न परत सह्यौ ॥

२५७ [नटनारायन]

हरि के बोलत तू चलि री! काहे कों हठु करति।
बात कहेतें रोख होतु है अरुन बरन मुख, नयन भरति ॥
मेरे मनायें मानि री समुझि सखी! हौं तेरे कब की पांइ परति।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कों मिलें ही सचु
छांडि व्रथा सब औरु जिय धरति ॥

२५८ (कानरौ)

तू तौ चलि वेगि रजनी जाइ घटति।
न करु विलंबु मिलि नंद-सुवन कों,
समुझि चतुर सुंदरि! काहे कों सौ बात ठटति ॥
मदनमोहन बैठे बडी बारके तूं है नटति।
'कुंभनदास' गिरिधरलाल स्यामतमाल सों,
कनकलता-सी क्यों न लपटति ॥

२५९ [कानरौ]

कह्यौ न मानति जोबन-माती!
ऊतरु न देति मनावत तोहिं गई अधराती ॥
तूं गुनरूप गरब कत भूलति? जब हौ जाउंगी तब हि रहि है पछिताती।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कों आंको भरि भेटि जुडाइ छाती ॥

२६० [केदारौ]

तब[1] की तू मान कियें रही।
चंद्रमा फुनि प्रगट व्है है इहौ तैं न लही ॥
तिमिर-पुंज निसा जबहिं ही तब न चलि निवही।

---

१ कब (क)

अबहि चहुं दिसि किरनि प्रगटित भई सेत मही ॥
'वेगि चलि सखि ! वेगि चलि' मैं बार-बार कही ।
'दास कुंभन' गिरिधरन - बिनु मिलें, पीर मही ॥

२६१ [केदारो]

तोहिं मिलन-हित बहुत करत हैं मोहनलाल गोवर्द्धन-धारी ।
ऊतरू मोहिं देहि किनि भामिनि ! कहहु कहा है वात तिहारी ॥
देखि री ! तूं जु झरोखां बैठी तन सोहति झुमक की सारी ।
तन-मन बसी प्रान-प्यारे कें निमिख न जिय ते होति निन्यारी ॥
कहि धों सखी[1] कहा हौ आऊं तू घर जाहि बताउं सुचारी ।
'कुंभनदास' प्रभु ए सोवत हैं वह जु देखि[2] ऊंचो चित्रसारी ॥

२६२ [मलार]

रिमि-झिमि रिमि-झिम घन बरसैरी ! ।
बोलत मोर, कोकिला कूंजति तैसीये दामिनी अति दरसैरी ! ॥
धाइ रहे बदरा जित-तित ते झूमि अपने पर परसैरी ! ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय कौ तोहिं मिलनकों जिय तरस री ! ॥

२६३ [केदारो]

तू व देखि[3] निसापति गयो है खसि ।
काहे[4] कों गहरु करति री ! चलहि नैननि दै मसि ॥
चहुं दिसि कानन[5] तिमिर-पुंज तेरौ भांवतौ भयो री ! कुंकुची कसि ।
'कुंभनदास प्रभु' गिरिधर श्रीअग घन में दामिनि-सी लसि ॥

१ सेन बताइ जु ठोर हि सुचारी (क) (२) देखियत (क)
३ देखिरी (क) ४ अब ही काहेको (क)
५. तिमिर कानन भयो तेरौ भावतो उठि कचुकी (क)

२६४ [केदारौ–रूपकताल]

प्रान–नाथ सों सुनि हौ[1] भामिनि ! इतौ मान ना कीजै ।
जा बिनु रह्यौ न परै छिनु[2] बिछुरत ही तनु छीजै ॥
ए नैनिनि के भांवते लाल दिन च्यारि क्यों न देखि सुख लीजै ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर–पिय कँह[3] सरबसु दीजै ॥

२६५ [केदारौ–चर्चरी ताल]

चारु नट–भेखु धरि बैठे[4] गोविंद तहां जहां सघन गहवर निकुंज भवने ।
नागरी! जबहिं नैननि सों नैना मिले तबहि नागर मुदित बिपिन गवने॥
रसिकवर नंद–सुत सुहथ सेज्या रची विविध पट फूल ठवने ।
हंसजा–तटनिकट विमल जल बहत तहां, त्रिगुन चल श्रीखंड–सैल पवने ॥
'दास कुंभन' प्रभु सुजान तोहिं मिलन कों
बहुत आतुर निमिख जुग वितवने ।
जोवत पंथ इकटकु लाल सकुमार सखि !
गोवर्द्धन–धर अखिल जुवति–रवने ॥

२६६ [केदारौ–आठताल]

मेरी बात तू मानि री चलु ।
नद–नंदनु तेरौ पंथ चितवत बैठे अति आतुर बीतत कलप–पलु ॥
जुवति–जाति सताप–हरन सखि ! लोचन भरि देखहु वदन कमलु ।
'कुंभनदास' प्रभु ऑकौ भरि भेटि कुवर[5] सुजान रसिक गिरिधर लाल नवलु ॥

२६७ [केदारौ जातिताल]

मोहन हरि मानि लई तेरी बतियां ।
गिरिधर पिउ एकांति बैठे हे मैं धरी सुहथ जाइ[6] पतियां

१ सुनि (क) २ छिनु इक (प्रचलित) ३ को (क)
४ मेटे (ख) ५ भामिनि कुवर रसिक गिरिधर नवलु (क)
६ तेरी (क)

अब तौही लों धीरजु बांधि सखि ! दिनु गत जाम होइ जौलों रतियां ।
'कुंभनदास' दूती के बचन सुनत[1] ही परम सीतल भई छतियां ॥

२६८ [मलार]

तैं सूधैं बातौ[2] न कही ।
हरि आए तोहिं भवन निहोरन मुख धरि मौन रही ॥
अति अभिमान भलौ नांहि न कछु मरजादा न गही ।
चारि जामु लगु सकल जामिनी एक हि रस निबही ॥
कहा होतु अबकें पछितायें ? जानि जु पीर सही ।
'कुंभनदास' गिरिधरन मिले-बिनु तन-मन काम दही ॥

२६९ [बिलावल]

तोसों जु रस में कछु हसिकें कह्यौ सखि री! तौ करति मानु ।
इतने हि तौ काहे कों रूसति गोवर्द्धन-धारी प्यारौ सुख-निधानु ॥
मेरौ कह्यौ करि, छांडि अटपटी सुनि री ! तजहि तू अपनों सयानु ।
'कुंभनदास' स्वामी सों प्यारी न करिहि निदानु ॥

२७० [बिलावल]

जो तोसों बात कही पिय तेरे तू काहे कों रिसानी ?
प्रान-नाथ सों बीचु पारै सोई अयानी ॥
जा-बिनु रह्यौ न परै छिनु तासों क्यों रूसिये सयानी ? ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन कों सोई कीजे रहिये हृदै लपटानी ॥

२७१ (कानरौ)

न्यांइरी ! तू अलकलडी ।
निसि बासर गिरिधरन लाल कें हृदै में रहति गडी ॥
तौही लों सुख जौलों समीपु रहै एक निमिख भावत नांहिन छडी ।
'कुंभनदास' स्वामिनि राधा है ब्रज-जुवतिनि मांझ बडी ॥

---
१ सुनि (क) २ बातें (ख)

२७२ [कल्याण]

तेरे मन को बातें कौन जानें री !
जो पें डरु होइ तो नंद-सुवन के बोलें
एसी कौन जुवति जो न मानें री ?॥
तेरी अरु हरि की मिलि चलति है याहि ते
निधरक बोलति है माई ! इहै बूझि परति है जिय[1] अपनें री ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरन[2] मनोहर हिं व्रज-जुवति[3] औरु न गनें री ॥

२७३ [केदारौ–अठताल]

कहेतें बात न भावै तोहिं ।
नंदनँदन बिनु रहयौ न परैगो संभारैगी[4] मोहिं ॥
समुझावत हारी तैसी[5] तौ न समुझी,
कहा करौं जो चतुर अजान[6] होहि ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बैठे निकुंज
नट-भेखु धरें चलहि व तौ मुख जोहि ॥

२७४ [केदारौ–अठताल]

हौं बरजति हों माई री ! तूं पिय सों कत बीचु पारति ।
नंद-नंदन तौ नैननि कौ भाँवतौ सुख-निधान, किन रहहि निहारति
मृषा कोप कतहिं करति है सखी री ! छांडि हठ उ अंतहुं जु हारति ?
कमलनयन-बिनु रहयौ उ न परि है मिलि, अकाथ जौवन कव मारति ?॥
'कुमनदास' प्रभु अखिल सुंदरि-पिय इह न बात जीय हूं बिचारति ।
रस-मंहि कुरसु करति गिरिधर सों तूं सखि ! अपनों भरयौ कत ढारति ?॥

२७५ [केदारौ-इकताल]

अनमनी-सी तूं काहे बैठी है री ! कर कपोल्ड दियें ।
हालति, चालति, बोलति नांहिने मानों मौन लियें ॥

---

३ हिय (क) ६ ३ बध २ गिरिधर मनोहर (क) ३ सुन्दरि (क) ६/३
४ तब सभारैगी (क) ५ पै तु समझति नाहिन (क) ६ अयानी (क)

जोई तूं कहि है सोई री ! स्याम मानिहैं
सो बात कहा जाको इतौ किये ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरलाल हिं तेरौ ध्यान रहतु
हैं देखत निसि – दिनु मृगनैनी बसति हिये ॥

२७६ [केदारो-अठताल]

गुंजामनि की माल हारि मोहन राखे रहतु हैं हियें ।
भूषन औरु अनेक अमोलिकु सखी ! ते सबु त्याग किये ॥
तूअ नासिका मुक्ताफल री! अधर अजन[1] रुचि सों उनमान लिये[2]।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर लाल तोहि जपत रहत हैं
निसि–दिन मन, क्रम, वचन हौं कहति सपथ किये ॥

२७७ [केदारो]

भामिनि! छांडि दै किन फेर ।
खसत उडुपति चलत पश्चिम, होति है अवेर ॥
अबहिं बिपिन परि है सखि ! तमचुर की टेर ।
पाछें हू पछिताइगी जब व्है है विरह को घेर ॥
मिलहु सुंदरि! स्यामसुंदर सुनहि बचन मेर ।
'दास कुंभन' लाल गिरिधर जीवन–धन हैं तेर ॥

२७८ (आसावरी)

बोलत कान्ह कुमुद–वन मांहि ।
बनी है मनोहर ठौर कदंब की छांहि ॥
उठि मृगनैनी छांडि दै अभिमानु लागों तुम्हारे पांहि ।
बडी वार भई मोहिं आए चली बगि जांहि ॥
'कुंभनदास' जबहीं चली दूती गहि देखि बांहि ।
गिरिधर लाल कौ त्रास फिरि सकों नांहि ॥

---
१ अगन (क) २ किये (क)

२७९ (सारंग)

मानिनी मान तज्यौ तबही कौ देखत रूप मदनगोपाल कौ।
सपथ करति कबहूं नहिं रूसों चितवौ जिय बस्यौ लोचन विसाल कौ ॥
साजि सिंगारु चली ब्रजसुंदरी भलौ मनाइबे गिरिधरलाल कौ।
'कुंभनदास' कनकबल्ली-सी जनु लपटानी द्रुमतमाल कौ ॥

२८० [कल्याण]

पिय कौ रुख लिये रहों ॥
जो कछु आग्या प्यारौ दैहै सोई ए करों इतनिकु वचन उलटि न कहों ॥
इहै सोचु निसिबासर मेरें जो छिनु पलक बीच पारै तो कैसें कें सहों।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर सों भूलि न कबहूं,
करि सकों मान यह ब जानि चरननि गहों ॥

२८१

उठि चलि काहे न मोहन-मुख जोवै।
बिनु देखे गिरिधरन रंगीलौ, एसैंई वृथा घरी कत खोवै ? ॥
यह जोबनु अंजुली के जल ज्यौं बिनु ब्रजनाथ छिनहिं-छिन छीजै।
विद्यमान अपने इनि नैननि उहि मुखकमल देखि किनि जीजै ?
मेरे कहे तें मानि लेउती काहे कों करति सखी! अनभायौ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर श्रीनागर तजि बैकुंठ खेलन ब्रज आयौ ॥

२८२ (सारंग)

गिरिराज-धरन तोहिं देत मान,
हठ छांडिदै मूरख अग्यान!
सुनु ब्रज-भामिनि! जातु है जामिनी,
होत है भोर, पिया विचारि हरि सों राखु ध्यान ॥
जो छिनु जात सो बहुरयौ न आवत
हरि सों मिलन-बिनु होत हान।

'कुंभनदास' प्रभु लाल गोवर्द्धन बिनती करत हैं
मन-वच करि, घूंघट जिनि ? तान ॥

२८३ [नट]

चलि अंग दुराएँ सँग मेरें ।
लै मुख मौन, कर अधर ओट दै, दसन-दामिनी चमकति तेरें ॥
तजि नूपुर, कटि क्षुद्रघंटिका, श्रवन सुनत खग-मृग हेरें ।
'कुंभनदास' स्वामिनी वेगि मिलि, निपट निकट गिरिधर तेरें ॥

२८४

चलि-चलि री ! वन बोली स्यामा ।
जमुना-तीर सघन कुंजनि में तेरौई नाम रटत घनस्यामा ॥
करि सिंगारु चंचल मृगनैनी पहिरि लै कंठ मोल-श्री की दामा ।
'कुंभनदास' प्रभु भुज भर भेटें गिरिधरलाल सकल सुख-धामा ॥

२८५ (नट)

जो तू अछत-अछत पगु धरनी धरै ।
निसि अंधियारी कोउ न जानें नूपुर-धुनि जिनि प्रगट करै ॥
किसलय, दल कुसुमनि की सिज्जा रची निहारि नव कुंज दरै ।
'कुंभनदास' स्वामिनी ! वेगि मिलि रसिक-राइ गिरिधरन वरै ॥

२८६ [मलार]

तू चलि नंद-नंदन वन बोली ।
करि सिंगार चंचल मृगनैनी पहिरि कसूंभी चोली ॥
कुच कठोर, नैन अनियारे लै मिलि भेंट अमोली ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मिलि हैं अंतर-पट खोली ॥

२८७ [मलार]

तेरौ मन मोहन[1]-बिनु न रहैगौ।
उमडी घटा सावन भांदौ की पंछी सब्द कहैगौ ॥
तब तू मोहिं सँभारेगी तब-जब तोहिं मदन[2] दहैगौ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु प्रेम प्रवाह वहैगौ ॥

२८८

बंदे जो जबहिं मान धरि आवै।
सुंदर स्याम बहुरि सन्मुख व्है अंबुज-बदन दिखावै॥
तबलगि मान करहु कोउ कैसें, जबलगु वह दरसन नहिं पावै।
दृष्टि परें मन मधुकर तिहि छिनु सहज सरोज हिं धावै॥
त्रिभुवन मांझ होउ बदे जुवती आरज-पँथ हिं दृढावै।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कुल-मरजादा ढावै ॥

२८९

मोहनराइ बोली री! अधरतियां,
उठि चलि वेगि लाल गिरिधर पे, यह लै पिउ की पतियां ॥
सुनि मृदु वचन भई अति आतुर धर-धर करै री छतियाँ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर की मानि लई सब बतियाँ ॥

२९०

मन वच थकित, करौं कैसी री!
छिनु-छिनु पांइ लागति नांहिन मानति तूं अति, मानों पाट बैसी री
मुख उ नहिं देखिहि किनि सुंदरि' चंद्रकला नभ में पैसी री।
कुंज-भवन के द्वारें उलकति भीतरि जाति नहिं भांति तैसी री! ॥
मोहन नागर तुव पथ चितवत कितनी जानि आरति ऐसी री।
'कुंभनदास' गिरिधरन भेंटि प्यारी, भांवति मोहिं बात ऐसी री ॥

---
1 गिरिधर-बिनु (पाठभेद) 2 अतनु (वध १५-२/१९८)

२९१ [नट]

राधे ! तैं मान मदन-गढ़ कियो ।
वाकौ कोट ओट घूंघट की ताहिनै जात लियो ॥
पठए बसीठ दूत दूतनि-मिलि तिनि कछु ऊतर न दियो ।
'कुंभनदास' प्रभु छुवत मिलवत अधर-सुधा-रस पियो ॥

२९२ [कान्हरौ]

लै राधे ! गिरिधर दै पठई अपने सुदर मुख की वीरी ।
सुनहु संदेसौ प्रान-प्यारे कौ कित सकुचति आवै किनि नियरी ?॥
घूंघट खोलि नैन-भरि देखहु बांचि लेहु प्रीतम की चियरी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मिलि आँखें छतियां करि सियरी ॥

२९३ (रामकली)

सखी री ! सौने सीतल लाग्यौ ।
मिलि रस रूचिर प्रेम आतुर व्है, चारि जाम पिय जाग्यौ ॥
करि मनुहारि वहुरि हौ पठई अधर-सुधारस लाग्यौ ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर तेरे प्रेम-रस पाग्यौ ॥

परस्पर-सम्मिलन—

२९४ [आसावरी]

मदनगोपाल-मिलन कों राधे ! द्यौस कुंज-बन बनि चली कामिनि
सकल सिंगार विचित्र विराजित नखसिख-अंग अनूप अभिरामिनि ॥
जोवन नवल ठौनि, कटि केहरि, कदलि जघ जुगल गज-गामिनि ।
चकई बिछुरि, कमल पुट दीनों कियो है उद्योत ससी भई जामिनि ॥
ठाढी जाइ निकट पिय कें भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर कें [१]लागि सोहै जैसे-घन-मॅह दामिनि ॥

१ हदै लाग्रि (क)

२९५

मोहनराइ लीनी लाइ छतियां।
चंचल चपल मृगनैनी राधे बोली मधुर सब बतियां॥
नखसिख-रूप अनूप बिराजित ए सब रस की गतियां।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर वस कीन्हे जमुना-पुलिन सरद की रतियां॥

२९६ (नट-नारायण)

जान न देहों प्यारे! काहू के भवन।
गिरिधर पिय! अब पर-पनु देखों
राजीउ कहावत हो? बहुरॅवनी-रमन!
जोहो हौ बची, डोली तुम तोहीं
अपबल भए अब हि जानों जो- करहु गवन।
'कुंभनदास' प्रभु इतनी कही जो मोसों-
अकसि करि सकै सो है ऐसी कवन?॥

२९७ (ईमन)

ऐसी को मन भाई?
बनि-ठनि कहां कों चले सांवरे! ऐसे कुंवर कन्हाई।।
मुख देखत जैसे दूज कौ चंदा छिपि-छिपि देत दिखाई॥
चले जाउ नेकु ठाडेइ रहोगे किनि? ऐसी सीख सिखाई।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर निकसि जाइ ठकुराई॥

२९८

आजु ऑजी आछी ॲखियां सारंगनैनी मान सों।
लगति मनों गज-बेलि की गांसी सानि धरी खरसान सों।।
अंर कोर चलि जाति स्यामता तकति तरुणि नैन-बान सों
स्यामसुभग तन घात जनावति प्रगटत अधिक उनमान सों॥
घूंघट मे मनमथ कौ पारधी तिलकु भाल, भृकुठी कमान सों।
'कुंभनदास' सजि सुरतिलरन चली गिरिधर रसिक सुजान सों।।

शयन—

२९९ [केदारौ]

वे देखि बरत झरोखें दीपकु हरि पौढे ऊंची चित्रसारी ।
सुदर बदन निहारन–कारन राख्यौ है बहुत जतन करि प्यारी ॥
कंठ लगाइ, भुज दै सिरहानें, अधर–अमृत पीवति सकुमारी ।
तन[1]–मन मिली प्रान-प्यारे सों नव[2] रंग-रस बाढयौ अतिभारी ॥
कुंभनदास दंपति[3] सौभग–सींवां जोरी अद्भुत बनी इकसारी ।
नवनागरी मनोहर राधे, [4]नव नागर गोवर्द्धन–धारी ॥

३००

पौढे हैं दोऊ पिय प्यारी ।
मंद सुगंध पवन जहां परसत तैसिये राजति निसि उजयारी ॥
विविध भांति फूलनि की सिज्जा सुख-विलास बाढ्यौ अतिभारी ।
तैसिये मिलि रही नव कुंजें तन पहिरे नव तनसुख–सारी ॥
कंठ मेलि भुज, केलि करत हैं ज्यों दामिनि घन होत न न्यारी ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन–धारी सुख–सागर उपज्यौ रंग भारी ॥

३०१ [केदारौ]

राधा के सँग पौंढे कुंज–सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारें ठाढी ।
नदनदन कुंवर वृषभान–तनया सों करत केलि में जु रुचि बाढी ॥
पिया–अंग–अंग सों लपटाइ स्यामघन,
पिय-अंग–अंग सों लपटाई स्यामा ॥
दोउ कर सों कर परसि उरोज अति–
प्रेम सों कियो चुंबन अभिरामा ॥
लाल गिरिधरन कों कंठ लागि पुनि,
बहुत भांति करि केलि, निसि सुख दीनों ।
'दास कुंभन' प्रभु प्रात बन–कुज तें,
प्यारी–कंठ भुज मेलि गवन कीनों ॥

---

१ हिलि मिलि रही प्रान (ब ११।११८९) २ नौतन छवि बाढी (ब. ११।११८९)
३ कुभनदास प्रभु (१।१। १८९) ४ नवल लाल ,,

३०२

पौढे राधिका के संग।
रंगमहल की ललित तिवारी परदा परे सुरग॥
जगमगात नव भूषन, रतन जटित बहु अंग।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर मोहत कोटि अनंग॥

३०३

रिमि-झिमि रिमि-झिमि बरसत मेह।
अहो लाल! कैसें आऊं ऊंची चित्रसारी॥
उमडि-घुमडि आए बादर चहुं दिसि तें,
लै चलि हो इहां भींजे मेरी सारी॥
उठिके लाल पीतांबर ढांप्यो लैगए तहां, जहां गोख--तिवारी।
'कुंभनदास' पौढे रंगमहल में दोउ मिलि रति-सुख बिलसत भारी॥

सुरतान्त —

३०४ (बिलावल-इकताल)

काहे बांधति नांहिन छूटे केस ?
ससिमुख पर घन-धार वाढी कछुक जु चली मानों उर-देस॥
अंग-अंग औरु इहै सोभा कहा कहों ? निसा जागी, आई औरहि वेस।
'कुंभनदास' अति चोंप[१] तें चोंप भई गोवर्द्धनधर मिले व्रज[२]जुवति-नरेस॥

३०५ [बिलाबल-जातीताल]

मोतिनि मांग विथुरी ससिमुख पर,
मानहुँ नछित्र आए करन पुजा
अंचल फरहरात उर पर बांधी काम-धुजा॥
विरह राहु ते छूटें सकल कला
विमल भई देखत सुखुजा।

१ ओप (क) २ व्रज-जुबनरेस (ख)

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
अधर-सुधा रस कियो पानु कंठ मेलि उदार भुजा ॥

३०६ [बिलावल-जतिताल]

रसमसे नैना तेरे निसि के उनींदे ।
काहे कों दुरति[1] उलटि बात प्रातहीं जु धुनींदे ॥
वदन आलस मे आलस की जँभाई बोलति अलसांइ बचन छींदे[2] ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर मिले तोहिं सकल अंग में बींदे ॥

३०७ (बिलावल-जतिताल)

तू तो आलस-भरी देखियति सखी री !
रजनी चोर तातें आंखि न लागी अरु अकेली, भामिनि ! कुंज बसी ॥
घर-विरुद्ध तैं रूसी काहू जानी नव वन कों दिन गतहिं नमी ।
'कुंभनदास' गिरिधर के कंठ की इह जानति हा
तो तौ गिरि पांइ मोतिनि-माल खसी ॥

३०८ (बिलावल)

आजु व देखियत वदन डहडह्यो प्यारी ! रगमगे नैनां तेरे रंग-भरे ।
मानहु सरद्-कमल-ऊपर उन्मद जुगल खंजन लरे ॥
रसिक-सिरोमनि लाल सु सीतल सुखद कमल कर उर धरे ।
'कुंभनदास' काहे न फूलै ? गिरिधर पिय सब दुःख हरे ॥

३०९ [बिलावल]

काहे तैं आजु विथुरी प्यारी ! क्यों री[3] न बांधहि अलक ।
भौंह कमान, नैन रतनारे मानु[4] न लागी पलक ॥
रति-रस-सुख की फूल जनावति मद[5] गयंद की चाल भलक ।
'कुंभनदास' मिली गिरिधर कों मानों कोटि चंद झलक[6] ॥

---

१ दुरति जु (क) २ छांव द (क) ३ क्यो न (क) ४ सानु (ख)
५ मत्त (क) ६ रुलक (क)

३१० [बिलावल–इकताल]

जानी, मैं[1] री ! आजु तू मिली प्यारे सों
तैं अपनौं भांवतौ है[2] री माई ! कियो।
सकल रयनि रति – रस[3] रंग खेलत
पलक सों पलक लागन न दियो ॥
कंठ लागि दै भुजा सिरहाने[4] रसिकलाल कौ अधर–सुधा रस पियो।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर–धर कों आंकौ भरि भेटि जुडायो हियो ॥

३११ [कानरौ]

तैं (तौ) लाल बिलगु करि पायो।
विविध भांति संग खेलि सखी ! तैं कियो आपुनो भायो ॥
रसिकराइ सिर–मौर नंद–सुत हिलि-मिलि रंगु बढायो।
सुरत–सुधा निधि[5] अपनें बस करि जाइ निकुंज बसायो ॥
तू राधे ! बडभाग उदित जिनि त्रिभुवन – पति अरुझायो।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर हँसि–हँसि[6] कंठ लगायो ॥

३१२ [केदारौ]

डगमगि चालि आजु कछु औरहि वदसि माई री ! रही है बैनी छूटि।
अधर निरंग अरु नख लागे उर पर, मरगजी चोली मोतीलर गई टूटि ॥
अंचल पीक तेरें लागी है री, जहाँ–तहाँ सैननि सखी सकल करैं कूटि।
'कुंभनदास' सौरभ भरी[7] जोवन-धन गिरिवर[8]–धरन लालन लई लूटि ॥

३१३ [केदारो]

मिलेकी फूल नैनांई कहैं देत तेरे।
स्यामसुंदर मुख – चुंबन परसे नांचत मुदित अनेरे ॥
नंद–नंदन पैं गयो चाहत हैं मारग श्रवननु घेरे।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर–रसभरे करत चहूं दिसि फेरे ॥

१ मैं आजु (क) २ ही माई (क) ३ सुरग (ख) ४ सिराहने (क)
५ रस (क) ६ हरि (ख) ७ सुघरि धरी (क) ८ धरन लालनु (क)

३१४   [केदारौ-अठताल]

माई ! तेरे फूलिबे कौ न्याउ ।
गिरिधर लाल सकल अँग परसे, तातें तन-मन चाउ
सुंदर स्याम मिलगु करि पाए सघन निकुंज परि गयो सखि ! दाउ ।
'कुंभनदास' प्रभु आनद-सागर नंद-कुमार रसिक-राउ ॥

३१५   [केदारौ जतिताल]

तेरौ भांवतो भयो री ! काहे ना फूलै ।
गिरिधर लाल मनायो मान्यों कठ लाइ
कियो अधर-पान आई मेटि बिरह-सूलै ॥
बिविध बिहार विविध रस पिय-संग
सुरत करति कालिंदी-कूले ।
'कुंभनदास' आनंद-भरी लागतु नांहि न पांउ,
नंद-नंदन भेटे रस-मूलै ॥

३१६   (ललित)

आजु कौन अँग तें व्रज-सुदरि ! रसिक गोपाल हिं भाई ।
सकल सिंगारु साजि मृगननी एसेई भले बेगि चलि आई ॥
लहँगा लाल, झूमकी सारी कसूंभी बरन पिय-हेत रंगाई ।
नयन रसमसे आलस जुत सब अँग-अँग प्रति बहु छबि छाई ॥
. .   . .
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर अपने जानि हँसि कंठ लगाई ॥

३१७   [विभास]

आजु तेरी चूनरि अधिक बनी ।
बार-बार जु सराहत मोहन राधाजू परम गुनी ॥
अंजन नैन, तिलकु, सेंदुर छबि, चोली चारु तनी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर सों रति रस-रंग सनी ॥

३१८ (बिलावल)

* सोइ उठी वृषभान-किशोरी ।
अलसानी अँगराइ मोरि तनु ठाढी उलटि उभय भुज जोरी ।।
तव कर-बीच वदन यों राजत मोहै मोहन प्रीति न थोरी ।
नाल-सहित मानों सरोज-जुग मधि बंध्यो इंदु गरव गहोरी ।।
तिहिं छिनु कछुक उरज ऊंचे भए सोभित सुभग कहे कवि को री !
मानों द्वै कमल सहाइ सहित, अलि उठे कोपि मन संक न जोरी ।।
तापर लोचन चारु, मनोहर अरुन-कोर त्रिभुवन-छबि चोरी ।
'कुंभनदास' इंदीवर-विवि जनु विरचित सरस देखि एकोरी ।।

३१९ (सारंग)

डोलति फूली-सी तूं कहा री ! ।
मृगनैनी देखियत है आजु मुखचंद उहडह्यो भारी ।।
कंचुकी पीत, लाल लहंगा पर बनी रगमगी सारी ।
नूपुर रुनझुनात, कटि मेखल, मल्हकनि चाल निन्यारी ।।
काजर तिलकु दियो नीकी विधि रुचि-रुचि मांग सँवारी ।
'कुंभनदास' गिरिधर सों नयो रंग जानी बात तिहारी ?।।

३२० [विहागरो]

तेरे सिर कुसुम विथुरि रहे भामिनि !
सोभा देत मानों नभ निसि-तारे ।।
स्याम अलक छुटि रही री ! वदन पर
चंद छिप्यो मानों- बादर कारे ।।
मुक्ता-माल मानों मानसरोवर, कुच चकवा दोउ न्यारे ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर बस कीन्हें नंदलाल पियारे ।।

* यह पद स. ७७ परि (१) ये सूरसागर मे पाठभेद से छपा है। सूरकृत होने मे सम्पादक को अर्ध सन्देह है। स भ. बध ३।१'४१८ मे कुभनदास कृत है।

खण्डिता (वञ्चिता)

३२१ [विभास]

सांझ जु आवन कहि गए लाल ! भोरु भए देखे ।
गनत नछित्र नैन अकुलाने, चारि पहर मानों चारयों जुग विसेखे ।।
कीनी भली जु चिन्ह मिटाए, अधर निरंग अरु उर नख–रेखे ।
'कुंभनदास' प्रभु रसिक–सिरोमनि गिरिधर ! तुम्हारे कैसे लेखे ? ।।

३२२ [विभास]

लालन[१] ! इतनि बार जो–तुम कहां रहे ?
सगरि रैनि पथु चांहत–चांहत नैन दहे ।।
' कुभनदास ' प्रभु भए ताहि बस जिनि व गहे ? ।
गिरिधर पिय ! भले बोल निबाहे संध्या जु कहे ।।

३२३ [विभास]

निसि के उनींदे मोहन नैन रसमसे ।
कहा कें लजांत कहहु धों लालन ! कहां बसे ?
डगत[२] चलत, आलस जभात हो, वंदन रेख देखियत वसन खसे ।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवरधर ! तुम भुज-बंधन उरहिं लाइ कसे ।।

३२४ [बिलावल]

कहो धों कहां तुम रैनि गॅवाई ? लाल ! अरुन उदय आए ।
कौन सकोच घनस्याम सुंदर ! तमचुर बोलत उठि धाए ।।
ऑखि देखि कहा साखि बूझिये ? रति के चिन्ह तन प्रगट लाए ।
'कुंभनदास' प्रभु (सु) जान गिरिधर काहे कों दुरत पिय ! जानि पाए ।।

३२५ [बिलावल]

कहो धों आजु कहां वसे लाल ! भोरु भऍं आए डगमगात पग ।
खरे सवारे क्यों उठे ? मोहन ! बोलत तमचुर[३] खग ।।

---

१ इतनि बार लो (क) २ झुगत (क) ३ तमचुर वर खग (क)

काजर अधर, लटपटी पाग, उर विलुलित कुसुममाल कुच-परसग ।
अरुन नैन, आलस जंभात पिय ! रैनि कियो जग ? ॥
रति के चिन्ह प्रगट देखियत काहे कों दुराव करत स्याम ! सुभग ।
'कुंभनदास' रसिक गिरिधर परे चतुर नागरि[२]–फग ॥

३२६ [बिलावल]

* तुम्हारे पूजिये पिय ! पांइ,
कैसी–कैसी उपजति तुम पहिं कहत बनाइ–बनाइ ॥
अरुन अधर क्यों स्याम भए ? ए क्यों परे पट पलटाइ ।
क्यों रचे कपोल पीक, कहां पायों उर जय-पत्र लिखाइ ॥
गिरिधर लाल जहां निसि जागे, तहीं देहु सुख जाइ ।
'कुभनदास' प्रभु छांडो अटपटी अब हि व को पतिआइ? ॥

३२७ [बिलावल]

ऐसी बातनि लालनु ! क्यों मन मानें ?
ऊनरु बनाइ–बनाइ तासों कहिवे जो इह न जानें ॥
रति के चिन्ह सब प्रगट देखियत कैसें दुरत दुरानें ।
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर ! तुम हौ भले सयानें ? ॥

३२८ [बिलावल]

सांझ के सांचे बोल तुम्हारे ।
रजनी अनत जागि नँद-नंदन ! आए हौ निपट सवारे ॥
आतुर भए नील पट ओढे, पीरे बसन बिसारे ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन–धर ! भले वचन प्रतिपारे ? ॥

३२९ [ललित]

आजु निसि जागे अनुरागे पागे कौन रंग रंगे हौ ? लाल !
अरुन नैन, अरु माल मरगजी देखियत, सिथिल गति अरु चाल ॥

---

१ नागर (ख) * यह पद स ३२९६ पर सूरसागर में कुछ परिवर्तन से छपा है– पर 'क 'ख' प्रति मे होने से कुभनदास कृत है ।

कहा कहौं छबि कहत न आवै अँग-अँग बोलत आल-बाल।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर पिय! भले जु कहा किये हाल ? ॥

३३० (विभास)

कौन के भवन नीकें रैनि बसे हौ ?
जिनि सकुचौ पिय! ऊचे क्यों न चाहिए ॥
आई जु, आइए मेरें भले पांउ धारिए,
पलकनि मग झारौं भागि जगाइए ॥
रंगमगे पेंचनि खुलि रही अलकें
खमत पीत पट अँग हुं सँवारिए।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर की कहो जो-
कहाँ लौं निरखि-निरखि छबि अति सुख पाइए ॥

३३१ [बिलावल]

काहे मोहन! बोलत नाहिनें ? हम तें कहा लजानें ?।
वाही बगर तें आवत देखे मैं जीए जब ही जानें ॥
करनफूल भुज-मूलनि सोभित ककन-वलय चिन्ह पहिचानें।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के ढंग मोतें कहा अजानें ? ॥

३३२ [रामकली]

स्याम सुंदर! रैनि कहां जागे ?
देखियतु बिन-गुन माल, अधर अंजन,
भाल जावक लग्यौ, गाल पीक पागे।
चाल डगमगी, अति सिथिल अँग-अँग सब,
तोतरे बोल, उर नखनि दागे।
गड्यौ कंकन पींढि, निपट बिह्वल दीठि,
सबैरी लाल! नहिं पलक लागे ॥
कहिए साँची बात, काहे जिय सकुचात? कौन त्रिय जाके अनुराग-रागे।
'दास-कुंभन' लाल गिरिधरन एते पर करत झूठी सौंह मेरे आगे ॥

३३३ [ललित]

सिसकि-सिसकि रही अपने भवन में चार मास कौं, कियो है बिहारि।
नंद-सुवन ब्रजराज सांवरो मोह्यौ परम चतुर ब्रज-नारि ॥
कब आवेंगे मेरे गृह में? विधना सों मागों अँचरा पसारि।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! जाड्यौ चल्यौ दोऊ कर झारि ॥

विरह [द्वितीय अवस्था]—

३३४ [धनासिरी-जतिताल]

कब हौं देखि हौं भरि नैननु।
सुंदर स्याम मनोहर इह अँग-अँग सकल सुख दैननु ॥
वृंदावन-विहार दिन-दिन प्रति गोप-वृंद संग लैननु।
हँसि-हँसि हरखिय[1] वोबा पीवनु बांटि-बांटि पय फैननु ॥
'कुंभनदास' किते दिन बीते किये रैनि-सुख सैननु।
अब गिरिधर-बिनु निसि अरु बासर मन न रहत क्यों[2] हू चैननु ॥

३३५ [धनासिरी-इकताल]

अब दिन-राति पहार-से भए।
तब तें निघटत नांहिन जब तें हरि मधुपुरी गए ॥
इह जानियति[3] विधाता जुग-सम कीने जामु नए।
जागत जात, विहात न क्योंही, एसे मीत ठए ॥
ब्रजवासी सब परम दीन अति व्याकुल सोचु लए।
जनु बिनु-प्रान[4], दुखित जलरुह-गन दारुन हेम हए ॥
'कुंभनदास' बिछुरि नंद-नंदन बहु संतापु दए।
अब गिरिधर-बिनु रहत निरंतर लोचन नीर छए ॥

---

१ हरखित पान खवावनि (प्रचलित) हरखित पानखेवनि (क) हरखि पतौआ (अष्ट छाप वार्ता)
२ क्यों चैननु (ख) ३ जानियत (क) ४ ज्योबिनु-प्रान (क)

ए बातें कहियो न्यारे व्है जब कोउ होइ न संग।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! ए व तुम्हारे रग ॥

३४० (सारग)

बीते[1] हो माधौ ! एते दिनां।
कितीक दूरि गोकुल अरु मथुरा किधों पहिचान्यों ही किनां ॥
कबहूं इतनों[2] सदेश न पाती, सुरत्यौ विसारी तोरचौ प्रीति-तिनां।
' कुंभनदास ' प्रभु गिरिधर - बिनु अब वीततु कलप छिनां ॥

३४१ [गौरी]

तुम्हारे मिलन-बिनु दुखित गोपाल !
अति आतुर[3] ब्रज-सुंदरि प्यारे! बिरह विहाल ॥
सीतल चद्र तपनु भयो दहतु किरननि
कमल-पत्र[4] जनु- गरल-व्याल ॥
चंदन कुसुम सुहाइ न बाढी तन-ज्वाल।
' कुंभनदास ' प्रभु नव घनस्याम ! तुम-बिनु-
कनक - लता सूखी मानों ग्रीषम काल ॥
अधर-अमृत सींचि लेहु गिरिधरन लाल ' ॥

३४२ [मलार]

घटा घनघोर उठी अति कारी।
मुरछि परी गिरी धरनी पर विकल भई ब्रज-नारी ॥
कूक महूक दामिनी कोंधति घेरि विरहिनी जारी।
'कुंभनदास' प्रभु राखि लेहु किनि 'सुख-निधान गिरिधारी ! ॥

३४३ (नट-नारायण)

कारी निसि मे दामिनि कोंधति।
हरि समीप-बिनु सूनी सेज अकेलें हौं माई ? डरपति चोंधति ॥

---

१ हो जीते हौं (ख) २ इतौ (क) ३ आतुर कुलवधू व्रजसुन्दरी (क)
४ कमलपत्र जलपत्र जनु (ख)

ज्यों-ज्यों व सुरति होति प्रीतम की, नैननि ढरत जल ज्यों गगरी औंधति।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर-बिनु अब नींद गई, छिनु-छिनु छतियां रौंधति॥

३४४ [नटनारायन]

पीउ आए नांही सखी री! जागत ही मोकों जात[1] निसा।
चारचों जाम रही बैठि नैन अकुलाने जोवत दसहुं दिसा॥
तेरे भरोसें हौं रही नां जानों तूं गई[2] गिरिधर[3] लालन पें
किधों कियो मोसों एसें हि मिसा
'कुंभनदास' प्रभु-बिनु[4] मेरी आली!
लागी ज्यों चातक घन की तिसा॥

३४५ [नटनाराइन]

* नैन घन रहत न एकु घरी।
क्यों हू न घटति सदा पावस ब्रज लागिय रहति झरी॥
विरह इंद्र बरखावत निसि-दिनु है अति अधिक करी।
उर्द्ध स्वास समीर तेज जल उर भूमि उमगि भरी॥
बूडति भुजा रोम अंबर द्रुम अँस कुच उचमि थरी[5]।
चलि न सकत पग, रहे पथिक थकि चदन-कीच खरी॥
सब रितु मिटी भई अब एकै, वह विधि उलटि परी॥
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु नीति मरजाद टरी॥

३४६ [मलार]

आए माई! बरिखा के अगिवानी।
दादुर, मोर, पपीहा बोलत कुंजनि सुनिऐ[6], बग-पंगति उडानी॥
घन की गरज सुनिकें कैसें जीऊं माई! कारे बादर देखि सयानी!।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल सबै सुख-दानी॥

१ गई (क) २ गई ही (क) ३ .धरनलाल पे (क) ४ बिनु आऔ (क)
५ उच्च थरी (क) ६ ए दीसे (क)

* यह पद स. ४७३२ पर सूरसागर मे छपा है पर क ख प्रति मे होने से कुंभनदास कृत ही है।

३४७ [मलार]

वरिखा कौ आगमु भयो री ! चातक, मोर बोलत दुहुँ[1] दिसा।
उने उने उठत कारे बादर सुहाए रु
तामें बग उडत समूह निकुर[2] रलाई दिन सारसा ॥
हरि-समीपु बिनां कैसें भरों ए दिन,
दादुर की रटनि नींद न परै निसा।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर माई! अजहुं न चितु कियो
इतकों, बिछुरनु पर्यौ मेरे हिसा ॥

३४८ (मलार)

हौं जगाई री माई! बोलि-बोलि कें इनि मोरा।
वरखत बूंद अँध्यारी चौमासे की कैसे भरों पार्यौ है बीचु नंदकिसोरा ॥
सेज अकेली डरों दामिनि कोंधति बोधति घन गरजत चोहूं ओरा।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिवर-धर मोहि मिलाइ[3] री ! जैसें व लागी रहों कोरा ॥

३४९ [केदारो]

उलरे[4] बादर चहूं दिसा ते।
गिरिधर पिय-बिनु सेज अकेली डरपति हों[5] निसा तें ॥
इहै ि्तु ओरु बिछुरनों ऐसौ लिख्यौ[6] विधाता कौन रिसा तें।
'कुंभनदास' गिरिधर[?]-बिना ए तपत नैन दरसन-तिसा तें ॥

३५० [केदारा]

आगम सांवनु क्यों भरिये ?
चातक, पिक, मोर बोलत सुनि-सुनि श्रवननु जरिये ॥
चहुं दिसि उठत पहार-से बादर स्याम सुवरन
सु देखि-देखि धीरजु कैसे व धरिये ॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कौ आली ! मिलनु होइ सो करिये ॥

---

१ दहुँ (ख) २ निकुवर लाई (क) ३ मिलाइ करि (क) ४ गरजि उठे बादर (ब २७/४) ५ डरपति (ख) ६ भाग मेरे लिखे (ख)

३५१ [कानरौ]

चाहत-चाहत मारगु अब इह आयो है सावनु।
अवधि गऍं किते दिन बीते अजहुं न भयो[1] आवनु ॥
क्यों सहों घन की गरज और चातक कौ पीउ-पीउ सुनावनु।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर कब[2] देखों मन-भावनु ॥

३५२ (कानरौ)

हरि समीप-बिनु कैसें भरों।
सांवनु आयो हरियारो,
ज्यों-ज्यों अँधियारी निसि दामिनि चमकै माई !
अरु घन गरजत त्यौंव जिय डरों ॥
चहुं दिसि उठत जु बादर कारे देखि-देखि नैननु क्यों जिय धीर धरों।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर के विरह क्योंहू न परै कल, हौ कहा करों? ॥

३५३ [केदारौ]

माई ! कछु न सुहाइ मोहिं, मोर-बचन सुनि बन मे लागे सोर करन।
स्याम-घटा पंगति बगुलानि की देखि-देखि लागी नैन भरन ॥
गरजत गगन, दामिनी कांपति निसि अंधियारी, लाग्यौ जीउ डरन।
नींद न परै चोंकि-चोंकि जागति सूनी सेज, गोपाल घर न ॥
चंदन, चंद, पवन, कुसुमावलि भए विष-सम, लागी देह जरन ॥
'कुंभनदास' प्रभु कबहिं मिलहिंगे गिरिवर-धर दुख काम-हरन ॥

३५४ [केदारौ

निसि अंधियारी दामिनि डरपावति मोकों चमकि-चमकि।
सघन बूंद परति माई री ? अरु चहुं दिसि घन गरजै धमकि-धमकि ॥
बिनु हरि-समीपु भवन भयानकु अकेले-
आँखि न लागै चौंकि-चौंकि परों हमकि-हमकि।

१ भयो पीतम (क) २ जब (ख)

'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर रसिकवरलाल,
कब मिलि हैं? लागि हृदै रमकि-रमकि ॥

३५५ (केदारौ)

आयो हो! बरसि बादर कालौ।
आवन निकट कह्यौ गोपीनाथ, अजहुं न आए,
ना जानों कवन दिन कियो चालौ ॥
घन गरजत, चातक मोर, बोलत सुनि-सुनि श्रवननि सुहाइ न कछु
देखत ही पंथ जाइ भोर तें निसा लौ।
'कुभनदास' प्रभु गिरिधर पिय-बिनु
कहि क्यों मोपें रह्यौ परै? इह सब व्रज लागत ठालौ ॥

३५६ [केदारौ-अठताल]

औरनि कों व समीप, बिछुरनों आयो हो[१] मेरे हिसा।
सब कोउ सोवै सुख आपुने आलि! मोकों चाहत जाई चोंहू दिसा ॥
नां जानों या विधाता की गति? मेरे आँक लिखे एसे भाग सु कौन रिसा।
'कुंभनदास'प्रभु'गिरिधर' कहत-कहत
निसि-दिन रही रटि ज्यों चातक घन की तिसा ॥

३५७ [केदारौ-अठताल]

बिछुरनों इहै व किनि कियो?
यातें बुरी पीर और नाहि न जरत भसम होत हियो ॥
पलु-पलु जुग-सम जाइ क्यों हू न परै जियो।
'कुंभनदास 'प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल
घोष तें गवने तन-मन आन-संग लियो ॥

३५८ [केदारौ-अठताल]

जा दिन तें हरि बिछुरे, भूलि हू न नींद परै।
धनि ते जुवति जे सपनें हूं पिय कों देखति, सोई छिनु विरह टरै ॥

१ हमारे (क)

चंदन, चंद-किरन पावक-सम नित प्रति हृदौ जरै ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु को तनु-ताप हरै ? ॥

३५९ [केदारा]

गोविंद वृंदावन की साध ।
देखन कों उह भूमि मनोहर लोचन तपत[1] अगाध
कहहु ब इह कैसे भावतु है क्षार-सिन्धु कौ वास ।
वह सुख कहां राधिका-वल्लभ ! कालिंदी के पास ॥
एक बार चलिए पाँ लागत व्रजवासी सब लोग ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल बिना सब सोग ॥

३६० [बिलावल]

सुनहु गोपाल ! एक[2] व्रजसुन्दरि तुमहिं मिलनकों बहुत करति ।
वार-बार मोसों कहत रहति है वाके जिय मे बहुत अरति ॥
तुमहिं जपत रहति निसिवासर और बात कछु जिय न धरति ।
स्याम सरीर चिहुंटि चित लाग्यौ लोकलाज तें नांहिन डरति ॥
होत न चैनु वाहि एकौ छिनु अति आतुर चित बिरह भरति ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! तुव-कारन नव जोबन गरति ॥

३६१ [गौरी]

चितवत नेंकु कहा व्है जात ?
अब मोहन एसौ मन कीन्हों चंचल चपल-दल कैसौ पात ॥
जबलगि मुख देखों तबलगि सुख, देखिवें कों अकुलात ।
'कुंभनदास' प्रभु रीझि बिमन भए देखत व्है जु गयो गलि गात ॥

३६२

कहिये कहा कहिवे की होइ ।
प्राननाथ-बिछुरन की वेदन जानत नाहिं न कोइ * ॥

❀

इति लीला-पद

१ तृपत (क) २ एक मोहनि व्रज० (वं. १९/७) * यह पद पूर्ण प्राप्त नहीं हुआ ।

प्रकीर्ण

आवनो—

३६३ (हमीर)

* ढरकि रह्यौ सीस दुमालौ मोहन ।
कटि सूथन कसि पियरो पटुका,
उर मनि-कांति अति सोहन ॥
गोविंद गांइ चराइ ल आवत,
मन वसि रही मुसक्यांहन ।
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर
कोटिक मन्मथ-मोहन ॥

३६४ [हमीर]

* आजु उर चंदन-लेप किये ।
कटि पर आडबद हू चंदनी, सीस पर पगा छिये ॥
गो-धन संग आवत मनमोहन बांहि सखा के कंठ दिये ।
'कुंभनदास' प्रभु वदन सुधानिधि, निरखत नन पिये ॥

३६५ [हमीर]

* सुंदर अति जसुमति कौ छगन मगननियॉ ।
वृंदावन मे गांइ चरावत बलदाऊ और कन्हइयॉ ॥
फेटा सीस दोउ भैयनिकें, कटि परधनी सोहत चंदनियॉ ।
चिरजिओ दोउ ढोटनि की जोरी 'कुंभनदास' उर-मनियॉ ॥

---

* इन पदो के कुभनदास कृत होने मे सन्देह है । यह एकाध ही अर्वाचीन प्रति में मिलते हैं । अमुक शृंगार-वर्णन के लिये इनकी रचना की गई है । इनका शीर्षक भी 'भोग मे दुमाला'कौ कीतन, पगा, फेटा, आडवद कौ कीतन ' इस प्रकार मिलता है जो अप्रामाणिक है । अन्य पदो की तुको का संमिश्रण भी इसी बात को पुष्ट करता है ।

३६६ (हमीर)

* गिरिधर आवत गांइनि पाछैं ।
सीस मुकुट, कुंडल की लटकनि, कटि पर काछनी काछैं ।।
चंदन चरतित नील कलेवर, बेनु बजावत आछैं ।
'कुभनदास' प्रभु अधर-सुधा पीवत को चाहैं छाछैं ? ।।

३६७ [हमीर]

* सोहै कटि सेत परधनी झीनी ।
सीस धर्यौ फेंटा अति सुंदर, चंदन वेदी दीनी ।।
गैयां घेरि करी इकठौरी जसुमति घैया कीनी ।
'कुंभनदास' जसुमति मुख चुंबति, प्यावति प्रेम रस-भीनी ।।

३६८

* देखो सखि ! मोहन-नंद दुलारौ ।
स्योम घटा में रूप-छटा-सी सोभित पीत टिपारौ ।।
धौरी धूमरि गैगनि पाछैं आवत व्रज कौ प्यारौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर की छबि पर तन-मन आरति वारौं ।।

छाक—

३६९ [मलार]

* आजु हरि जैंवत छाक बनाइ ।
संग सखा सब बैठे चहूं दिसि करत बात मन भाइ ।।
जोरि पलास करत पनवारो बिंजन सरस धराइ ।
'कुंभनदास' प्रभु जोरि सबनि कों देत बांट कर माइ ।।

३७० [मलार]

* हरि-संग बिहरत है सुकुमारी ।
हरि जो भये हरी रस-माते देखत सब हरियारी ।।
हरी हरी विधि के भोजन करत हैं पिय प्यारी ।
'कुंभनदास' प्रभु हरे महल में रंग मच्यौ है भारी ।।

३७१ [मलार]

* नवल निकुज में जैंवत मोहन बलदाऊ भैया लै संग ।
खात खवावत परस्पर दोऊ सुंदर छबि की उठत तरंग ।।
कमल बरन काछनी, कनक बरन टिपारौ सिर,
कुंडल किरननि रवि-जोति किये भंग ।
जगमग जोति अति मुख मंडल की, निरखि लज्जित भये कोटि अनंग ।।
खात-खात उठि टेरत ग्वालनि छाक आई भैया ! आवौ सब दोरि ।
मधुरे बचन मीठे जु लालन के सुनत-सुनत मेरौ लियो चित चोरि ।।
आसपास बैठी ग्वाल-मंडली मधि जेंवत दोऊ नंदकिसोर ।
सोभा कहा कहों ? रसिक कुंवर पें 'कुंभनदास' वारत तृन तोर ।।

३७२ [मेघमलार]

* भोजन करत नदलाल संग लियें व्रजबाल,
बैठे हैं कालिंदी-कूल चचल नैन विसाल ।
छाक भरि लाई थाल, परस्पर करत ख्याल,
हसि-हसि चुंबत गाल, बोलत वचन रसाल ।।
आसपास बैंठी वाम, मध्य सोहै घनस्याम,
जेंवत है सुख के धाम रस भरे रसिक लाल ।।
विमलचरित्र करत गान, आग्या दई कुंवर कान्ह,
'दासकुंभन' गावत रागमलार निरखि भयो निहाल ।।

३७३ [सारग]

* कुंजनि घांम अति तपत भैया रे ! भोजन कीजै ।
सुबल कहत सुनो सुबाहू ! श्रीदामा द्वार कीक्यों न दीजै ।।
अर्जुन आनि धरत घट भरि-भरि ताकि ताकि सीतल धाम कीनों ।
परिष्ठत लै पनवारो डारत भोजन भाव करि लीनों ।।
मधुमंगल मंडल-रचना रची बांटि-बांटि सबहिनि कों देत ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कियो ग्वालनि सों हेत ।।

भोजन—

३७४ [सारंग]

* गोवर्द्धन की सघन कंदरा भोजन करत हैं पियप्यारी ।
आस-पास जुवती सब ठाढी देत परस्पर करि मनुहारी ॥
सबनि के भाव सामग्री हित सों लेत श्रीललिता निहारि निहारी ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-मुख बीरी देत श्रीराधा प्यारी ॥

३७५

* छप्पन भोग आरोगन लागे ।
श्रीवृषभान-कुंवरि नंद-नंदन ले अपुनो गन संग अनुरागे ॥
बिविध भांति पकवान मिठाई विविध विंजन धरे रसपागे ।
षटरस धरे प्रेम रुचिकारी मधु मेवा अपने मुख मागें ।
खात-खवावत हसत-हसावत विनवति सखी तहँ ठाढी आगें ॥
जैंवत देखि 'दास कुंभन' तहां हरषित मानत बड भागे ॥

प्रभु-स्वरूप वर्णन —

३७६ [सारंग]

* सोहत आडबंद अति नीकौ ।
फेंटा चदनी स्याम-सिर सोहत, मोंती बडे लूम ही कौ ॥
उर पे मोतियनि की माला हार सिंगार बिच फूल केतकी कौ ।
'कुंभनदास' गिरिधर मुख निरखत, त्रिभुवन जीवन जी कौ ॥

३७७ [पूरवी]

* सौहै सिर कनक के वरन टिपारौ ।
कनक ताग लागे बागे में कुडल श्रवन निहारौ ॥
रंगमहल मे रतन-सिंघासन, राधा-रवॅन पियारौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर, सब ब्रज लोचन-तारौ ॥

३७८ [हमीर]

* बलि-बलि आजु की बानिक लाल।
पिछोरा कटि-ऊपर सोहत, उर मुक्तनि की माल ॥
फूल सेहरौ सीस विराजित फूलनि-माल रमाल।
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधर निरखत नैननि भयो निहाल ॥

३७९ [सोरठ मलार]

* रह्यौ ढरि स्याम दुमालौ सीस।
तैंसोई कटि स्याम पिछोरा आजु बनै ब्रज-ईस ॥
हरित भूमि ठाढे जमुना-तट संग लरिका दस-बीस।
'कुंभनदास' तैसे उनए बादर निरखत श्रीजगदीस ॥

३८० [ईमन]

* फूलनि कौ सेहरौ दूल्है-सिर बनायौ।
फूलनि के बाजूबंद, फूलनि के कडा फूलनि के कुंडल श्रवननि सुहायौ ॥
फूलनि हार सिंगार रचे अँग फूलनि रंगमहल सब छायौ।
फूली दुलहिनि फूले श्रीगिरिधर 'कुंभनदास' (फूलि) जसु गायौ ॥

३८१ [मलार]

* ब्रज में गोकुल-चंद बिराजैं।
नन्ही-नन्ही बूंदनि बरसन लाग्यौ मंद-मंद घन गाजैं ॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, वनमाला छबि छाजैं।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रगट भक्त-हित काजैं ॥

३८२ (मलार)

* कदमतर ठाढे हैं बल मोहन।
सीस धरी नव पाग कसूंभी तैसोई पिछौरा सोहन ॥
ब्रजनारी चहुं दिसि तें घेरें लाग्यौ है सब गोहन।
कसूंभी छरी टेढो ल ठाढे और नचावत मोहन ॥

घन गरजत नभ, उर डर लागत, ग्वाल लगे सब जोवन ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर व्रज-जुवती तृन तोरन ॥

३८३ [गौडसारंग]

* नवल वानिक बन्यौ अँग-अँग सौंधे सन्यौ,
पावस ऋतु मानों उनयो नव घन ।
उत गुरुजन-लाज, तोरें कैसे बने काज ? इत धीर न रहै तन ॥
करनि कमल लियें सखा-अंस भुज दियें
आंगनि गयो री ! मेरे बरसि प्रेम-बुंदन ॥
'कुभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर यह ढोटा हरत परायो मन ॥

युगलस्वरूप-वर्णन—

३८४ (नट)

*आजु प्यारी पिय के संग विराजै ।
क्रीट मुकुट निरखत मन हरषत मुख मृदु मुसकनि भ्राजै ।
प्रीतम ओढें रजाई सुंदर सुजनी अंग पर छाजै ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सब व्रज-जन सिर-ताजै ॥

३८५ (हमीर)

* दम्पति दोउ राजत कुंज-भवन ।
पीत कुल्है सिर, कटि पियरौ पट कुंडल ललित श्रवन ॥
विजना-बियार ढोरति सखी नियरें सीतल लागत पवन ।
'कुंभनदास' गोवर्द्धन-धर रिझावत प्यारी राधा रवॅन ॥

३८६ [कानरौ]

* सीस सोहै कुल्है चंपक वरन ।
राधा-संग चंदन चरचित अंग कुडल सोहैं श्रवन ॥
मुख मृदु मुसकत, पान आरोगत लाल गिरिवर-धरन ।
'कुंभनदास' प्रभु फूल-सेज में पौढे आरति-हरन ॥

३८७ [विहागरो]

* करत केलि मिलि कुंज-भवन में पिय प्यारी रस-रंग भरे।
मृदुल कुसुम रची बैनी सँवारी कंठ कुसुमनि के हार धरे॥
विविध विहार कुसुम-सिज्या पर निरखत रति-पति मान हरे।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर कोक-कला जुत सुखनि ढरे॥

३८८ [ईमन]

* स्याम-सिर सोभित पगा आजु सेत।
और कहा कहों मुख की लुनाई, मधुर वचन सुख देत॥
कुंज-भवन क्रीडत राधा-संग अँकनि परस्पर लेत।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर प्रकटे हैं भक्तनि-हेत॥

हिंडोरा--

३८९ [ईमन]

* बैठे दोउ झूलत कुंज-हिंडोरें।
फूले द्रुम, फूली वन वेली, बरखत हैं घन घोरें॥
तैसेई कोकिला कूजति प्रमुदित पवन झकोरें।
'कुंभनदास' गिरिधर बंसीवट जमुना देत हिलोंरें॥

आसक्ति--

३९० [सारंग-इकताल]

* सिर परी ठगौरी सैन की।
मदनमोहन पिय जब तें कीन्ही परी चितवनी नैंन की॥
मन की व्यथा कछु कहत न आवै सुधि भूली सखि? बैन की।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर सांट लगी तन मैन की॥

दान--

३९१ [ललित]

* दान कैसौ रे! तुम भए अनोखे दानी?
औरनि के धोखें जिनि भूले भए रहो? अभिमानी॥

जो रस चाहत सो रस नांही, बात तिहारी है हौं जानी ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! काहे कों करत नकबानी ॥

विरह--

३९२   [मलार]

* गुमानी घन ! काहे न बरसत पानी ?
सूखे सरोवर उडि गए हंमा, कमल-बेलि कुम्हलानी ॥
दादुर, मोर, पपीहा ना बोलत कोयल शब्दनि हानी ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर लाल गएँ सुखदानी ॥

श्रीयमुना-स्तुति—

३९३   (रामकली)

श्रीजमुना अगनित गुन गिनें न जाई ।
जमुनातट-रेनु होत बेन इनके मुख देखन की करत बडाई ॥
भक्त मांगत जो होत ही छिनु सो, को करै एसी प्रन निबाई ?
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखि कहों, कै हसों करि मन अघाई ॥

३९४

जमुने ! रसखानि कों सीस नाऊं ।
एसी महिमा जानि, भक्त की सुखदानि ! जोई मागों सोई पाऊं ॥
पतित पावन करत, नाम लीन्हे तरत, दृढ करि गहे चरन कहूं ना जाऊं ।
'कुंभनदास' गिरिधर-मुख निरखन यही चाहत, नही पलक लाऊं ॥

३९५

श्रीजमुने पर तन-मन-प्रान वारों ।
जाकी कीरति विसद कौन अब कहि सकै? ताहिं नैननि तें न मैं नेंकु टारों ॥
चरन कमल-रेनु चिंतत रहों निसि-दिन नाम मुख तें उचारों ।
'कुंभनदास' कहै लाल गिरिधर-मुख इनकी कृपा भई, तोऊ निहारों ॥

३९६ [रामग्री]

भक्त-इच्छा पूरन जमुने जू ! करता ।
बिनुही मांगत कहाँ लों कहों, देत जसें-
काहू कों कोउ होइ करता धरता ॥
जमुना-पुलिन रास, व्रजवधू लिऐ पास, मंद हास भवन जो हरता ।
'कुंभनदास' जो प्रभु कौ मुख देखे ताहिं जिय लेखत जमुने ! जो भरता ॥

सीकरी—

३९७

* भक्त[1] कौ कहा सीकरी काम ? ।
आवत जात पन्हैयां टूटीं बिसरि गयो हरि-नाम ॥
जाकौ मुख देखत दुख उपजै[2] ताकों करनी परी प्रनाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर-बिनु यह सब झूठौ धाम ॥

टोंड कौ घनौ—

३९८ [सारंग]

भावत[3] तोहिं टोंड कौ घनौ ।
कांटे बहोत[4] गोखरू वूडे फारत सिंह परायो तनौ ॥
आवत-जावत वेलि निवारै बैठत है जहां एक जनौ ।
सिंघै कहा लोखरी कौ डरु तैं[5] छांडि दियौ भौन अपनौ ॥
तब बूडत तें राखि लिए हैं सुरपति तों तृन हू न गन्यौ ।
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्द्धनधर ! इह[6] तो नीच ढेढिनी जन्यौ ॥

---

* अकबर बादशाह द्वारा सीकरी बुलाए जाने पर उनके सन्मुख गाया हुआ पद ।
(कुंभनदास की वार्ता अष्ट छाप) वि. विभाग द्वितीय पत्र २३३

१ भक्तनि कौ (प्र) २ लागै (मु)
३ भावत है (मु) ४ लगे गोखरू टूटे, फाटत है सब तनौ (मु.)
५ यह कहा बानिक बनौ (मु) ६ वह कौन ढेढिनी राड कौ जन्यौ (मु)

३९९

बैठ्यौ आइके बन मांहि ।
मृदु भोजन सब छांडि दिए हैं अब खिचरी छांछि सौं खांहि ।।
जाइ अँगाकरि दूरि करि ल्यावै करररी बहुत जीभ छुलि जांहि ।
डरपत फिरै मृगी तें सिंघ क्यों ? ए बाते हम कों न सुहांहि ।।
गांइ गोप सब सूने डोलत देखन कों गोपी अकुलांहि ।
' कुंभनदास ' प्रभु गोवर्द्धन-धर ! सूनों भवन देखि पछितांहि ।।

विनय--

४०० [भैरव]

सार हिं श्रीवल्लभ-पद गहु रे !
श्रीविट्ठलनाथ प्रगट पुरुषोत्तम पल-पल छिनु--छिनु नाम मुख लहु रे ।।
श्रीगिरिधर, गोविंद करुणानिधि, श्रीबालकृष्ण-चरण चित देहु रे ।
श्रीगोकुलनाथ अनाथ के बधु श्रीरघुपति जदुपति-जस कहु रे ।।
श्रीघनस्याम सुखधाम जग-जीवन मन, वच, क्रम एही चाह चहु रे ।
नहिं कछु और तत्व त्रिभुवन में ' कुंभनदास ' शरणागत रहु रे ।।

४०१ (भैरव)

तुम-बिनु को ऐसी कृपा करै ?
लेत सरन ततछिन करुणानिधि त्रिविध संताप हरै ।।
सुफल कियो मेरौ जनमु महाप्रभु ! प्रभुता कहि न परै ।
पूरन ब्रह्म कृपा- कटाच्छ तें भव कों ' कुंभन ' तरै ।।

❀

इति प्रकीर्ण-पद

卐

' कुंभनदास ' कृत पद-संग्रह

समाप्त

' कुंभनदास '

वर्षोत्सव

※

[सरल भावार्थ]

मंगलाचरण—

१

श्रीगोवर्द्धनधर श्रीकृष्ण की जय है। वृष्टि को दूर कर व्रज के कष्टहारी, इन्द्रमान-भंगकारी प्रभु की जय है।

विद्युत समान पीत अम्बर धारी, कोमल शरीर से सजल मेघ-कान्तिहारी और करकमल से अधर पर वेणु धर संगीत के द्वारा व्रज-युवतियों के चित्त चुराने वाले की जय है।

वृन्दावन व्रजभूमि में वंदनीय चरणों से विचरण कर यमुना-तीर विहार करने वाले नन्दगोप-कुमार की जय है। ' कुंभ-नदास ' नमन करता है, प्रभो! वह आपकी शरण में है।

जन्मसमय (बधाई)—

२

श्रीनन्दराय के सुत का प्राकट्य हुआ है। सब व्रज में चलो, वहां मंगल हो रहा है। जन्म के समाचार से ही जगत का अज्ञान अन्धकार मिट गया और त्रिविध ताप नष्ट हो गया।

महोत्सव में नवनीत, दूध दही हरदी तेल उछाले जा रहे हैं। गोपियां आतुर होकर नदी-सी उमड़ी चली आ रही हैं। गिरिवर-धरण के प्राकट्य के समान आनन्द तो कभी नहीं हुआ।

३

सब व्रज में गोकुलचन्द्र के प्राकट्य से आनन्द हो गया। श्रीयशोदा और बाबा नंद के भाग्य धन्य हैं। भाद्र, कृष्ण पक्ष, अष्टमी अर्धरात्रि, रोहिणी नक्षत्र, बुधवार को प्रभु के दर्शन करते ही सर्वत्र हर्ष-कोलाहल होने लगा। गोपी ग्वाल, दूध दही के माट, अनेक प्रकार की भेट लेकर नाचते गाते नन्दराय के द्वार पर आए, उन्हें पकड़ कर नाचने गाने और बाजे बजाने लगे।

व्रज में 'जय जय' चिरंजीव हो, इस प्रकार शब्दों का घोष होने लगा, याचकों को दान मिलने लगा। सभी का सत्कार होने लगा। नंद यशोदा फूले नहीं समाते। कमलनयन को गोद में लेकर श्रीयशोदा हर्षित हो उठीं। यमुना, गिरिराज, वृन्दावन, व्रज सभी हर्षोत्फुल्ल हो उठे।

श्रीकीर्तिजू और वृषभानुजी युगल-जोडी देखकर प्रसन्न हो गये। 'कुंभनदास' के जीवन राधानंदकिशोर की जय हो-ये जोडी चिरंजीवी हो।

पलना—

४

श्रीगिरिधरलाल पालने झूल रहे हैं। जननी यशोदा मुख कमल निरखती हुई उन्हें झुला रही हैं। लोरियां (बाललीला) गाती हुई वे प्रसन्न होकर हाथ से ताल देती जाती हैं। बड़-भागिनी रानी प्रफुल्लित होकर लाला पर मुक्ता-माला न्योछावर कर रही हैं।

५

रत्न-खचित सुंदर पालना में गिरिधरलाल झूल रहे हैं। हर्षित होकर यशोदा गुण गा कर ताल देती जाती हैं, कभी

गुलगुली चला कर हरि को हँसाती हैं, कभी चुम्बन ले लेती हैं। इससे नद-नंदन किलक उठते है। मैया उन्हें अंगुली पकड कर चलना सिखाती है।

छठी—

६

आज जसुमति-सुत की छठी है। सखियो! चलो बधाई देने चलें। नये भूषण वस्त्र पहिन कर मंगल वस्तुऐं ले चलो। नंदरानी के पुत्र हुआ है—विधाता ने कैसी सुन्दर बात की है, पूर्व पुण्यों का साक्षात् फल प्रगट हुआ है। कन्हैया को देखने से आखें तृप्त नहीं होती ब्रज भर में सुख ही सुख दीखता है, घर-घर मंगल हो रहा है।

हम तो यही चाहती हैं—नंद-सुत गोकुल में 'जुग जुग राज करो'। अब स्वकीय जनों के मनोरथ पूर्ण हो गये, वे यश गान करके जियेगें। जननी यशोदा बाल प्रभु को निरख कर अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

राधाष्टमी (बधाई)—

७

शोभा स्वरूप श्रीराधा के प्राकट्य से वृन्दावन और गोकुल की गलियों में सुख की लता लहलहा उठी है। पद-पद पर गोवर्धन पर प्राकट्य के संकेत है, दर्शन कर नयी-नयी उपमा उपजती है। श्रीगिरिधर भूतल पर पधारेगें, सो लीला के लिये इनका पहिले ही जन्म हो गया है।

८

रूप-निधान नागरी श्रीराधा का प्राकट्य हुआ है। दर्शन कर ब्रज-वनिताएँ प्रसन्न होती हैं। उनकी कोई उपमा ही नहीं

है। कवियों ने जो–जो उपमाएँ दीं वे सब समाप्त हो गईं। यह तो गिरिधर की सहज समान जोडी है, इसकी क्या उपमा ?

९

माई ! तुम यह सुख देखो—आज वृषभान–लली की वरस-गांठ बड़े भाग्य से आई है। जन्म का दिन सुखदायक होता है। कीर्तिरानी ने बड़े पुण्यों से यह निधि पाई है, ब्रज में प्रभु की लीला से आनन्द–लता बढ़ने लगी है। 'कुंभनदास' की जीवन श्रीराधा यशोदा–नंदन को भी सुख देने के लिये प्रगट हुई हैं।

श्याम–सगाई—

१०

श्रीवृषभानुजी के घर नन्दरायजी के स्वागत का और सगाई का वर्णन है।

दान–प्रसंग—

११

गोपीप्रति प्रभुवचन—

"गुजरिया ! तू हमारा दान दे। नित्य ही यहाँ से तू चोरी से गोरस बेच आती है, आज अचानक ही भेट हो गई। तू बड़े गोप की बेटी है, इतनी क्यों सतराती है ? अब कैसे छूटेगी ?" ऐसा कह कर गोवर्धनधर ने रोकने के लिये अपने हाथ में उसकी ओढ़नी लपेट ली।

१२

भैया ग्वालो ! आज उस वन में चलना है, जहां होकर गोपियां दही बेचने जाती हैं। वहीं छीन २ कर सब दही खाना है। उस वन में घास बहुत है–गायें वही चरेंगी। कुंभनदास (मुझ) को गिरिधर ने कहा है कि आज वहीं राधिका को अनुराग में रंगना है।

१३

"आज तो मैं तेरा दही चख कर देखूंगा। मोल क्या है? और इसे कहां बेचेगी? सच सच बता दे। जो मूल्य तू कहेगी वही दूगा-ये सखा साक्षी हैं। तुझे विश्वास न हो तो यह मोती की माला लेकर रख ले।"

ऐसा कहकर दाम देने को उसे घर की ओर ले गए, मार्ग में कटाक्ष द्वारा प्रभुने अपना अभिप्राय जताया तब उसने तत्क्षण उनको सर्वस्व समर्पण कर दिया।

१४

"रसिकनी! तू दान दिये बिना ही कैसे जा रही है, दान दे। ग्वालिनी! मेरी बात सुन, देख दूध-दही के पीने से सब ग्वाल तृप्त हो जायंगे।

तेरे मीन जैसे चंचल नेत्र और तन पर सुन्दर वस्त्र हैं। नूपुर रुनझुन करते है, मोतियों से मांग भरी है, तू पूर्ण युवती है।

मुख से बोल दे, घूंघट पट खोल दे"। यह सुन कर गोपी मन में मुसकाती हुई आंचल संभालने लगी। 'कृपा कर मुझे कंचन कलश का रस दो।' यह सुनकर उसने कृष्ण को दान दे दिया। श्यामसुन्दर ने प्रेम से दधि का स्वाद लिया।

प्रभुप्रति गोपीवचन—

१५

लालन! मुझे जाने दो, आंचल छोड दो, देखो बहुत देर हो रही है? नंदकुमार! वैसे ही मैं घर से बड़ी देर से निकल पाई हूं। तुम्हारे लिये कल भली भांति दही जमाकर जल्दी ही ले आऊंगी। गिरिधर! तुम यही बैठे हुए मिलना।

१६

श्यामसुन्दर ! तुम इस मार्ग से किसी को भी चलने नहीं देते, इस घाटी से ज्योंही निकले, तुम मार्ग रोक लेते हो। नंदकुमार ! हार तोड देना, अंचल फाडना, घूंघट खोल कर मांग पटियां देखना, बांह मरोड देना, दही की चटियां फोडना क्या यह सब ठीक है ? यह तो बताओ तुमने कब कब दान लिया है-नई बातों का ठाट क्यों जमा रक्खा है ? अच्छा ! गिरिधर ! हम पैरों पडती हैं--तुम तो हमारी दशा जानते ही हो, जाने दो।

गोपीप्रति गोपीवचन—

१७

यहां तो एक ही गांव का रहना है, सखी ! कहां तक बचें। श्यामसुन्दर प्रतिदिन एक क्षण को भी तो दूर नहीं रहते। इसी घाटी से सब का आना जाना होता है, और यहीं अपनी सखा-मण्डली के साथ नदनंदन आकर खेलते हैं। अरे ! कभी दहेंडी फोड देना, कभी दही ढोल देना और कभी बांह पकड कर कुंज की ओर ले जाना—यह दशा किससे कही जाय ? चित्त में लोक-लज्जा के भय और संकोच से कह भी तो नही सकती है।

तुम्हें अच्छी तरह जान लिया—तुम गिरिधरलाल जो ठहरे ?

१८

"अरी गोपियो ! गोरस का दान लेना ही हमारा काम है। हम तीनों लोकों के दान लेने वाले है, चारो युगों में हमारा राज्य है। बहुत दिनों तक दान दिये बिना ही तू अछूती भाग जाती रही है ?" प्रभु गोवर्द्धनधर वृन्दावन में दान लेने के लिये इस प्रकार कहते हैं।

गोपीप्रति गोपीवचन—

१९

अरी ! यह है कौन ? इसे हम गोवर्द्धन की तरहटी में दान नहीं देंगी । यह कान्हा हाट, गाम, खेत, मढैया सभी ठिकाने संग लगा डोलता है । बाप तो राजा कंस को कर देता है, और उसका यह सपूत साथियों को लेकर अकडता फिरता है । अरे गिरिधर ! तुम सीधे अपने पेडे २ क्यों नहीं चले जाते ?

२०

माई ! मदन गोपाल तो बड़ा हठी है । कितनी देर हो गई वह अभी तक मार्ग रोके खडा है । कहता है—सुन्दरि ! वृषभान की दुहाई है, दान लिये बिना जाने नहीं दूंगा, वृथा तुम झगडा बढ़ा रही हो, हमारा दान चुका दो और चली जाओ ।

इस पर गोपी बोली—मोहन ! तुम जब देखो तब 'दान दान' क्या कहते रहते हो ? यह कैसी जबर्दस्ती है ? यह सुन कर गोवर्द्धनधर ने मन्द हास्य द्वारा उसका मन हर लिया ।

२१

सखी ! नद के ढोटा ने ज्योंही मुझ से कुछ अटपटा दान मागा, मै मथनियां उतार कर हाथ जोड कर खड़ी हो गई । उसने मेरा आंचल खींचा तब मुझे बहुत डर लगा । इसी झगडे २ में मेरा दही बेचने का समय निकल गया ।

२२

'व्रजराज का लाडिला बेटा दान ले रहा है। सखियो ! सिरपर दही का माट धर कर उस मार्ग से चलो। देखो वह संकेत करत रहा है'। एसा कह कर ग्वालिनी ज्योंही सांकरी खोर के पास पहुंची वहां भी श्याम को बात करते हुए खडा पाया ।

मुख मोड कर गोपी ज्यों ही हँसी--श्याम ने अंचल पकड लिया। तब बोली--अंचल छोड दो तुम्हें दान देती हूं।

कृष्ण बोले—तू ग्वालिनी किस गाम का है, मिस बना कर रोज निकल जाती है? उत्तर मिला--हम सब वृषभान के पुर में बसती हैं। तुम श्यामसुन्दर हो तो लो, अपने ग्वाल बालों के साथ खूब दूध दही पी लो।

दानलीला—

२३

कृष्ण और गोपियों के सम्वाद–रूप में :—

गोकुल की बालाए विविध भूषण और शृंगार धारण कर नित्य दही बेचने जाती हैं। इनकी परम शोभा कही नहीं जा सकती, एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं ऐसा लगता है मानों कुंज अनेक प्रकार के पुष्पों से फूला हो ॥ १ ॥

प्रातः नंदलाल ने उठकर अपनें सखाओं को बुलाया। वे दान की बात सुनते ही दौड आए। वे सब नंदलाल के साथ यमुना के किनारे एक कुंज में जाकर बैठ गए ॥ २ ॥

आती हुई गोपबालाओं ने श्याम को मार्ग में खडा देखा तब इकट्ठी हो गईं और विचार करने लगी कि–अब क्या करना चाहिये? यहां तो नन्द का ढोटा रास्ता रोक कर खडा है यह छीन कर दही खा जायगा–चलो दूसरी तरफ चले ॥ ३ ॥

उन सब को दूसरी ओर जाते देख गोपबालों के संग श्याम ने दौड कर उन्हें वहां रोक लिया, बोले–अब कहां जाओगी? नंद की दुहाई है ज्यादा चतुराई छोड दो–हम तुम्हारा मान रक्खेंगे ॥ ४ ॥

व्रजनागरी बोली—

नन्दलाल ! तुमने कबसे दान लेना शुरू किया है, और कबसे दानी कहाने लगे ? हमने तो आज तक नहीं सुना। जाकर यशोदा से पूछ लो ? अरे ! तुम तो देवकी के जाये हो और गोकुल में शरण ली है, यहीं तुम सब गोपवालों की जूठन खाकर बडे हुए हो—और अब दान मांगते लाज नहीं आती ? ॥५॥

नंदलाल बोले—

अरी गोपियो ! तुम्हें अपने यौवन का गर्व है। संभालकर बोलना नहीं आता ? दूध-दही के पीछे गाली-गलौज करती हो ? नंद की दुहाई है-सब को लूट लूंगा, वस्त्र छुड़ा लूंगा, और हार-वार सब तोड़ डालूंगा ? ॥ ६ ॥

व्रजनागरी बोली—

'लूट' 'लूट' क्या मचा रक्खी है ? यहाँ कोई तुम्हारी चेरी नहीं है। कब तो दान लिया और कब दुहाई फेरी ? तुम्हें यह मालुम नहीं कंस का राज्य है-संभलकर स्त्रियों से बोलो। यदि नंदरानी ने सुन पाया तो तुम्हारी इस करतूत से उन्हें दुःख होगा ॥ ७ ॥

नंदलाल बोले—

देखो ! तुम गँवार ग्वालिनी हो। हम जैसों को क्या समझाती हो ? अरे ! शिव, ब्रह्मा, सनकादि ऋषि भी हमारा पार नहीं पाते ? भक्तों की रक्षा और दुष्टों का संहार यही तो हमारा काम है। थोड़े दिनों में केश पकडकर कंस को मारकर धरती का भार उतार दूंगा ॥ ८ ॥

व्रजनागरी बोली—

रहो ! रहो ! माता देवकी बांधी गई तब आप कहां गये थें ? रातों-रात मथुरा छोड़कर गोकुल में आकर शरण लेनेवाले आपही

हैं न ? अपनी बहुत बड़ाई क्या करते हो, मन में सोचो तो–बन में जूठे बेर फल खा–खाकर बड़े हुए और अब कुमार बन गये हो ॥९॥

नदलाल बोले—

तुम्हें मालुम नहीं ? नंदरानी यशोदा ने तप करके हम से वर मांगा था सो–वेद वचन को सत्य करने, उन्हें प्रसन्न करने मैं गोकुल आकर रहा हूं। बावरी ! तुम्हें क्या मालुम कि– मैं वही त्रिभुवन-नाथ हूं जो– जल–थल और घट–घट में समाया हुआ है ॥१०॥

व्रजनागरी बोलीं—

अरे कान्ह ! जब तुम ऐसे हो तो घर–घर चोरी क्यों करते हो ? याद नहीं जब मुझ से झगड़ बैठे थे, तब मैंने तुम्हारा पीताम्बर छुड़ा लिया था ? थोड़े से दही के नुकसान पर माता ने तुम्हें बांध दिया था ? वे हमीं तो थीं जो– जाकर छुड़ाया था, और अब बड़ी २ बातें बनाते हो ? ॥११॥

नंदलाल बोले—

तुम्हें खबर नहीं ? बिचारे नल–कूवर जो– मुनि की शाप से वृक्ष बनकर खड़े थे, उनका उद्धार करने को ही हम ऊखल में बंध गए थे। राधे ! जरा चीर–हरण की बात सोचो–जब यमुना में ठंड से ठिठुर रही थीं और हा ! हा ! खाकर वस्त्र हम से मांगे थे ? ॥१२॥

व्रजनागरी बोलीं—

कान्ह ? तुम बड़े ढीठ हो गए हो, ऐसा कठोर क्या बोलना ? बन में गाऐं चराते, ग्वालों के संग इधर–उधर दौड़ते फिरते हो ? भूल गए जब बीन २ कर इस उस की छाक खाई थी, और अब अकड़ते फिरते हो, अंट–संट बोलते हो ? ॥१३॥

नन्दलाल बोले—

पृथ्वी पर असुरों की प्रबलता हो गई, ऋषि–मुनि जप–तप

छोड़कर भाग गए, गायों का नाश हो गया-सो हमें देह धर कर आना पड़ा हैं ? देखो ! ये संग के ग्वाल हैं सो-सभी स्वर्ग के देवता हैं। हमने इन्द्र का भी गर्व हर लिया, और अब तुम्हारी खुशामद कर रहे हैं ॥ १४ ॥

व्रजनागरी बोली—

बस बस ! बन में ही बातें हमें सुना लो ? हम तुम्हें जानती हैं- आप कैसे बलशाली हो ? सांवरे ? आपकी ऐसी शक्ति है तो वसुदेव के फंद क्यों न काट डाले ? सात बालकों को मारने वाले कंस को क्यों न मार डाला ? ॥ १५ ॥

नन्दलाल बोले—

केसी, कंस इन सब दुष्टों को मारकर वसुदेव के बंध छुडाना है। उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाकर चंबर ढुलवाना है। मल्ल, कुवलयापीड को पछाडकर जब धनुष तोडूंगा- तब देखना- चतुर्दश भुवन में हमारे प्रताप यश को देवता गावेंगे ॥ १६ ॥

व्रजनागरी बोली—

कान्ह ! अपनी अधिक बड़ाई रहने दो ? मैं खूब जानती हूं। तुम्हारी जात-पांत कुल-प्रतिष्ठा हमसे कुछ छिपी नहीं है ? लड़कों के साथ खाते पीते ग्वाल कहाने लगे हो ? हम हैं व्रजबाला- सो देखेंगीं ? हमारा दही तुम कैसे खाते हो ? ॥ १७ ॥

नन्दलाल बोले—

हां ! दहेड़ी तो छुड़ा लूंगा- कंठकी मुक्तावली टोड़ फेकूंगा ? पैर पर पैर धर के ये तुम्हारी ओढ़नी भी फाड फेकूंगा ? समझी ? देखो-तुम तो वृषभान की ग्वालिनी हो और हम ? हम हैं नन्द के कुमार ? सो अब जिसका तुम्हें बल हो उसके पास जाकर पुकारकर देख लो ? ॥ १८ ॥

व्रजनागरी बोली—

हमारी तो जाति अहीर की है, नित्य दही– बेचना हमारा काम है। आज तक दान का नाम सुना नहीं था ? अब दान दे कर नई बात चलावें ? सांवरे ! तुम बडे अनबीगे हो जो–बन में हम ग्वालिनियों को रोकते हो ? क्या इसी मुख से और यहीं कदम की छांह में बैठकर दही खाओगे ? वाहरे वाह ? ॥ १९ ॥

नन्दलाल बोले—

ग्वालिनी ? तू तो बड़ी आंखे मटका-मटका कर बातें करती है, सीधे बोलना तो आता ही नही ? हम अनबीगे नहीं हैं हो ? तुम्हीं अनबीगी हौ–जो इधर–उधर भटकती फिरती हौ ? हमने तो जब से व्रज में जन्म लिया तभी से दान लिया है ? भला, व्रजराज से जाकर भी कह लों, और अपना अभिमान भी दूर करलो ? ॥ २० ॥

व्रजनागरी बोली—

बस, श्याम ? टेढ़ी पाग बांधकर टेढ़ी लकुट लेकर टेढ़े खड़े हो गये और स्त्रियों को रोककर लगे दान मांगने ? अपने घर के बड़े सपूत हौ ? जिनका सहारा लेकर नाथ बनै फिरते हो ? सो–ये सब सखा भाग जायगें–समय पर कोई भी साथ नहीं देगा ? समझे ? ॥ २१ ॥

नन्दलाल बोले—

भला–बता तो नागरी ? ऐसा राजा कौन है जो हम पर हाथ उठावे ? अरे ! हमारे तो बंदीजन और वेद द्वार पर खडे २ यश गाते हैं ? ब्रह्मा के रूप से उत्पत्ति, रुद्र–रूप से संहार और विष्णु रूप से रक्षा करनेवाला मैं ही तो नन्दकुमार हूं ॥ २२ ॥

व्रजनागरी बोली :—

हां, हां ! तुम ऐसे ही ब्रह्म हौ जो—हमारे छींके ढूंढते फिरते हौ ? घर—घर चुराकर माखन खाकर मस्त होते हौ और स्त्रियों के साथ छेडखानी करते हौ ? ऐसे ही ब्रह्म हौ न ? सांवरे ! तुम्हें दोष नहीं है, अंधियारी रात्रि में जो—आपका जन्म हुआ है ? वन में आप जरूर ब्रह्म कहलाते हो तभी माता—पिता को छोड़ बैठे हो ? ॥२३॥

नन्दलाल बोले :—

स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सभी लोकों में मेरी ठकुराई है। मैं वृन्दावन—चद्र हू, सभी वस्तु में समाया हुआ हूं, और बांवरी ! जो—तू हमारा नाम पूछती है ? सो गज से लेकर पिपीलिका (चींटी) तक सभी तो मेरे रूप नाम है-कितने गिनाऊं ? ॥२४॥

व्रजनागरी बोली :—

लालन ! दही खाना हो तो सीधे मांगो ! इस तरह लड़ाई झगड़ा क्या करना ? आप बड़े बलवंत्त हौ तो—मथुरा जाकर कस मारो-और फिर आकर हमारा दही खाना ॥२५॥

नन्दलाल बोले :—

देखो ! राधानागरी ! मुझे मथुरा जाकर बहुत से काम करना है। वहॉ जाने पर फिर यहां नहीं आसकूंगा ? तुझे तमाशा देखना हो तो देख लेना ? एक वार जाने पर फिर नहीं आऊंगा ? ॥२६॥

व्रजनागरी बोली —

श्याम ! मथुरा जाने की बात मत कहौ। आप मथुरा क्यों जाओ ? हम औंर तुम सब सदा पास में ही रहें। यहीं गोकुल में आप नित्य विहार करो। दही—दूध की क्या परवाह ? आप

नित्य हम से दान मांगो, मांगते २ आपको तो लाज आवेगी- हमें तो अतिमान होगा ॥२७॥

नन्दकुमार बोले :—

तुम सब अबला और भोली हौ। हमारे कृत्य नहीं समझौगी? मैने कालीनाग को दूर भेज दिया, दावानल का पान कर लिया, इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जब ब्रज-बहाने की ठानी तो गोवर्द्धन उठा कर रक्षा की, और बकासुर मारकर बालक बछडों को बचा लिया था ॥२८॥

कुभनदास कहते है :—

श्यामसुन्दर की रसभरी बातें सुनकर-ब्रजबालाएँ प्रसन्न हो गई और उन्होने दही-दूध सिर से उतारकर सब प्रभु के सन्मुख रख दिया। प्रभु ने ग्वाल-बालों को बांटकर अच्छी प्रकार आरोगा। पहिली प्रीति जानकर श्रीवृषभानु-कुमारी राधा गिरिधर से मिलीं और उन्होने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया ॥२९॥

ब्रजनागरी बोली :—

प्रभु! तुम त्रिभुवन-पति और हमारे नाथ हौ। आपकी जो-इच्छा हो सो करो। आपके गुण, कर्म हमारी समझ में नहीं आते, उन्हें हम कह भी नहीं सकती? शेष हजार मुखों से आपकी स्तुति करते हैं-त्रिपुरारि ध्यान धरत है। फिर भला हम अहीरी ब्रजवासिनी भोली सरल बालाएँ आपका क्या पार पावें? ॥३०॥

कुंभनदास कहते हैं :—

श्रीराधाकृष्ण के दान-प्रसंग का यह वार्तालाप जो- गाकर सुनावै, उनकी लीला का ध्यान करै-उसे मनवाञ्छित फल मिलैंगे और हृदय का ताप शान्त होगा। सुखनिधान श्यामा-श्याम को विराजमान इस जोड़ी के दर्शन कर उनकी वानिक पर 'कुंभनदास' बलि २ जाता है ॥३१॥

दशहरा—

२४

आज दशहरा का शुभ दिन हैं। गिरिधरलाल जवाग धारण कर रहे हैं। भाल पर कुंमकुंम का तिलक शोभित है। माता यशोदा आरती कर मोतियों का हार न्योंछावर करती हैं। इस समय गोवर्धनधर के दर्शन से त्रिभुवन का सुख भी फीका लगता है।

२५

आज विजय-दशमी का दिवस धन्य है। सज-धज कर आए हुए ग्वालवालों के मध्य नंदनंदन की शोभा ही कुछ न्यारी है। श्रीमस्तक पर झीनी रंगभीनी पाग और कस्तूरी का तिलक शोभित हो रहा है। आज श्रीविट्ठलेश्वर विधिपूर्वक शमी वृक्ष का पूजन कररहे हैं।

रास—

२६

"मोहन मधुर वेणु बजा रहे हैं। सरम मंगीत की लय-गति से मन को थोड़ा-सा भी चैन नहीं पड़ता। चलकर प्राण-पति से मिलें अंग २ में काम व्याप्त हो रहा है।" ऐसा कहकर व्रज वनिताऐं सुख-निधान गिरिधर के समीप जा पहुंचीं।

२७

सुजान राधिके! चलो तुम्हारे लिये सुख-निधान कृष्ण ने कालिंदी-तट पर रास रचा है। ब्रज-युवतियां नृत्य कर रही हैं, राग-रंग से कुतूहल हो रहा है, रस-भरी मुरली बज रही है।

निकट ही बंसी बट, रमणीय भूमि, त्रिविध मलय-पवन एवं जुही पुष्पों के खिलने से बन शोभित हो रहा है, शरद-पूर्णिमा की चांदिनी छिटकी है।

प्रभु का यह नखशिख-सौन्दर्य, देखने मात्र से ब्रज-युवतियों के काम-दुःख को नष्ट कर देता है। हे भामिनी! तुम भी प्रभु के श्रीकंठ में गलबांही डालकर गोवर्धनधर की सुखदायिनी लीला का आस्वादन करो।

२८

प्रिय कमलनयन प्रभु रास-नृत्य में तान ले-ले कर भांति २ से गान कर रहे हैं। वह रसिकों में मूर्धन्य और गुणियों में सर्वश्रेष्ठ तुम्ही को समझते हैं। गोवर्धनधर लाल तान छेड़कर सब का मन मुग्ध करलेते हैं।

२९

गोपाल ने यमुना तटपर रास रचा है। उनके अधर पर मधुर वेणु बज रही है। व्रजयुवति–समूह के साथ हाव–भावों से उन्हें नृत्य करते देख कामदेव भी लज्जित हो जाता है।

उनके श्याम वपु, पीत कौशेय पट और चरण–नख की झांकी से सकल जगत का अन्धकार हट जाता है। ललित आभूषण, धनुष के समान कुटिल भौंहें, चंचल कटाक्ष से ऐसा लगता है मानों काम ने बाण चढ़ा रक्खे हों।

नूपुरों की मन्द ध्वनि, किंकिणी के क्वणित और गंभीर संगीत से मेघ-गर्जन की भ्रान्ति होती है। इस प्रकार रासोत्सव में गोवर्धनधर की नख–शिख सौन्दर्य से अद्भुत ही शोभा हो रही है।

३०

श्रीगोवर्धनधर रसमय वेणु में अमृत भर रहे हैं। इसकी चारु ध्वनि को सुनते ही व्रजबालाएँ विमुग्ध हो जाती हैं। सुन्दर शरद ऋतु में गोपाल ने गोवर्धन की तलहटी में रास रचा है। इस कौतुक को देखकर चन्द्रमा भी पश्चिम दिशा की चाल

छोड़कर मध्य में ही ठहर गया है। वेणु-कूजन से सुर, मुनि, पवन, पशु, पक्षी सभी स्तब्ध रह गये। उनको देह का अनुसन्धान भी नहीं रहा। इस प्रकार गोवर्धनधर ने वेणु-नाद से सभी का मन हरलिया।

३१

गोविन्द मुरली में गा रहे हैं। मृदुल अधर और करपल्लव पर रखी हुई बंसी के सप्त स्वरों की तान के सुनते ही व्रजबालाएँ विमोहित हो गईं। पशु, पक्षी कान ऊंचेकर आंख मूंदकर उसे सुनने लगे। इस शब्द से चर अचर पदार्थों की विपरीत दशा और चेष्टा हो गई। मुनियों की समाधि टूट गई, देवों के विमान रुक गये।

सुजान गिरिवर-धरण ने इस प्रकार वेणु बजाकर विलक्षण ठाठ ही जमा दिया।

३२

रास-मण्डल में श्रीगिरिधर ने सुन्दर वेश धारण किया है। रमणीय यमुना का पुलिन, प्रफुल्लित कदम्ब के वृक्ष, शरद्-निशा में व्रजबालाओं के सौन्दर्य को देखकर चन्द्रमा स्थगित हो गया।

नये-नये भूषण वसन धारण कर युगल स्वरूप प्रेमालाप करते पधार रहे हैं। किस कवि की सामर्थ्य है जो—इस गौर-श्याम शोभा का वर्णन कर सकै? इसे हृदय में ही अनुभव किया जा सकता है।

३३

रास-मण्डल में नवल किशोर किशोरी उल्लास पूर्वक नृत्य कर रहे है। दोनों का वय, रूप सौन्दर्य समान ही है, गिरिधरण घनश्यामल कान्ति और श्रीराधा गौर छबि हैं। पीत और अरुण

वस्त्र हैं, नवल आभूषण हैं, कटि में किंकिणी मन्द झनकार कर रही है। दोनों के शृङ्गार ने त्रिभुवन की शोभा चुराली है। तान, बंधान, मधुर वार्तालाप, स्वर आदि सभी बातों की समानता से ऐसा लगता हैं–मानों विधाता ने बड़े परिश्रम से यही एक सरस जोड़ी बना पाई है। गोवर्धनधर विविध लीला, चेष्टाएँ कर भक्तजनों के मन मोह रहे हैं।

३४

श्रीगिरिवर-धरण रमणीय यमुना पुलिन में, रास में अद्भुत-गति से नृत्य करते हुए शोभित हो रहे हैं। व्रज–वनिताओं के कई यूथ, जिनके गण्ड-मण्डल पर कुण्डल झलमला रहे हैं, स्वरों में केदारा–राग का आलाप कररहे हैं।

दोनों ओर सुशोभित गोपिओं के मध्य में श्यामसुन्दर कंचनमणि में खचित नीलमणि से दीप्त हो रहे हैं। नृत्य–गति की शीघ्रता से कटि-बसन कुछ शिथिल–से हो रहे हैं जिन्हें वे अपने हाथ से साधे हुए है। सकल कलाप्रवीण गिरिवरधारी के स्वर-जाति का आलाप लेते समय प्रियतमा अंग–प्रत्यंग से शोभित हो जाती हैं।

३५

रास–रंग में नागरी, गोवर्धनधर के साथ अति प्रसन्न होकर उरप–तिरप तान ले रही हैं। 'सरिगम' आदि सप्त स्वरों के भेद, आलाप, लाग, दाट के साथ स्पष्टरूप में निनादित हो रहे हैं।

प्रभु! प्रसादी ताम्बूल देते हैं और जहां सम आती है वहां गति लेते हैं, 'गिडि–गिडि–थुंग थुंग' मृदंग के बोल अलग मालूम हो रहे हैं। इस प्रकार रास–विलास में श्रीराधा और नंदनंदन दोनों रस–सौभाग्य का आनन्द लेरहे हैं, उनकी बलिहारी है।

३६

रूपगुण-सम्पन्न नागरी श्रीराधे! चलो श्यामसुंदर ने यमुना-तीर पर रमणीय रास रचाया है। सोलहों शृंगार कर और सुवासित दच्छिन चीर (पटोला) पहिरकर प्रसन्नता से चलो।

श्याम के अधर पर बंशी विराजमान है, और उनके प्राण तुम में बसे हैं। इस समय उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता, सब काम छोड़ जलमें मीन के समान उनसे मिलकर सुख प्राप्त करो।

प्रियतम की कटि में पीत पट, और मस्तक पर मुकुट मण्डित हैं। वेणु-रव का अनुकरण करते हुए मत्त भ्रमर पुष्पों पर मंडरा रहे हैं, कोकिला शुक बोल रहे हैं। सुनो तो श्रीगिरिवर-धरण सप्तस्वर-संमिश्रित केदारा राग में गान कररहे हैं।

३७

रास-मंडल में गोपाल के संग प्रमुदित व्रज-युवतियां नृत्य कर रही ह। श्यामसुन्दर तमाल वृक्ष और वृषभानु-दुलारी कनक लता-सी रम्य लगती हैं।

नृत्य में कटि, ग्रीवा हस्त आदि अंग चंचल हो रहे हैं, और किंकिणी कड़ा आदि आभूषण झनकार कररहे हैं। राग तान-सहित वेणु-नाद गूंज रहा है। गति-विशेष से श्रमकण झलक उठे हैं।

इस प्रकार श्रीगिरिधरलाल नृत्य में व्रज-वनिताओं के मन को मुग्ध कररहे हैं।

३८

नवरंग दूलह श्रीगोवर्धनधर ने रास की रचना की है। उनके आसपास व्रज-युवतियां सुशोभित हैं और मधुर केदार राग की तान अलापी जा रही है। ललिता आदिक सखियां मृदंग, ढोल,

किन्नरी आदि बजा रही हैं। इस प्रकार रास के रंग में गिरिवर-धरण विविध भांति से नृत्य कररहे हैं।

३९

मंजुकल रव-युक्त कुञ्ज-स्थली में श्रीराधा और हरि सुन्दर वेश धारण किये हैं। पुष्पों की सुगंधि युक्त शरद-पूर्णिमा में श्यामलतन कृष्ण और गौरवर्ण श्रीराधा, नीलमेघ के संग सौदामिनी के समान विचरण कर रही हैं।

युगल स्वरूप के अरुण और पीत दुकूल अनुपम अनुराग प्रकट कर रहे हैं। शीतल मंद सुगंध पवन बहरहा है, नये पल्लवों की शय्या रची है, कोकिला मयूर कूज रहे है इससे मानिनी कामिनियों का मान भी खंडित हो जाता है।

प्रिया प्रियतम दोनों संयोग सुख से प्रसन्न हो रहे हैं। इस प्रकार गिरिवर-धरण की यह सुखदायिनी क्रीडा त्रिलोक की पाविनी हो रही है।

४०

वृन्दावन में रास-विलास का आनन्द बढ़ा कर श्यामसुन्दर ने नृत्य की नई गति-विधि का प्रदर्शन किया। अनेक प्रकार के आलाप, स्वर तथा 'ताता-थेई' आदि बोलों का उच्चारण मन को मोह लेता है। इस प्रकार प्रतिक्षण नई प्रीति उपजाते हुए गिरिधर मनोज्ञ क्रीडा कर रहे हैं।

४१

सारंग राग में सरस आलाप करने और इकताल में साथ देने के कारण ही राधे! तू मदनगोपाल के मन भाई हैं। सप्तक का अनुकरण कर अतीत, अनागत, 'अवघर अल्प, स्वल्प, संच आदि गायन के भेद-उपभेदों को जानकर नृत्य में किंकिणी की मधुर ध्वनि से तू विशेष सरसता प्रगट करती है। और रतिबाला

सी परम रमणीय रूप में तू नृत्य में हस्तक-भेद (कर-चेष्टाएँ) दिखाकर गोवर्धनधरलाल को रिझालेती है।

४२

रास में गोपाललाल और भामिनी संग नाच रहे है। नृत्य में कंधे पर श्रीहस्त रखने से ऐसा प्रतित होता है-मानों श्याम तमाल से कोई कनकलता लिपट गई हो।

उरप तिरप, लाग दाट आदि नृत्य के भेद एवं मृदग की ध्वनि में जैसा सरस राग जमा है, वैसी ही शरद्-पूर्णिमा खिल उठी है। गिरिधर को नटवर-भेष धारण किये देखकर कोटि कोटि कामललनाएँ लज्जित हो जाती हैं।

४३

विशेष पद है और भावार्थ स्पष्ट है—

इसमें रास-मण्डल का सम्पूर्ण वर्णन किया गया है।

४४

रास-रस मत्त होकर गोविन्द विहार कर रहे हैं। व्रजभक्तों के साथ ऐसे लगते हैं, मानों यमुना-पुलिन के मध्य में कुमुद कल्हार फूले हों। मंडल शतदल कमल-सा विकसित है। जाही, जुही, निवारा आदि पुष्प-समूह झूम रहे हैं, मलय पवन बहरहा है, पूर्ण चंद्र की शोभा और मधुकरों की झंकार के बीच सुधरराय नंद-कुमार संगीत कला बताते हुए चंदन-कपूर से चर्चित होकर व्रज-भामिनियों के साथ नृत्य कररहे हैं। सुकुमारता की सीमा दोनों स्वरूप क्रीडा में तल्लीन होकर ऐसे प्रतीत होते हैं मानों-उन्होने रसमय हार पहिर लिया हो।

४५

भानु-नंदिनी के तीर पर रचे हुए रास-विलास में अनेक व्रज-कामिनियों के साथ नन्दलाल की अपूर्व शोभा होरही है।

४८

धनतेरस—

माई! आज धनतेरस के दिन नंदरानी मंगल गाती हुई धन धो रही हैं। वे परमधन श्रीगिरिधर गोपाल का शृंगार करती हैं और उन्हें देख देखकर अपना हृदय शीतल करती हैं।

४९

गोक्रीडा (कान जगाई)—

कान जगाई के समय 'धौरी' गाय खेलने को आकुल हो रही है। ज्योंही उसने नंदनंदन की पुकार सुनी चौकन्नी होकर [डाढमेल* कर] सन्मुख आ खडी होगई। बडे २ गोप जिसे खिलाने में थक गए उसको इतने छोटे बालक का खिलालेना एक आश्चर्य की कहानी-सा है। प्रतिवर्ष एसे शुभ मंगल की कामना कर गोप ग्वाल गारहे हैं, गायें इधर-उधर कूदती नाचती हैं। नदकुमार प्रेम-पूर्वक अंगोछी से गायों का मुख झाररहे हैं। 'जय-जय' शब्दोच्चार हो रहा है। कुंभनदास कहते हैं-श्रीगिरिधर की राजधानी में सदा ऐसी ही सुख समृद्धि वसती रहो।

५०

श्यामसुन्दर गाय खिला रहे हैं। ग्वाल कूक-कूक कर 'ही ही' कह कर उन्हें बुला रहे हैं, वेणु और सींग बज रहे हैं। सभी धेनुओं का शृंगार किया गया है, उनकी सजावट अनोखी है। वे गायें बिचककर लौट आती हैं, पूंछ उठाकर दौड पड़ती है, कान ऊंचेकर चकित-सी खड़ी हो जाती हैं। उनके पैरों में पेंजनी पड़ी हैं, मॅहदी से पैर रंगे गये हैं, पीठ और पुट्ठों पर सोने के थापे लगाये गये हैं। इस प्रकार जैसे उल्लास से खेल प्रारंभ हुआ उसी प्रकार गोक्रीडा हो रही है।

* गाय के खेलने के समय उसके दौड कर आने को 'डाढमेल' कहते हैं।

५१

दीपमालिका—

पंक्तिबद्ध प्रज्वलित इन दीपकों की सुंदरता तो देखो, ॲधियारी निशा में वे आकाश में छिटके हुए तारा–गण से प्रतीत होते हैं। नन्दराय ने अगणित बतियां लगाकर इन्हें अद्भुत ढंग से सजाया है, कपूर घी आदि सुगंधित द्रव्य से उन्हें भरा है। व्रज में घर–घर परम आनन्द और कुतूहल हो रहा है। इसी समय गिरिधर सब को सुखदायी गो–क्रीडा कररहे हैं।

५२

गोवर्द्धन-पूजा—

गोपाल गोवर्धन पूजने चले। उनकी मंद गति को देखकर मत्त गजेन्द्र लज्जित हो जाता है। व्रज–वनिताओं ने कई प्रकार के पक्वान्न बनाकर थालों में सजाये हैं। अंग पर उन्होने रंग विरंगे चमकीले बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र पहिन रक्खे है, मनोहर गीत गाती हुई वे चली जा रही हैं। वेणु के स्वर के साथ भांति २ के बाजे बजरहे हैं, सुर ताल की जमावट है। गोप, ध्वजा–पताका, छत्र–चमर लियेहुए कोलाहल करते जा रहे हैं। कृष्ण के चारों ओर बालकों की टोली कमल पर मधुकर–माला सी शोभित हो रही है। इस प्रकार गोवर्द्धन–धर लाल अपनी सुषुमा से त्रिभुवन को मुग्ध कररहे हैं।

५३

जिस समय मदनगोपाल गोवर्द्धन–पूजा करने लगे, ताल बज उठे, मृदंग ठनक उठे, शंख–घोष गूंज उठा और मुरली कूज उठी। मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाए, नवीन आभूषण वस्त्रों से सजे–सजाए गोप–गोपियों के ठट्ट जमा हो गए। सुवर्ण मणियों के बीच नीलमणि के समान व्रज–ललनाओं में श्यामसुन्दर रमणीय

लगते थे। हर्ष-मग्न होकर गोप ग्वाल 'धोरी हो कारी हो' इन नामों से गायों को बुलाने लगे। उन्होंनें लाल-पीले टिपारा सिर पर धारण किये थे। मधुर वाणी से वे गायों को बुलाते और खिलाने लगे। गोप ग्वाल परस्पर हरदी, दूध, दधि अक्षत छिड़कते थे, छोटे पैर पडते थे, बडे आशीर्वाद देते थे। 'प्रिय गोवर्धन-धर! आप कई युगों तक गोकुल-राज करो' ऐसी शुभ कामनाएँ सब की प्रगट होने लगीं।

५४

परम उदार, गोप-वृन्द के रक्षक मोहन की गोवर्धन-पूजन के समय कुछ अपार शोभा हो गई। षट्रस व्यंजन उपहार और भोग रूप में रक्खे जारहे हैं, सभी गोप ग्वाल पूजा करके गिरि की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। कंचनवर्णी गोपिकाएँ पर्वत के चारों ओर विद्यमान हैं सो ऐसा लगता है मानों-उसने सुवर्ण का हार पहिन रक्खा है। प्रभु की परम रमणीय छबि देखकर कामदेव भी ठिठककर रह गया।

५५

व्रजके राजा नंदजी गोवर्द्धन-पूजा कर रहे हैं। बलभद्र और मोहन उनके आगे गोप-वृन्द सब समीप खड़े है। 'आज दीपावली का महोत्सव गोवर्धन-पूजा है, सभी को बुला लो' ऐसा आदेश दे रहे हैं, सभी ने अपने २ मनभाये वस्त्र अलंकार पहिने हैं। दूध दही के पात्र भरे रक्खे हैं, मीठी खीर भी अधिक मात्रा में बनाई गई है। इसी समय शिखर पर विराजमान होकर, भोजन करते हुए सब को गोपाल के दर्शन होते हैं। सकल व्रजवासी आनन्द-मग्न होकर अपनी २ गायें खिला रहे हैं। इस प्रकार स्वकीय भक्तों का मनोरथ पूर्ण करते हुए श्रीगिरिधर ने गिरि गोवर्धन की पूजा की।

५६

गोवर्द्धनोद्धारण (इन्द्र -मानभंग)—

नन्दलाल ने व्रज की रक्षा के लिये गोवर्धन पर्वत को धारण कर लिया। इन्द्र ने अपनी पूजा का भंग देखकर क्रोधित हो प्रलय मचा देने के लिये मेघों को भेजा, सात दिन तक लगातार घोर वर्षा होती रही। पर श्रीकृष्ण ने शरणागत गोपी, गाय, ग्वाल बाल, बछडों की आत्मबल से ही रक्षा कर इन्द्र का अभिमान चूर कर दिया। अपना अधःपात होते देख इन्द्र ने गर्व का परित्याग कर दिया और अनन्यभाव से गोवर्द्धन-धरण के चरणों में आकर पड़ा।

५७

प्रिय गोपाललाल समग्र गोकुल का जीवन है। सुन्दर मुखारविन्द के दर्शन मात्र से हृदय स्निग्ध हो जाता है। वह तो गोपी ग्वाल सभी के आंखों का तारा है।

वह रूप की निधि, मनोरथों की सिद्धि है, और प्रेम की विधि का जानकार है। संध्या के समय धेनु-समूह लेकर जब घर आते हैं, कितने प्रिय लगते हैं? उसी गिरिधर ने तो शरणागत व्रज के परित्राण के लिये कोमल वाम कर पर गोवर्द्धन को सहज ही धारण करलिया था।

५८

इन्द्र-पूजा का भंग होते ही व्रज पर मेघों की काली २ घटाएं उमड़ आई। नंद के सलोने लाला पर इन्द्र ने चढ़ाई-सी कर दी। तब उन्होंनें व्रज रक्षा के लिये पर्वत को नख पर उठाकर गाय, गोप ग्वालों को बचा लिया। वे सब मिलकर प्रभु की इस लीला का गान करने लगे।

५९

श्रीगुसांईजी की बधाई—

आज श्रीवल्लभ के द्वार पर बधाई है। अपनी अवतार-लीला को दिखाने के लिये पूर्ण पुरुषोत्तम का पुनः प्रागट्य हुआ है। सभी दैवी जीवों के भाग्य का उदय और निःसाधन जनों का उद्धार हो गया। प्रभु गोवर्द्धनोद्धरण, श्रीवल्लभाचार्य तथा श्री-विट्ठलेश, यह तीनों निगमागम में कथित समस्त साधनों के फल-स्वरूप हैं।

६०

गोकुल में घर-घर बधाई हो रही है। श्रीवल्लभ के आत्मज रूप में पृथ्वी पर साक्षात् करुणा की निधि प्रगटी है। दर्शनकर ब्रजवनिताओंने मोतियों के चौक पूरे। साक्षात् गोवर्द्धनधर का प्रागट्य देखकर देवोंने पुष्प-पर्व की। गोपियां आशीष देने लगीं उनके हृदय में आनन्द नहीं समाता। श्रीगोवर्द्धनधर को सुख देने के लिये ही यह स्वरूप प्रगट हुआ है।

६१

बाल गोपाल के रूप में आजश्रीविट्ठलेश प्रगटे हैं। यह कलियुग के निःसाधन जीवों के उद्धारक, सत्पुरुषों के प्रतिपालक, तैलंगद्विज-कुल के तिलक एवं रसस्वरूप श्रीवल्लभ-वंश के अलंकार हैं। व्रज ललनाओं के आनन्दरूप श्रीगोवर्द्धनधर ही इस स्वरूप में प्रगट हुए है।

६२

आज फिर श्रीवल्लभ ने पुत्र रूप से प्रगट होकर अत्यन्त गूढ भगवत्सेवा रस का विस्तार किया है। आपने अपने दर्शन से स्वकीय जनों कों पवित्र कर दिया-जन्मोत्सव के आनंद से घर-घर वंदन वार बंध गए। बंदी और चारण हर्षित होकर श्रीगिरि-धर की महिमा और गुण गाने लगे।

६३

अरे मन ! जो तुझे परमार्थ की चाहना है तो श्रीविट्ठलेश के चरण कमल का भजन कर। 'मार्ग' नाम से जितने भी पंथ चलते हैं—वे सब पाखंड हैं—काम के साधन हैं। सभी देवी—देवता को स्वार्थ से भजते हैं, हरि को नहीं भजते। श्रीभागवत और भजन की महिमा आपने बताई सो ही यथार्थ है। यह मार्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है—इससे अनेक जीव कृतार्थ हुए हैं। तूने इतने दिन शरण आए बिना वृथा ही खोए—अब भी चेत।

६४

श्रीविट्ठल प्रभुचरण के प्रताप से अब मुझे बाधा कष्ट नहीं रहा। मस्तक पर श्रीहस्त के रखने से सब अपराध नष्ट हो गये हैं। पृथ्वी पर महापतितों के उद्धारार्थ ही आपका प्राकट्य है।

'कुंभनदास' तू अब आनद में मग्न रह—तुझे डर नहीं—सब शत्रुओं को भी तूने जीत लिया है।

६५

वसन्त—धमार—

शुभ दिन, घड़ी मुहूर्त श्रीपञ्चमी (माघ शु. ५) के दिन श्रीराधिका ब्रजराज को वधाई है। वृन्दावन कुंज में श्यामा के साथ श्याम विहार कर रहे हैं, गुलाल उड रही और रसभरी वेणु बज रही है, कृष्ण गा रहे है। कंचनवल्ली के समान राधा श्यामतमाल से मिलकर विनोद कर रही हैं। प्रभु गोवर्द्धन और स्वामिनी दोनों स्वरूप मिलकर परस्पर प्रमुदित हो रहे हैं।

६६

श्याम के रमणीय शरीर पर चन्दन के छींटे कैसे सुन्दर लगते हैं। सुरंग अबीर कुमकुमा और केवडा के रज की चित्र-

कारी श्रीअंग पर मंडित है। नंदनंदन की शोभा देख कामदेव भी तन, मन न्यौछावर करता है। ऐसा लगाता है कि- गिरिधरलाल ने भांति २ के रंगरंजित वस्त्रों से भूषित हो ब्रजभक्तों के मन को बांधने के लिये नये प्रकार की वेष-रचना की है।

६७

वसन्त ऋतु आई है। चारों ओर बन में वृक्ष पुष्प फूले हैं। कोकिला कूजती है, मधुप गुंजार कररहे हैं। सप्त स्वरों का गान सुनकर प्रत्येक पशु पक्षी के शरीर में उल्लास भर गया है। रसिक जन प्रसन्न होकर परस्पर मिलते हैं—काम सुख का कहीं अन्त दीखता ही नहीं। इस सुहावने समय को देखकर सखी स्वामीनीजी से शीघ्र चलकर नवल कंत गिरिधरलाल से मिलने के लिये प्रार्थना कर रही हैं।

६८

'उस वन में चलिये, जहां शीतल, मंद, सुगंध पवन बह रहा है। वहीं यमुना-तट पर हरि तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। चारों ओर मन को हर्षित करने वाले गुल्म कुसमित हो रहे हैं। राधे! श्यामसुन्दर ने तुम्हारी शरीर-कान्ति के समान पीत पट धारण किया है। विविध स्वरों में भ्रमर शुक पिक बोल रहे हैं। प्रभु ताप की शान्ति के लिये अनेक प्रकार के शीतल उपचार कर रहे है।'

६९

हरि व्रज-युवतियों के संग फाग खेल रहे हैं। बालकों के कोलाहल से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। सुगंधित कुमकुमा, अरगजा और चंदन के जल से भरी पिचकारियां एक दूसरे पर प्रसन्न चित्त से चलाई जा रही हैं। खेल में ड़फ, मृदंग, बांसुरी, किन्नरी आदि बाजों के स्वर में अपनी अधर-धरी मुरली की तान

मिलाकर नन्दनन्दन और भी रस बरसा रहे हैं। खेल की छीना-झपटी में हार टूट पड़ते और वस्त्र फट जाते हैं, कई गिर पड़ते हैं, क्रीडा आनन्द में मग्न होने से किसी को तन की संभार और घड़ी पहर का ध्यान भी नहीं है। इस प्रकार गोवर्द्धन-धर फाग की क्रीडा से सभी ब्रज-जनों को आनन्द-मग्न कर रहे हैं।

७०

गिरिवर-धरण वन में बसन्त खेल रहे हैं-उसमें वंदन* अबीर, कुमकुमा आदि रंग उड़ रहे हैं। सुन्दर ललित अंगो पर लगे हुए विविध रंगो से प्रभु एसे लगते हैं-मानों कामदेव अपने विविध रंग के पांच बाणों को सजा कर लड़ने आया हो। मनोहर यमुना का तट, रमणीक बनस्थली, लता वृक्ष और रंग २ के पुष्प अपनी २ पूर्ण शोभा बिखरा रहे हैं। मीठे स्वरो मे भ्रमरों का गुंजन और मधुरस-मुग्ध कोयल के कूजन से कोलाहल होने लगा।

इस सुहावने समय घोष-सीमन्तिनी बहुमूल्य पट आभूषण पहिनकर हावभाव से मधुर गीत गाती हुई आने लगीं। उनकी ठुमक २ चरण-गति से प्रसन्न होकर सुवर्ण के नूपुर भी मुखरित हो उठे। उनके मुखकमल अधरबिम्ब और मृदुल कपोलों की आभा से चंचल कुण्डल भी झलमल-झलमल करने लगे। शोभा की सीमा नंद-नंदन इस प्रकार ब्रज-युवतियों के चित्त को लुभाते हुए आनंदित हो वसन्त-क्रीडा करने लगे।

७१

वसन्त के मोहक अवसर को देख ब्रज-सुन्दरियां मान छोड़ ब्रज की ओर आने लगीं। सुंदरता की राशि श्रीराधाकिशोरी

*वदन-आम की मजरी के पराग से तयार किया हुआ चूर्ण।

के रमणीय नवल आभूषण शृङ्गार धारण करने से तन की कान्ति और भी दुगुनी हो उठी। द्रुमलता से सघन, भ्रमर-गुंजरित उस निकुंज में जाकर श्रीराधिका श्रीगिरिधरलाल से मिलकर अत्यन्त आल्हादित हुईं।

७२

श्रीगिरिधरलाल रस मग्न होकर राधा-संग विमल वसंत-क्रीडा कर रहे हैं। अबीर, गुलाल डालकर अरगजा छिरक कर गोपी ग्वाल सब को रंग से भर रहे हैं। ताल मृदंग, अधौटी, वीणा, मुरली की तान छिड रही है। इस प्रकार यमुना-तट पर क्रीडा करते हुए प्रभु के सौन्दर्य और हावभाव को देखकर काम भी लज्जित हो जाता है।

७३

श्रीगिरिधरलाल सरस वसन्त खेल रहे है। कोयल बोल रही है, यमुना तट पर तमाल, केतको, कुंद आदि फूल रहे है। वेणु, मृदंग ताल स्वर में मुरली की मधुर तान सुनकर व्रज-बालाएँ नवीन साज-सिंगार कर चली आ रही हैं। मदनगोपाल चोवा, चंदन, अरगजा छिरक रहे है, प्रेम से मिलकर परस्पर फूल मालाएँ पहिना रहे हैं। इस क्रीडा के दर्शनकर देवगण व्रज-कुमार पर पुष्प-वृष्टि कर रहे हैं। श्यामसुन्दर सब के मन को प्रसन्न कर रहे है, उनकी बलिहारी है।

फाग—

७४

व्रज-युवतियों के साथ 'हो हो होरी' बोल कर नंदलाल फाग खेल रहे है। चारों ओर ग्वालों के टोल नटनारायण राग, चैती और फाग के गीत गा रहे हैं। आवज, उपंग, बांसुरी, बीणा, चंग, संख, झांझ, डफ, मृदंग, ढोल आदि वाद्यों के ताल में श्री-गोपाललाल होरी-गीत गाते हैं वेणु से भी वह तान निकालते हैं।

व्रजवनिताएँ अमूल्य पट आभूषण पहिनें है जिनकी शोभा अकथनीय है। ब्रज की गली-गली में रंग की पिचकारियां छोडकर 'ही-ही हू-हू' करते ग्वाल डोल रहे हैं। रसमत्त होकर ग्वाल गोपियों के आभूषण और वस्त्र खेंच लेते हैं। किसी का हार टूट जाता है, तो किसी की भुजा झकझोर और कलाई मरोड़ जाती है।

इस प्रकार समस्त गोकुल में रंग की कीच मचो है, अतुलनीय अनुराग उमड़ रहा है। गिरिधर प्रभु का इस प्रकार ब्रज में प्रेम-कल्लोल देखने को देव-विमान स्थगित हो जाते है।

७५

'देखो सखियो! होरी का अवसर है कोई बुरा न मानें'। ऐसा कहकर श्याम किसी का हार तोड़ते किसी की चुरियां चरकट्ट कर देते हैं, तो किसी की खुंभी ले भागते है, आँखों में पिचकारी तानकर मार देते हैं। वह खेल में किसी की नकवेसर झटकते हैं किसी का स्पर्श करते हैं तो किसी की पीछे से वेनी खेचते और कंठसरी लेकर भाग जाते हैं। इस प्रकार का ऊधम करते हुए भी गिरिधरलाल सब को आनंदित कर रहे हैं।

७६

'हो! हो! होरी है' बालकों के साथ हल्ला मचाते हुए गोवर्धन-धारी फाग खेल रहे है। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजकर व्रज-रमणियाँ आ रही हैं। उनकी मांग का सिंदूर झलक रहा है।

खेल में ताल, मृदंग, अधौटी आवज और डफ किडकिड, 'थुंग-थुंग धम्म' शब्द कर रहे है; तो वीणा वेणु स्वर-मंडल अपनी मधुर गुंजार कर रहे हैं। श्याम के अधर-धरी मुरली तो सातों स्वरों की तरंग छलका रही है। अबीर कुमकुमा वंदन और नाना

प्रकार के रंगों से मंडित त्रिभुवन-मोहन श्याम अपने कोटि कन्दर्प-लावण्य से मन मोह लेत हैं।

७७

माई! 'हो हो होरी है' बोल-बोल कर होरी खिलाओ। झांझ, बीन, पखावज, किन्नरी और डफ मृदंग, बजाकर चांचर का खेल प्रारंभ करो। चोवा चंदन मृगमद घोल २ कर छिड़को और एक दूसरे पर अबीर गुलाल उडाओ। नंद के लाडिले श्याम फाग खेल खेल रहे हैं, गोप-वेशधारी मनमोहन का यश गाओ।'

नवीन वस्त्र आभूषण पहिन कर ब्रजवनिताएँ कह रही हैं कि, चलो-नन्द के घर चलकर लाल गिरिधर पर अपना सर्वस्व न्योंछावर करें।

७८

अब तो चारों ओर रंग मच गया है 'हो! हो! होरी है' कह-कह कर होरी खेल रहे हैं। सब ब्रजबालाएँ मनमोहन का रंग-ढंग देखकर सिमिट कर इकट्ठी हो गई हैं। खेल-खेल में ही सब ने सब कुछ कर डाला, अब बाकी क्या बचा है? स्त्रियां रस-भरी गाली गाती हैं। होरी का छैला चेष्टाए कर बेढंगा नाच रहा है।

गुलाल लेकर मुख पर मली जा रही है। दोनों नेत्रों में काजर आंजा रहा है, राधिका ने पिचकारी छोडकर श्यामसुन्दर को सराबोर कर दिया हैं। रसनिधान ब्रज का लाडिला तो शोभा का समुद्र हो रहा है, उसे देखकर कामदेव भी मन में लज्जित हो जाता है।

७९

कुंवर कन्हैया होरी खेल रहे है। चोवा, चंदन, अगर, कुमकुमा से आंगन में कीच मच गई। ललिता आदि सखियों की गुलाल उडाने की शोभा दर्शनीय हो जाती है। वे पिचकारी का केसरी रंग एक दूसरे पर छिड़कती जाती हैं। युवक-युवती सभी ने एड़ी से लेकर चोटी तक नये वस्त्राभूषण पहिने हैं। गिरिधर की शोभा पर तो निछावर हो जाने का मन हो जाता है।

डोल—

८०

मोहन के मन में डोल-झूलने से आनन्द उमड़ पडा है। एक ओर वृषभानु-नन्दिनी दूसरी ओर ब्रज-चन्द्र विराजमान हैं।

सोने की डांडी पकड़ कर ललिता, विशाखा, प्रिया-प्रियतम को झुलाती जाती हैं। युगल स्वरूप आपस में देखकर मन्द स्मित कर वार्तालाप कररहे है।

उड़ती हुई गुलाल, कुमकुमा मृदुल कपोलों पर लग जाता है। गोपाल पर रंग और फूल बरसाते समय जय-जयकार का कोलाहल हृदय के आनन्द को बढ़ाता है। परस्पर प्रेमरस की वृद्धि होती है, उसकी उपमा त्रिभुवन में नहीं है।

'कुंभनदास' लाल गिरिधर की बानिक पर बलि २ जाता है।

फूलमण्डली—

८१

आज लाल गिरिधर फूलों के चौवारे में बिराजे हैं। कुरवक बकुल, मालती, चंपा, केतकी, निवारी तथा जाई जुही, केवडा रायवेल आम्र आदि सुगंधित पुष्पों की महक उठ रही है। त्रिविध मंद समीर में पिक शुक के बोल और मधुकरों की

गुंजार व्याप रही है। राधा-रमण रसमग्न होकर विलास कर रहे हैं-सामने मयूर नाच रहे हैं। अनुपम शोभा से युक्त श्री गिरिधर पर कोटि मन्मथ निछावर हैं।

श्रीमहाप्रभुजी की बधाई—

८२

श्रीलक्ष्मण भट्टजी के घर आज बधाई है। सुखदाता पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ का प्राकठ्य हुआ है। लक्ष्मण भट्टजी सभी को दान मान से सम्मानित कर रहे हैं। सुख की लता लहलहा उठी है। इनके प्राकट्य से श्रीगोवर्धनधर के हृदय में आनन्द नहीं समाता।

८३

अवतार-स्वरूप श्रीवल्लभ का गुणगान करो। सकल विश्व के आधार श्रीगोकुलपति गोकुल में साक्षात प्रगटे हैं। महाप्रभु ने सेवा-भजन की रीति बताकर जीवों के जन्म मरण का व्यापार ही मेंट दिया है। श्रीप्रभु गिरिधर के इस प्राकट्य से भवसागर से पार उतारने का मार्ग अब सरल हो गया-मुक्ति का द्वार खुल गया है।

८४

श्रीवल्लभ की बलिहारी है। आप अपने वचनामृत सींच कर सब का दुःख हरलेते हैं। आप निकुंज-विहारी कृष्ण की लीला का विस्तार करते हैं। प्रभु गोवर्द्धन-स्वरूप! 'कुंभनदास' तो आपकी बिना मोल की दासी है।

८५

श्रीवल्लभ प्रकट न होते तो प्रभु की लीला ही पुरानी पड़ जाती, सब लोग उसे भूल जाते। आपके प्राकट्य-विना वसुधा

सूनी लगती। जिस प्रकार कुन्दन पर चुनी (जड़ाव का हीरा) सुन्दर लगता है उसी प्रकार आप से भूतल की शोभा है। जिनका यश मुनिगण गाते हैं, उनकी स्तुति 'कुंभनदास' कहाँ तक कर सकता है?

अक्षय तृतीया—

८६

श्रीगिरिधर सुभग अंग पर चंदन धरा रहे हैं। उनके बाईं ओर कंचनवल्लरी-सी श्रीराधा सुशोभित हैं।

अक्षय तृतीया के दिन आज सर्व प्रथम ही अंग-प्रत्यंग पर चंदन की चित्र-रचना की गई है। श्रीहरि ने श्वेत वागा और पाग धारण की है। वक्षस्थल पर केसरी मलयागिर चंदन का लेप किया है, दोनों स्वरूपों ने चंदन की मालाए धारण की हैं। रसिक शिरोमणि प्रभु व्रज-वनिताओं के साथ हास्य-विलास कर रहे हैं।

८७

ठीक दुपहरी में खस-खाना में भी विहारी विराजमान हैं। कटि में खासा का पिछोरा और श्रीमस्तक पर चंदन से भींजी कुलह धारण कर रक्खी है। वृषभान-दुलारी श्याम के कोमल तन पर चंदन लेप कर रही है, सुगंधित जल के फुंहारे छूट रहे है। प्रीतम फूलों के पखा डुला रहे हैं। सघन लताद्रुमों से मालती-पुष्प झररहे हैं। श्रीराधा गुलाबों की माला गूंथ रही हैं। श्रीगिरिधर उनकी छवि पर रीझ जाते हैं, तन-मन न्यौछावर करते हैं।

रथयात्रा—

८८

रथ पर विराजमान मदनगोपाल की शोभा क्या बर्णन की जा सकती है? मोरमुकुट, वनमाला, पीताम्बर और तिलक

सुशोभित है। कंठ में गजमुक्ता की माला नीलगिरि पर बहती हुई स्वच्छ गंगा की धारा जैसी लगती है। वृन्दावन की रम्य भूमि में प्रभु के सग राधिका, घन के साथ दामिनी के समान छवि पा रही है।

रथ के शब्द को सुनकर शुक, पिक, मयूर बोल उठते हैं, त्रिविध पवन बहरहा है, इन्द्र पुष्प-वर्षा कररहा है। गिरिधरलाल की इस शोभा की बलिहारी है।

८९

रथ पर घनश्याम और गौरवर्ण श्रीराधा की जोड़ी शोभित है। इस समय देखने को आकाश में देव-विमान इकट्ठे हो गये, सुर, मुनि, गन्धर्व 'जय-जय' का उच्चार कररहे हैं।

'कुंभनदास' इन दोनों स्वरूपों की वानिक वर बलि जाता है।

९०

सुसज्जित रथ पर त्रिभुवन के नाथ और उनके आसपास बहिन सुभद्रा और बलभद्र बिराजमान हैं। सब सखा भी जहां तहां बैठे हुए हैं। रथ के ऊपर सोने के कलश की और भीतर मरकत श्यामप्रभु की छवि दर्शनीय है। नीलाम्बर तथा पीताम्बर और श्रीहस्त के सुदर्शन चक्र का तेज अभूतपूर्व है। दोनों भाई नील शिखर पर इन्द्र के समान दीप्त होते हैं।

'कुंभनदास' इनके यश का वर्णन करता हुआ तृप्त नहीं होता।

वर्षा-ऋतु वर्णन—

९१

सखी! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, प्रीतम के साथ भींजते चलने में बड़ा आनंद मिलेगा। इधर चातक, पिक, मयूर बोलते हैं, उधर मेघ की मधुर गर्जना होती है, उसी प्रकार पवन भी

शीतल है। जैसी गगन में काली घटा उमड़ रही है, वैसी ही पहिनी हुई चूनरी से वेश रमणीय लगेगा। ऐसे समय रसिक सुन्दर वर प्रभु गोवर्धन भी हृदय को प्रिय लगेंगे।

९२

'मोहन! यह नई साड़ी बरसा में भींजेगी। बाबा वृषभानु ने अभी दी है--सो पहिन कर आई हूं। अपना पीताम्बर मुझे उढ़ालो, यह साड़ी भींज जायगी, चित्राम-रंग बिगड़ जायगा, घर जाकर क्या कहूंगी? मुझे तो डर लगता है,' प्रिया के इस वचन को सुनकर गोवर्द्धनधर ने प्रसन्न होकर उन्हें पीताम्बर में छिपा लिया।

९३

गोवर्द्धन पर मुदित मयूर बोल रहे हैं। मंद घोर सुनकर मन के उल्लास से वे जहां तहां नाचने लगते है।

मेघ-घटा-सी श्रीअंग की शोभा, दामिनी-सा दमकता पीताम्बर, इन्द्र धनुष-सी वनमाला, और बक-पंक्ति-सी मोतियों की माला शोभित होती है। ऐसे समय नवल घनश्याम सुन्दर प्रेमनीर की वरषा कररहे हैं।

९४

श्रीराधिका नवल तन पर कसूभी साड़ी पहिनें हरियाली भूमि पर चन्द्र (इन्द्र) वधू-सी लगरही हैं। हरि के निकट ठाढ़ी मृगलोचनी राधा दर्शन से मन मुग्ध करलेती हैं।

जैसी सुहावनी वर्षा ऋतु है वैसी ही घन-घटा, और वैसी ही युगल स्वरूप की बानिक को क्या उपमा दी जाय? विचित्र वेश-धारिणी, स्वामिनी श्रीराधा का मुखकमल श्रीहरि इकटक निहार रहे हैं।

९५

'देखो सखी! यह मेघ चारों ओर से झड़ी लगा रहे हैं। घटा की उठान और बिजली की कौंध से आकाश छा गया है। रस की बूंदे धरती पर पड़ने से व्रज-जनों को अच्छा लगता है। एसे सुहावने समय प्रभु गोवर्द्धनधर मलार राग छेड़ रहे है।

९६

'प्यारे कान्ह! मुझे अपने कंधे का कंबल दे दो? रिमझिम २ वरसा से मेरी कसूंभी साड़ी भींजी जारही है। मेघ-घटा और गर्जना से डर लगता है।

'कुंभनदास' कहते हैं कि-गोवर्द्धनधर साथ के ग्वालों के डर से अपना कंबल प्रियतमा को उढ़ा नहीं पाते।

९७

आज व्रज पर सलोनी घटा छाई है। नन्ही नन्ही बूंदें और और दामिनी की चमक सुहावनी लगती है। आकाश गर्जना-रूप मृदंग बजाता है, तो मयूर नट अपनी कला दिखाता है। उसके ताल स्वर में चातक, पिक तान छेड़ देते हैं। इसी समय मदन भट (योद्धा) भी खंभ फटकार आ कूदता है। खेल का जमघट-सा जुड़ जाता है, नंदलाल ऊंची अटारी पर बिराजे हैं, श्रीअंग पर पीत पट, मस्तक पर कसूंभी पाग शोभित है, सभी उन्हें भेंट समर्पित कर रहे हैं।

९८

माई! गोवर्द्धन पर मयूर बोल रहे हैं। काली २ घटा सुहावनी लगती है। तेज पवन भी चल रहा है। श्याम घन के तन में दामिनी दमक रही है, थोडी २ बूदे पड़ रहीं है। गोवर्धन-धर को देखकर मेघ की भ्रान्ति से चातक भी बोल उठते हैं।

९९

प्रिया प्रीतम सरस वार्ता में मग्न होजाने के कारण वर्षा से भींजने लगे। सघन कुंज के द्वार पर खडे २ पत्तों की छाया से अपने अंग को बचा रहे हैं। श्यामा श्याम उमंग में रसमत्त है, गीले वस्त्र उनके श्रीअंग से जाकर चिपट गये हैं। गोवर्धनधर इस समय प्रेमभरी चेष्टाओं से और भी स्नेह की वृद्धि कर देते हैं।

१००

युगल स्वरूप भींजते हुए कुंज के भीतर आरहे हैं। श्याम सुन्दर ने वर्षा से बचाने के लिये वृषभानु-कुंवरी पर कांबरी उढाली है। इस प्रकार हेल-मेल और परस्पर प्रीति से दोनों पुलकित होने लगे। इसी समय प्रभु श्याम राधिका को छल से छोड़कर छिप जाते है।

१०१

'मैं अपने नेत्रों से दुलहिन राधिका की सुरंग चूनरी और मोहन का उपरेना भींजता हुआ कब देखूंगी? श्यामा श्याम दोनों बरषा में कदम्ब के नीचे खड़े भींजते होंगे-मै उन्हें बचाने का कुछ भी यत्न नहीं करूंगी? सखी! मैं इस प्रकार मन में सोच ही रही थी कि- मेघ-घटा घिरकर आगई।

१०२

अरी आली! ये मयूर भाग्यशाली हैं। इनके पंखों का बना मुकुट नंदकिशोर मस्तक पर धारण करते हैं। ये सभी व्रजवासी भी धन्य है जो-हरि का मुखचन्द्र देखकर नेत्रों को सफल करते, आठों पहर। श्यामसुन्दर के साथ हिलमिल कर खेलते और आनन्द से किलोल करते हैं। व्रज की ललनाओं के

सौभाग्य की भी कहां तक सराहना की जाय? जो-हरि-गुणगान में लीन रहती हैं-प्रभु इनके मन को चुराकर इनके साथ विहार करते हैं ।

१०३

लाल गिरिधर! देखो मेह बरसने से मेरी सुरंग चूनरी भींज रही है, अब मुझे घर जाने दो। मनमोहन! तुम्हारे अटपटे विचार से मेरे मन में सन्देह-सा होजाता है। प्रभु गोवर्धनधारी! तुम सुख से राज करो यही हमारी प्रीति-भरी शुभ कामना है।

१०४

'श्याम! सुनो तो? वर्षा पास में आ गई। मेरी रंग-रंगीली चूनरी भींज जायगी। मेरे ऊपर अपना पीत पट उढालो। मोहन! मुझे बिजली से डर लगता है, मुझे अपने पास खड़ी कर लो'

कुंभनदास कहते हैं- इस प्रकार वाग्विनोद करते, गिरिधर-लाल से गोपी का अधिक स्नेह बढ़ गया।

१०५

'अरे सखी! देख, अचानक शरीर पर बूंदें पड़ने लगीं। मैं सुख से सोरही थी, गड़गड़ाहट से मेरी नींद खुल गई। दादुर, मोर पपीहा बोल उठे और मधु के लोभी भँवरा गूंजने लगे।'

ऐसा कहकर चित्त में स्नेह उमड़ने से वह वड़भागिनी गोपी लाल गिरिधर के समीप जा पहुंची ।

हिंडोरा—

१०६

सुंदर हिंडोरना में नागरी नागर झूल रहे हैं। उनके अंग २ की शोभा सुखद है। श्यामसुंदर के साथ भामिनी मेघ-दामिनी जैसी शोभित है, रमणीय वर्षा ऋतु है। पीत पट और लाल

साड़ी की उड़ान अनोखी छबि देरही है। खंभे, डांड़ी, मरुआ सभी रत्नों से जड़े हैं। ललिता-आदिक सखियां गिरिधर प्रभु का यश गाती हैं। इस शोभा को देखकर रतिपति भी लज्जित हो जाता है।

१०७

माई! युगल किशोर हिंडोरा झूल रहे हैं। ललिता चंपक-लता आदि व्रज-नारियां झोंटा देरहीं हैं। एक ओर भारी मेघ-घटा उठ रही है। उधर गोपियां गा रही हैं। इस शोभा को देख २ कर गोपियां मुग्ध हो जातीं हैं। गोवर्द्धनधारी हिंडोरा झूल कर सब को प्रसन्न कर रहे हैं।

१०८

व्रजनारियो! हरि हिंडोरा झूल रहे हैं, सावन में छोटी २ फुहियॉ पड़ रही हैं हरियाली छा रही है। नवीन बन, नवीन घन-घटा, नवीन ही चातक पिक पक्षियों के बोल हैं, उसी प्रकार नवीन कसूंभी साड़ी पहिरें नंदकिशोर के वाम भाग में वृषभानु-दुलारी शोभित हैं। मणि जटित सुवर्ण के खंभ, पटेला और डांडी सजी हुई हैं। लाल गिरिवरधरण धीरे २ झोंटा दे-देकर झूल रहे है।

१०९

व्रज-नारियाँ हरि के संग झूलने आई हैं। इन मृगनैनियों ने सुन्दर आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र पहिने हैं। सुवर्ण के खंभो की रत्न जटित डांडी और सिंहासन पर बिराजे गोवर्द्धनधारी मधुर २ झोंटा दे-देकर झूल रहे हैं।

११०

माई! नागर नंदकिशोर गिरिधरलाल रत्नखचित पटली पर

बैठे हिंडोरा झूल रहे हैं। घनश्याम के तन पर पीत पट और श्यामा के सुंदर वपु पर सुरंग साड़ी दीप्त हो रही है। वे गलबहियाँ दिये मंद हास्य कर रहे हैं। चारों ओर खड़ी घोष-नारियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। गिरिधरलाल की झूलने की शोभा उनके मन को मोहित कर रही है।

१११

माई! सुवर्णमणि-जटित हिंडोरा में श्यामा श्याम दोनों स्वरूप झूल रहे है। व्रज-सुंदरियाँ गा रहीं हैं सुरमण्डल के मीठे शब्द के साथ ताल, पखावज, झांझ, बांसुरी बज रही है। पुलकित होकर प्रिया श्रीराधा और प्रीतम प्रभु गोवर्धनधर रसिक-प्रीति का निर्वाह कर रहे हैं।

११२

प्रियतम के संग स्वामिनी सरस हिंडोरा झूल रही हैं। चारों ओर साज-सजी खड़ी होकर व्रज-युवतियाँ धीरे २ उन्हें झुला रही हैं। नीली साड़ी के साथ पीताम्बर घन-दामिनी जैसी शोभा दिखाकर चित्त चुरा लेता है। गिरिधर प्रभु के परस्पर देखने पर छबि की तरंग-सी उठने लगती है।

११३

नटवर सुरंग हिंडोरा झूल रहे हैं। प्रिया और प्रियतम के चरण एक दूसरे की पटली पर सटे हुए हैं। पीत पट, वनमाला और सुरंगी साड़ी अपनी २ आभा प्रकट करते हैं। सजल घन सरीखे श्याम और कनकवर्णी राधिका की छबि मानिनी के मान को खंडित कर देती है। अनन्त दीप्ति से झलकते कुंडलों को धारण किये दम्पति श्रीगिरिधर और राधिका की यह अनोखी प्रीति दर्शनीय है।

११४

नवल लाल के संग व्रज–रमणी श्रीराधा हिंडोरा झूलने आई हैं। सुंदर पाग की लपेट और चूनरी की रचना दर्शनीय है। प्रियतम के संग सगसगाकर मधुर वार्तालाप करती हुई श्रीराधा उनका चित्त चुरा लेती हैं। युगल स्वरूप रमक २ आनन्द से झूलते और मुख मोड़कर मन्दहास्य-पूर्वक वार्तालाप करते जाते हैं।

११५

'प्रियतम! मुझे भी थोड़ा झूलने दो। श्यामसुन्दर! मुझे जैसे डर न लगै वैसे झोंटा देकर रमककर मुझे झुला दो। मैं कभी अकेली पटुली पर नहीं बैठी। सखियों को भी पास बुलाकर उनके गीत के साथ मुरली मिलाकर मलार राग की तान छेडना, मैं झूलूंगी। प्रियतम! फिर मैं उतरकर आपको भी वैसे ही झुलाऊंगी, जिससे आप प्रसन्न होंगें'।

११६

माई! नवल किशोर सजे हुए झूला पर प्रसन्न होकर श्रीराधा को झुला रहे है। उनके तन पर नवल कसूंभी साड़ी और चारों ओर नवीन हरित भूमि शोभित है, कंचन के खंभों के पास खडी हुई सुन्दरियाँ गीत गा रहीं है, वन में अनेक पक्षी कल रव कर रहे हैं। मेघ की नई घटा से गर्जना के साथ थोडी २ बूंदे पड जाती हैं। राधा के अंग पर चूनरी और श्याम के अंग पर पीताम्बर फब रहा है। नव आभूषणों से सज्जित प्रभु गोवर्धनधर रत्न-खचित पटेला पर बिराजकर रस में मग्न मन्द २ झोंटा दे रहे हैं।

११७

श्यामा श्याम दोनों हिंडोरा झूल रहे हैं। गौर श्याम शरीर, कसूंभी और पीत वस्त्र से शोभित वे दोनों साक्षात् आनन्द–मग्न

काम की मूर्ति हैं। हिंडोरा में मरकत मणि से जड़े हुए खंभ, रमणीय डांडिया, पिरोजा की जटित पटली और मनोहर बहुरंगी झूमक झूम रही है। ललिता-विसाखा झोंटा देकर रस-भरे गीत गा रही हैं। पिक चातक मयूर पक्षी मधुर बोल रहे हैं। देवगण विमान पर चढ़कर इस कौतुक को देखते और प्रभु श्रीगोवर्द्धनधर पर पुष्प-वृष्टि करते हैं।

१०८

ब्रज-वनिताएँ सोलहों शृङ्गार सजकर प्रभु को हिंडोरा झुलाने आई है। वे रमणीय लग रही है। श्याम मनोहर श्यामा के संग सजे हुए बिराजे हैं। इनके नखशिख-सौन्दर्य को देखकर कोटि कन्दर्प लज्जित होते है। प्रसन्न होकर सखियाँ झुलाती और गीत गाती हैं। तान, मान, बंधान आदि संगीत वाद्य-भेदों के साथ मृदंग बज रहा है। यमुना-तट पर निकुंज में हर्ष-उल्लासित गुणनिधि राधा और गिरिवरधारी झूल रहे हैं-कुंभनदास कीर्तन गा रहा है।

११९

वर्षा-ऋतु, कुंज-सदन, यमुना-तट और वृन्दाविपिन में ब्रजराज-कुंवर हिंडोरा झूलरहे हैं। कनक के खंभा, सुन्दर चार डांडियां, रम्य झूमक और नवरंग पटुली अमूल्य लगरही है। वेषभूषा से सजे गोपाललाल, नवल ब्रज की सीमन्तिनी और चारों ओर गोपियों के टोल कैसे सुन्दर लगते हैं? नटनारायण राग का आलाप, सुन्दर नृत्य, व्रजनारियों का बारी-वारी से झुलाने का शब्द मुरली पखावज की ध्वनि, आकाश को गुंजारित करती है। स्वर-संगीत से युवतियां मत्त हो जाती हैं।

इस विलास को देख कर 'कुंभनदास' गिरिधर का गुणगान करता है।

१२०

नन्दकिशोर ! आज नया हिंडोरा सजाया है। हरियाली भूमि में कल्पद्रुम-से वृक्ष दीख पड़ते हैं। पारिजात मंदार के फूलों पर भौंरा मंडरा रहे है। हंस, चातक, मोर, कोकिला, शुक आदि पक्षी यमुना–तट पर मधुर शब्द कर रहे हैं। मल्लिका, मालती, चंपक, आदि वृक्ष-लताए लहलहा रही हैं। घन-घटा उमड़ी और इन्द्र-धनुष निकला है। सुगंधित पवन बहरहा है। रत्नजटित शोभित हिंडोरा में प्रसन्न चित्त गिरिधर के संग राधिका बिराजमान हैं। वेणु, वीणा, मुरज, मृदंग, आदि वाद्य बजरहे है। सुंदर सरोवरों में कुमुद–कल्हार फूल रहे हैं। संगीत में मल्हार राग जमरहा है। ललिता–विशाखा सखियाँ कुंज–कुंज में युगल स्वरूप को झुलाकर स्वयं झूल रही हैं।

इस आनन्द–मग्न युगल स्वरूप के विलास को देखकर देवगण पुष्प-वृष्टि करते हैं, और 'कुंभनदास' बलिहारी जाता है।

पवित्रा—

१२१

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा पहिर रहे हैं। उसमें रंग-बिरंगे रेशमी फोंदना लगाकर ग्वाल बड़े प्रेम से प्रभु को पहिना रहे हैं। उन के चारोंओर सखा–मण्डली कमल पर अलि माला–सी शोभित हो रही है। श्रीगोवर्द्धनधर अपने सौन्दर्य से त्रिभुवन को मोह रहे हैं।

१२२

श्रीगिरिधरलाल पवित्रा धरारहे हैं। वामभाग में बिराज-मान श्रीवृषभानु–नंदिनी मधुर वचन बोल रही हैं। कमल पर भ्रमर–पंक्ति के समान युगल–स्वरूप के चारों ओर सखा–मण्डली

विद्यमान है। श्रीनंदलाल और श्रीराधा अपने सौन्दर्य से जगत का मन मुग्ध कररहे हैं।

१२३

श्रीगोकुलराय पवित्रा धारण कररहे हैं। श्याम-अंग पर पवित्रा के रंग की सुन्दर झलक वर्णनातीत है। बाईं ओर लावण्यमयी वृषभानु-कुमारी बिराजी हैं। गोपियां दामिनी-सी दमक रही हैं। मनमोहन ने भक्तों के लिये अपनी गूढ लीला प्रगट की है। उनकी शोभा कही नहीं जा सकती।

१२४

गोकुल के राजकुमार गिरिधरलाल ने पवित्रा धारण कर अपने यश से तीनों लोकों को पवित्र कर दिया है। श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन मंगलचार हो रहा है। सब बालकों के साथ सजधजकर प्रभु सिंहासन पर बैठे हैं। व्रज-युवतियां मोतियों के थाल भरकर गीत गाती हुई आ रही हैं। कहती हैं-प्रभो! 'प्रसादी पवित्रा प्रदान करो' चिर जीवो-ऐसी शुभ कामना है।

राखी—

१२५

माता यशोदा बलराम और गोपाल के हाथ में राखी बांध रही हैं। सोने के थाल में कुमकुम-अक्षत लेकर नंदलाल को तिलक किया है। दोनों कुमारों के तनु पर सुन्दर वस्त्र-आभूषण और वनमाला शोभित हैं। यशोदा उनके शरीर पर मृगमद, चंदन आदि सुगंधित द्रव्य लगा रही हैं। सब सखियां श्यामतमाल के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देरही है।

१२६

नंदरानी कृष्ण के कर में सुन्दर रत्नों से जड़ी मनमोहन को मनभावती राखी बांधरही है । उन्हो ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सी दक्षिणा दी और प्रसन्न होकर श्रीगिरिधर के ऊपर न्यौच्छावर उतारी ।

१२७

यशोदा मैया कृष्ण का सुन्दर शृंगार कर राखी बांध रही हैं। बार-बार वे बलैयां लेती हैं, प्रसन्नता मन में नहीं समाती । अनेक प्रकार के मिष्टान्न आगे धरकर कहती हैं-कृष्ण ! आरोगो, बलदाऊ के भैया आरोगो । ब्रज-नरनारी वहां आकर शोभा देखकर नंदलाल को आशीर्वाद देकर कहती हैं-ब्रज के सुखदाता कृष्ण ! तुम चिर जिओ ।

इति वर्षोत्सव पद-
सरल भावार्थ
समाप्त ।

लीला

*

[सरल भावार्थ]

कलेऊ—

१२८

मनहरन श्यामसुंदर ! मैं बलिहारी जाऊं, अब उठो कलेऊ कर लो। सभी तरह के पकवान और दूध, दही, माखन मिश्री तयार है। देखो कटि-पट में मेवा बांध लो बलदाउ के साथ खेलने जाओ। तुम्हारी क्रीडा से व्रज-वासियों को आनन्द होता है। तुम नंद के नंदन, यशोदा के (हमारे) प्राणप्यारे कुंवर और भक्तों के देवाधिदेव हो।

माखन चोरी—

१२९

"हरि ! आज बड़े अच्छे २ ढग से आपको पकड़ा है, अभी तक खूब चुरा-चुराकर माखन खाया, इसी छींके पर लपक गये थे ?" ऐमा कहकर नूपुरों की आवाज किये बिना ही गोपी ने अचानक दरवाजा रोक लिया। बोली—"दूध दही पीकर मथनिया फोड़कर अब तुम कैसे भागोगे ? श्यामसुन्दर ! भले फँसे हो ?"

यह कहकर वह पकड़ना ही चाहती थी कि—गिरिधर ने दूध का कुल्ला उसकी आँखो पर फूकरके छोड दिया, गोपी के सँभलने के पहिले ही वे कीक देकर भाग गए।

१३०

"ओ हो ? तुम तो बचपन से ही चोरी सीख गए हो ? माखन दूध खाना-पीना छोड़कर अब तो बासन फोड़ने लगे।

लाल ! तुमने हमारा सर्वस्व तो चुरा लिया और अब उलटी हमसे ही रार बढ़ाते हो ? "

ऐसा उलहना सुनकर भी गोवर्धन–धर उस गोपी के ही संग लगे फिरते हैं ।

१३१

" अरी ! कोई हरि की चपलता से बुरा मत मानना ? बालकों के साथ नाचते नाचते आना और घर–घर का दही खाना तो उसका रोज का काम है । प्राण न्यौछावर करके भी नद महर का वह ढोटा मिलै तो भी क्या कहना ? यही गोवर्द्धन–धर तो राधिका का प्रीतम है " ।

क्रीडा—

१३२

कृष्ण कन्हैया चमचम करते आंगन में खेल रहे हैं । नीचे पड़रही अपनी प्रतिबिम्ब–मूर्ति पकड़ने के लिये किलक कर दौड़ते हैं । किन्तु जब वह हाथ नहीं आती तब थककर वहीं लौट आते हैं । प्रभु की बाल–सुलभ लीला को देखकर माता यशोदा हँसती और मन्द मुसकाती हैं ।

१३३

"सखी ! कुंज में जाकर अब गोपाल को मेरे पास बुलालाओ । खेलते २ उसे बहुत देर हो गई उसे साथ लिये बिना तू मत आना ? देख मैं उसी तरफ देख रही हूं । अब जाकर गिरिधर को ले आवो उसे फिर न जाने दूगी " ।

१३४

"लाल प्यारे ! आज बड़ी देर से आए ? कबकी तेरी बाट देख रही हूं ? अब मैं तुझे बाहिर नहीं जाने दूंगी । तुझे देखकर

मेरा हृदय शीतल होता है। घर में ही बहुत से खिलौना हैं- बाहिर न जाने का धरा है? अभी एक गोपी उराहना देगई है"।

माता के इस कथन पर "मैंने किसीका दही नहीं चुराया" यों कहकर भी गिरिधर अपनी मन-मानी ही लीला करते फिरते हैं।

१३५

"अरी? माई! कन्हैया तो देखने में ही छोटा है। उसने कालिय नाग को नाथ कर यमुना-जल को निर्विष कर दिया। उसका शरीर कमल से भी कोमल है—फिर भी गोवर्द्धन धारणकर बूड़ते व्रज को बचाकर इन्द्र का मान मटिया-मेट कर दिया। यशोदा! तेरा पुत्र तो कोई बड़ा देव है? वह भक्तों का जीवन और हम सभी का सर्वस्व प्राण है"।

व्रजभक्त-प्रार्थना—

१३६

"तुम भली भांति गाय-दुह जानते हो। नंदनंदन! रसिकवर! चलो, मै तुम्हारे पांव पड़ती हू। तुम्हें आता हुआ देखकर मैया ने सोने की दोहिनी देकर मुझे भेजा है। यहीं पास में खरिक है-दूर नहीं जाना पडेगा? नागर! मैं तुम्हारी बलैयाँ लेती हूँ"।

यह सुनकर गोवर्द्धनधारी उस गोपी की सुन्दरता पर मुग्ध हो गए, और मन से उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

१३७

"कन्हैया! तेरी सौगन्ध है-मैं अवश्य आऊंगी-अब जाने दो। श्याम! सांझ को समय मिलते ही बछड़ों को छोड़ने के लिये निश्चित आऊंगी। जो-मेरे यहां लोगों की आवजाव नहीं होगी, तो मैं तुम्हें अवश्य बुलाऊंगी। देखो-संकेत के लिये

बालबच्चों को झूला झुलाने के लिए मैं ऊंचे स्वर से गाऊंगी। अभी देर हो जायगी, घर के लोगों से क्या कहूंगी ? प्रभु गोवर्धनधर ! उसी समय मै तुम्हारे कृपा-रस का पान करूंगी"।

१३८

"कान्ह ! हमारी गैंया दुह दो। सात भाइयों में लाडिला समझकर मेरी माता ने मुझे तुम्हें बुलाने भेजा है। तुम बड़े उपकारी और संकर्षण के भैया हो। नंदनंदन ! तुम हाथ में कनुक-दोहिनी ले लो। मै बलैयां लेती हूं। यद्यपि तुम्हारे गोधन ज्यादा है, दूध-दही, घैया खूब होती है पर गोवर्द्धनधारी ! थोडी-सी कृपा करो"।

परस्पर हास्य-वाक्य—

१३९

"गोपाल! तुम्हारे संग अब कौन खेले? मोहन ! रहनेदो। तुमने मेरी मोतियों की लर तोड़ डाली। बांह मरोड़ कर पकड़ लेना ही तुम्हें अच्छा लगता है ? मेरी चुड़ियां फूट गईं, अब मै घर जाकर क्या कहूंगी" ?

"तू रिस क्यों करती है ? ला मैं फिरसे उन्हें जोड दूं—" प्रभु की इस बात को सुनकर वह गोपी मुख मोड़कर मुसकाती हुई चली गई।

१४०

"अरी ग्वालिनी ! तूने मेरी गेंद चुराली है। वस्त्र में छिपाकर तू चुपचाप सोगई ?" कृष्ण के इस विनोद को सुनकर गोपी बोली- अरे ! गोपाल ? इतना झूठ मत बोला करो, मैने कब तुम्हारी गेंद ली है-देखो पराये अंग को हाथ लगाना ठीक नहीं है ?

मुरली-हरण—

१४१

उनींदे नंदनंदन के अंक से चतुर सुंदरी श्रीराधा मुरली चुरा रही है। बजते हुए नूपुरों को बंद करके धीरे-धीरे चरण रखती है। कंकण, किंकिणी आदि आभूषणों को हाथों से संभाल कर चलती है। गिरिधर के निमीलित नेत्रों को देखकर मंद हास्य करती हैं "प्रभु जाग न पड़ें, मुझे देख न लें" ऐसा सोचकर कौतुक करती डरती जाती है।

१४२

चतुर राधिका ने नंदकुमार गिरिधर के अंक से अचानक मुरली निकाल ली, पर उनको पता ही न चला। उस व्रज-सुंदरी ने बड़े यत्न से नूपुर और कंकणों की झनकार बंद कर ली, और वह मंद मुसकाती हुई मुरली लेकर धीरे-धीरे खिसक गई।

१४३

नव नागरी राधा ने निकुंज की ओर से निकलकर चतुराई से मोहन की मुरली चुराकर कहीं छिपा दी। मृदु मुसकान करके उन्होंने जो रसभरी बात कही उसे मुख से कहा नहीं जा सकता। गोवर्द्धनधर ने आज ही श्रीराधा की नवीन प्रीति का अनुभव किया है।

प्रभु-स्वरूप वर्णन—

१४४

"सखि! श्याम सुन्दर के नेत्र सुन्दरता की सीमा हैं। वे अति स्वच्छ, चंचल अनियारे और सहज ही काम को लज्जित करते हैं। कमल, मीन, मृग और खंजन अपनी विशेषता पर गर्व करते थे, पर इन नेत्रों में सभी गुण देखकर वे इनके दास हो गए,

उन्होंने सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। स्वानन्द में मग्न होकर गोवर्द्धनधर युगल लोचन से जब कुछ गूढ भाव प्रगट करते हैं तब सहज ही व्रज-युवतियों का मन खो जाता है"।

१४५

"आली! हरि के मुख के समान उनके सभी अंग मोहक हैं। हस्त और कपोलों की सुषमा लोचन भर-भर कर देखो। सौन्दर्य-सिन्धु अतिशय विस्तृत होकर कहीं मर्यादा न छोड़ दे? इस रूप-सिन्धु में रमणियों के नैन तरते-तरते थक गए, इसका पार ही नहीं पाते। शरद के कमल और चंद्र की उपमा देने का तो विचार ही नहीं उठता। लाल गिरिधर का तो रूप ही अद्भुत और सलोना है"।

१४६

"अरी! श्याम के तन की शोभा तो देखो? नंद-नंदन ने नवीन मेघ की सभी कान्ति छीन ली है। तडित के समान पीत वस्त्र, इन्द्र-धनुष के समान रंगवाली वनमाला है? वक्षःस्थल पर मोतियों का हार आकाश में उड़ती बक-पंक्ति से क्या कम है? रात्रि-दिन सौन्दर्य बारि बरसा कर यह मन की परिधि को सींचते रहते हैं। यही गोवर्द्धनधर व्रज-जनों के जीवन है"।

१४७

"सौन्दर्य की सीमा नंद-नंदन के मुख की आभा देखो। सखी! वे अपने लोचनों से सहज ही मन हरलेते हैं। उन नेत्रों का स्वरूप-श्याम, श्वेत, अत्यन्त स्वच्छ और चितवन कुटिल है। ऐसा लगता है मानों शरद-कमल पर दो खंजन बैठे लड़ रहे हों। श्याम अलकावलि मधुप-पंक्ति-सी लगती है। अंग-अंग की शोभा का क्या कहना? सौन्दर्य देखकर साक्षात् मन्मथ भी चरणों

में लोट जाता है। गिरिधर श्याम की शोभा-माधुरी, त्रिलोक की युवतियों को सहज ही वश कर लेती है"।

१४८

"हरि के मुख कमल का सौन्दर्य वर्णनातीत है। नख-शिख अंग के लावण्य को सोचते २ विधाता भी थक गया। यह पूर्ण शरद्-चन्द्र, विकसित सरोज आदि सभी की शोभा हरलेता है। लाल गोवर्धनधारी वास्तव में सौन्दर्य की सीमा ही हैं"।

१४९

"हरि के लोचनों की कोई उपमा ही नहीं है। खंजन और मीन चंचलता में प्रसिद्ध है पर ऐसों की गिनती ही क्या है? राजीव, कोकनद, इंदीवर आदि जितने भी जलज हैं-वे सब सौन्दर्य को देखकर फीके हो जाते हैं। गिरिवरधर के लोचन बड़े सुढंग और रमणीय लगते हैं"।

१५०

"रंगीले, छबीले, रसभरे श्याम के नयन मुदित होकर चंचल हो रहे हैं। मत्त खंजन के समान ये दोनों किसी प्रकार वश में नहीं आते इनमें श्यामता, श्वेतता और ललाई झलकती हैं, चित्र-लिखित-से जान पड़ते हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर के सुन्दर शरीर में ये कैसे सुन्दर लगते हैं"।

१५१

"क्षण-क्षण प्रभु की शोभा विलक्षण ही प्रतीत होती है। अरी सहचरी! जब देखो तभी यह नई दीखती है। इस पर दृष्टि ठहरती ही नहीं है। मैंने मन में बहुत विचारा पर इसकी कोई जोड़ी दीखी नहीं। गिरिवरधर तो सौभाग्य-सीमा और सिर-मौर हैं।"

१५२

"अरी माई! शरद्–सरोवर रूप शरीर में कमल मुख कैसा विकसित हो रहा है, उस पर मत्त खंजन जैसे युगल लोचन चंचलता दिखाकर आपस में लड़–से रहे हैं, चिकने और संवारे हुए केश मधुप–समूह सरीखे मंडरा रहे हैं"। इस प्रकार गिरिधरलाल युवतियों को स्वरूपानन्द का दान करते हैं।

१५३

"कालिन्दी के तीर प्रातः गेंद खेलते आते हुए आनंद–कंद कृष्ण को देखा। उनके चरणों में नूपुर, कटि में पीत बसन, लाल उपरेना और मस्तक पर मयूर–चन्द्रिका शोभित है। गोवर्धन–धर ब्रज–सीमन्तिनियों से हास्य विनोद कर अपनी चारु चितवन से उनके हृदय के आवरण को दूर करते जाते हैं"।

१५४

जमुना के तट पर खड़े हुए मदनगोपाल वेणु बजा रहे हैं। श्रीमस्तक पर टिपारा, कटि में लाल काछिनी, पीला उपरेना और वक्षस्थल पर वनमाला शोभित है। श्रीहस्त में लीला–कमल फिराते हुए कल गीत की तान लेकर प्रभु गोवर्धन–धर त्रिभुवन को मोहित कर लेते हैं।

१५५

"आली! कालिन्दी के तीर पर मैंने मदनगोपाल को देखा! कसुंभी पाग पीला उपरेना, और वक्षस्थल पर गज–मुक्तामाला लुठित हो रही थी। अंग २ का सरस रूप देखते ही मन मुग्ध हो जाता है"। इस प्रकार गोवर्धनधर लाल त्रिभुवन को मोहित कर लेते हैं।

१५६

श्याम के मृदुल अंग पर महीन लाल रंग की परधनी शोभित हो रही है। पतली कटि में परधनी के ऊपर मोतियों की किंकिणी अधिक छवि बढ़ा देती है। प्रभु के मस्तक पर उज्ज्वल पाग और अलकावली मधुकर-पंक्ति-सी लगती है। प्रभु गोवर्द्धन-धर चंचल नयनों से व्रज-युवतियों को वश करलेते हैं।

१५७

सखी! तू देख! मदनगोपाल आज नव निकुंज में ठाढ़े हैं। वे परम रसिक, रूप की निधि सुन्दर श्यामलवर्ण और आनंद के पुंज हैं। उनके कमल सदृश आयत लोचनों की चंचल और सरस चितवन कैसी प्यारी लगती है? मंद मुसकान और मुख-शोभा पर कोटि कामदेव निछावर किये जा सकते है। उन्नत वक्षस्थल पर माला, हंस और गज की चाल, मधुर हास्य इन सब से सम्पन्न गिरिधर का सौन्दर्य हृदयारूढ कर 'कुंभनदास' प्रभु के सुयश का गान करता हैं।'

श्रीस्वामिनी-स्वरूप वर्णन—

१५८

आली! तेरे लोचन चंचल हैं और उनकी कनीनिकाऐं (तारा) भी बड़ी बड़ी हैं। हरि के वदन-चंद्र को देखकर वे घूंघट के भीतर नहीं समाते। वे प्रतिक्षण खुले-से ही रहते हैं। दोनों कान आगे आकर उनका मार्ग न रोकते तो वे न जाने कहां तक बढ़ते चले आते? गिरिधर रसिक की कृपा-रस से सिंचित होकर यह अतिशय बड़रारे हो रहे हैं।

१५९

कुँवरि राधिके! तू समस्त सौभाग्य की सीमा है। तेरे बदन पर शत-कोटि चन्द्र, नयनों के ऊपर खंजन, कुरंग निछावर

करते हुए मन में कोई झिझक नहीं होती। जंघाओं पर शत–कोटि कदली वृक्ष, कटि पर सिंह, मन्द गति पर मत्त गजराज और पुष्ट वक्षःस्थल पर कुम्भों को वारा जा सकता है। नासिका के लिये शत–कोटि शुक, दन्त के लिये कुन्दकली, और अधरों को देखकर पके हुए किंदुक फलों को न्योछावर कर उनके गर्व का भंग किया जा सकता है। काली सटकारी वेणी पर शत–कोटि नागिनें और ग्रीवा पर कपोत, कर–युगल के सामने करोड़ों कमल कुछ काम के नहीं है, लोक में समानता की कोई उपमा ही नहीं है।

स्वामिनी के नख–शिख सौन्दर्य का कहाँ तक वर्णन करें। गिरिधरलाल तो यही कहते हैं कि–क्षण २ में राधिका का मुख देखकर ही तो आनन्द मग्न रहता हूं।

१६०

"सखि! तेरे रूप की निकाई कहां तक कही जाय? तेरा नख–शिख अंग–प्रत्यंग विधाता ने रचपच कर अद्भुत ढंग से गिरिधरलाल के लिये बनाया है। चाल के लिये मत्त हंस, जंघा के लिये कदली–खम्भ और कटि के लिये सिंह की उपमा है, तेरा गौर तनु सौभाग्य की पराकाष्ठा है। श्रीफल के सदृश उरोज, केकीशिखा–सदृश केश–कलाप, पिक–सम बचन और कपोत के समान ग्रीवा मन को मुग्ध कर लेती है चंचल लोचनों ने कमलों को श्रीहत कर दिया है। चिबुक पर श्याम तिल से और रत्नजडित कर्णफूल की झलमलाहट से कपोलों की आभा दुगुनी हो उठती है। अधर बिम्बाफल, और दन्त–अवली कुन्दकली, सुभग नासापुट तिल–कुसुम के समान कमनीय है। तेरे मुख को देख चन्द्रोदय समझकर कोक–दम्पति दुःखित होकर बिछुड़ जाते हैं।

सभी अंग शोभा का समुद्र हो रहा है, इस सौन्दर्य का पार

नहीं आ सकता। इस प्रकार प्रमुदित होकर सहचरी श्रीस्वामिनी-जीके सौन्दर्य का बखान कररही है।

१६१

सखि ! तेरे तन की सुन्दरता अंग-प्रत्यंग की शोभा देख कर रचयिता ब्रह्मा भी चकित हो गया, तेरी चलन मन्थर, कटि क्षीण और वक्ष परिपुष्ट होने से अनुपम है। पल २ में विलक्षण छबि और उज्वलता दीख पडती है। बहुत विचारने पर भी इसकी इयत्ता का भान नहीं होता। इस परम शोभा के कारण ही गोवर्धन-धारी तेरे वश में हो गये हैं।

१६२

राधिके ! तेरी रूप-रचना में विधाता की एक भी चतुराई बाकी न बची। उसने सभी का सार-सार लेकर तेरा तन सजाया-संवारा है। कर चरण-युगल में कमलों का, जंघा में कदली का, गति में मत्त गजेन्द्र और हंस का, ग्रीवा में कपोत का, उरज में श्रीफल का, कटि में केसरी का और भुज-युगल में मृणाल का सौष्ठव लाकर संचित किया है। मुख में चंद्र, अधर में बिंवाफल, विद्रुम और बंधूक (जपा कुसुम) का सौन्दर्य है तो नासिका के लिये तिलप्रसून और शुक की अनुहार है। नयन-युगल के लिये खंजन, मीन और कुरंग को विशेषताओं का उपयोग किया है। हीरा के समान चमचमाती दशनावली विद्युल्लता सी मुसक्यान, कुंदकली-से दांत क्या कम रमणीय हैं? दिव्य संतप्त सुवर्ण के समान देह-कान्ति पिक-मयूर से मधुर बोल और अलि-अवली के सदृश अलकावली है, इन सभी अद्भुत उपकरणों को लेकर प्रजापति ने तुम्हारे अंग-प्रत्यंग प्रभु गिरिवरधरण के लिये बड़ी सावधानी से बनाकर तयार किये हैं।

सभी मन मुग्ध करते हैं। तूने एकटक चितवन की छबि से प्रभु गोवर्धनधर को मोहित करलिया है।

१६७

प्रिय सखी ! तू सरोवर पर मत जाया कर। तेरे मुखचन्द्र को देखकर चकवी अपने प्रिय-संयोग-सुख को छोडकर बिछुड़ जाती है। चन्द्रोदय-सा समझकर कमल सकुचित हो जाते है, बेचारे भ्रमर व्याकुल हो उठते है। तेरे इस सहज स्वभाव के कारण दूसरे बिचारे विना अपराध ही दुखी होते हैं। इसे किसका अपराध गिनें ? विधाता ने तेरे मुख को एक अद्भुत चन्द्रमा-सा बनाया है-जिसे देख गिरिधर नागर अतिशय प्रमुदित होते हैं।

१६८

भामिनी ! सोच विचारके वाद भी यह निश्चित नहीं हुआ कि तेरे तन की उपमा के लिये योग्य क्या है ? कंचन, कदली, केसरी, करीन्द्र, कपोत और कुम्भ, कोकिल यह सब इनके सन्मुख कुछ भी नहीं है। सुधानिधि और सौदामिनी भी निरर्थक-से हैं। कुरंग, कीर, बंधूक-कुसुम, केकी और कमल सभी इसके आगे फीके हो जाते हैं। इन सभी में एक न एक दोष तो है ही। स्वामिनी राधे ! परम रसिक मोहन तुझे इसीलिये 'परम भांवती' कहकर सम्बोधित करते हैं।

१६९

आली ! तेरे वदन पर चपल नयन; कमल पर किलोल करते हुए दो खंजन-से रमणीक लगरहे हैं। यह कुंचित श्याम, चिकने केश ऐसे लगते हैं मानों रसलोलुप भंवर मंडरा रहे हों। तेरे अंग-प्रत्यंग की चारु सुषुमा को कहां तक कहा जाय ? मृदुल गोल कपोल पर झलमलाती हुई ताटंक की शोभा

प्रभु गोवर्धनधारी के हृदय में अकथनीय रस की वृद्धि कर देती है।

१७०

तेरे नेत्रों की सीमा नहीं है ? मन की सच बात तो यह है कि–अब मैं दृष्टि नहीं चुराऊंगी–अपलक तुझे देखती ही रहूंगी। तेरे कटाक्ष को देख कर कमल, मीन, मृग सभी अपने आपको भुला बैठे है। तेरा भ्रकुटि–विलास सचमुच गिरिधर को रिझानेवाला है।

युगल–स्वरूप वर्णन—

१७१

राधिका गिरिवरधर की जोड़ी बहुत ही अभिराम है। ऐसा लगता है कि–दोनों ने कोटि मन्मथ और रति की सुन्दरता को छीन लिया हो। श्यामसुन्दर भी नूतन वय है और वृषभानु–सुता भी नवल गौरी हैं। रसिकवर श्याम और रसिकनी राधा परस्पर मुख–निरीक्षण नहीं कर रहे है मानों–तृषित चकोरी इन्दु का सुधापान कररही है। युगल मूर्ति में अवर्णनीय प्रीति की वृद्धि हो रही है।

१७२

रसिकनी श्रीराधा सदा रस में ही गड़ी रहती है। यह वृषभानु–नंदिनी सोनजुही की लता–जैसी श्याम तमाल का अवलम्ब लेकर बढ़ी है। प्रियतम के संग विहार करने में उसने दक्षता कहां पाई कहा नहीं जा सकता ? उसने गिरिधर के संग ही क्रीडा–करने का अभ्यास किया है–ऐसा ज्ञात होता है।

छाक–[वनभोजन]—

१७३

सुबल सखा गोवर्द्धन पर चढ़ कर बुला रहा है कि–

"ओरी ! छकहारियो ! छाक जल्दी लेकर आवो, गिरिधर तुम्हारे आने की बाट जोह रहे हैं" ।

वन में विलम्ब हो जाने से जब भूख लगी और उपरेना फेरकर सूचना दी, उसी समय छकहारी भी वहां पहुंची-और उसने प्रभु को प्रसन्न किया।

१७४

" बिहारीलाल! आवो ! सलोनी छाक आ गई है। चन्द्रावली ने इस पोटली में कुछ बांधकर भेजा है-इन दो तीन दोनियों में भी स्वादिष्ट वस्तुएँ हैं"

इस प्रकार ऊंचे हाथ हिलाकर सखी श्याम को बुलाती, छाक लेकर उनके आगे पहुंच जाती है, और गिरिधर को अनेक प्रकार से रिझाती है ।

१७५

बन में घर-घर से खट्टे मीठे सलोने सभी प्रकार के पक्वान्नों की छाक आई है। यमुना-तट पर लता-मण्डप में मंडली बनाकर गोप ग्वाल सभी मिलकर जेंम रहे हैं, और स्वाद की सराहना करते जाते हैं। बलदाऊ और मोहन हाथों में दोना ले-लेकर सभी को बांटते जाते हैं-स्वयं आप भी सखाओं की तरफ देख २ कर चखते है और गोपियों के मन को मोह लेते हैं। टेटी, शाक, संधाना, रोटी और गोरस तथा महेरी का स्वाद ले-लेकर रस-लंपट गिरिधर खाते और नाचते जाते हैं ।

१७६

" अरे ! श्यामढाक की गहरी छाया में बैठे तुम सब देर क्यों कर रहे हो ? देखो मैं छाक लेकर आ गई । इधर देखो उमड़-घुमड़ कर चारों ओर से घटा उठ आई है और तुम सब निधड़क घूम-फिर रहे हो।"

इस प्रकार छकहारी ने हा हा! कह-कहकर बड़ी कठिनाई से सबको बुलाया और पंगति में बैठाकर कहा- "अर्जुन! तुम सबको पनवारे डाल दो।" यह सुनकर गोवर्द्धनधरण लाल सब को छाक बांटकर स्वयं आरोगने लगे और सखाओं को भी भोजन की आज्ञा दी।

१७७

ज्योंही गोपी बन में छाक लेकर चली मेघ-गर्जना के साथ रिम-झिम बरसा से सहमा अटक गई, पगडंड़ी भूल गई और कहीं और जा निकली। बडी देर तक भटकती रही तब जाकर कहीं गैल मिली। तन और व्यंजनों के भींज जाने के डर से ढाक की सघन छाया में भूमि पर वह छाक का डला रख ही रही थी कि- गोवर्द्धनधर की कूक सुनते ही उसे पत्तों से ढ़ककर चुपचाप सटक गई।

१७८

रिम-झिम वरषा में भींजे बस्त्र पहिरें ग्वालनी को देखकर मोहन रीझकर बोले— "अरी! वस्त्र पलट ले, मैं तुझे पीताम्बर दिये देता हूं-छाक सब को बांटकर शीघ्र घर लौट जा, देखती नहीं बरषा चढ़ी आ रही है। सभी भूख से अकुला रहे हैं- खीझ रहे हैं। तुझे देखकर भटू! सभी के दुःख दूर हो गए"।

कुंभनदास कहते है कि— गोपी! छाक की तलाश में गोवर्द्धनधर कहीं और जारहे थे, भाग्य से वे तुझे निकट में ही मिल गए।

१७९

भोजन में रोकते-रोकते सब थक गये पर एक दूसरे की पत्तल में जूठे पकवान डालने से कोई नहीं चूका। इस प्रकार

हँसी-खुशी में हरि ने और ग्वालबालों ने खूब भोजन किया। तृप्त होकर सभीने आचमन लेकर यमुना-जल का पान किया। सुबल, तोष, मधुमंगल और अर्जुन, भोज, सुबाहु, श्रीदामा आदि सखाओं को श्रीहरि ने बीड़ा बांटे। इस प्रकार गोवर्द्धनधरण वरषा ऋतु की रिमझिम में भोजन कर परम प्रसन्न होते हैं।

१८०

आज हरि ने बन में भोजन करते हुए बड़ा आनन्द दिया। मेह—बरसना अच्छा लगता था और भोजन में रुचि बढ़ती थी। सुबल सखा को बिखरी हुई गायों को इकठ्ठा करने के लिये भेजकर प्रभु गोवर्धनधर ने छकहारी की छाक लेकर कृपारस की वृष्टि कर उसे कृतार्थ किया।

१८१

"लाल! देखो तो सभी बन में हरियाली छा गई है—चारों ओर कैसा सुहावना लगता है? भोजन का यही सुरम्य स्थान है। क्या क्या पक्वान्न आए हैं? देखो तो। इस सघन कुंज में बरसात का डर नहीं।" यह सुनकर गोपाललाल ने ग्वालों से कहा कि—हां यहीं ठीक है। इस प्रकार नन्ददुलारे गिरिधरलाल सखा-मण्डली के मध्य सुशोमित हो रहे हैं।

१८२

मंडली बनाकर मोहन छाक आरोग रहे ह। जैसे घन की गर्जना होती है—उसी प्रकार लेह्य चोष्य पेय वस्तुओं के सपोडने का शब्द होता है। वर्षा के कारण कभी बूंदे कभी फुहियाँ झड़ने लगती है, पवन का झोंका लगते ही ग्वालबाल हाथों में कौर ले—लेकर मुंह में जल्दी २ रखने लगते हैं। बिखरी हुई गायों और बछड़ों को दौड़ कर घेरते हुए गिरिधर श्याम को देखकर प्रेममग्न कुंभनदास तृण तोड़कर उनकी बलैंया लेता है।

भोजन—

१८३

"मोहन तिवारी में बिराजे भोजनकर रहे हैं, अरी! अभी वहां मत जा, कईबार तुझे बरजा पर सिंहपोरी तक जाकर तू बार–बार लौट आती है"। इसी समय रोहिणी बाहिर आई और मुंह पर आंचल लगाकर हँसती हुई बोली "अरी! तुम बड़ी मद्‌माती हो, श्याम को देखने को बड़ी उतावली हो रही हो? कोई गरजती हो, कोई लरजती हो, कोई ताली बजाती हो। प्रभु गोवर्धनधर अभी–अभी तो थाली पर बिराजे हैं। थोड़ा भोजन तो कर लेने दो?"

१८४

"आज मोहन हमारे घर भोजन करें ब्रजरानी! ऐसी कृपा करो–उन्हें भेज देना घर दूर नहीं है। मैंने सब तयारी लगा ली है। हमने बड़े प्रेम से खट्टे–मीठे अनेक प्रकार के पक्वान्न बनाये है, जो श्यामसुन्दर को अच्छे लगते हैं"।

इस प्रकार की प्रेम प्रार्थना सुनकर रोहिणी ने जसोदा से कहा कि—आपने इसकी प्रेमभरी वाणी सुनी? यशोदा मन ही मन रहस्य समझकर मुसकाने लगीं। उन्होंने बलदाउ को और सखाओं को बुलाकर मिस बनाकर अलग भेज दिया। प्रभु गोवर्धन ने गोपियों के घर पधारकर उनका मनोरथ पूर्ण किया।

आवनी—

१८५

"अरी! बन से मदनगोपाल की आवनी तो देख? इनकी चाल देखकर मत्त ऐरावत भी लज्जित हो जाता है। श्यामल शरीर, कटि में पीत बसन और वक्षःस्थल पर वनमाला मन को हरलेती है। भौंह–रूपी धनुष पर तीखे लोचनों की चितवन कामदेव के

बाण समान हृदय में बिंध जाती है। गोरज-मण्डित अलक और भाल पर कस्तूरी-तिलक रमणीय लगता है। नंद-कुवर गोवर्द्धनधर का सुन्दर हास्य जगत को मुग्ध कर लेता है"।

१८६

"देखो देखो ! धेनुओं को साथ लेकर हरि बन से चले आ रहे हैं। ऐसा विदित होता है कि—संध्या समय पूर्व में पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो। वृन्दावन-रूपी गगन में बालकवृन्द-रूपी नक्षत्रों की छटा देखते ही मन चुरा लेती है"।

इस रूप-सुधा का प्रान करके नयन चकोर सरस हो जाते हैं। गिरिधर प्रभु इस प्रकार व्रजजनों को आनन्द देते रहते हैं।

१८७

बन से आते समय मोहन ने चित्त हरलिया। सखी ! मै सायंकाल अपने घर निश्चिन्त बैठी थी कि-उनका दर्शन करते ही मुझे अपने वस्त्रों तक की सँभाल नहीं रही। श्यामसुन्दर का रूप देखकर धैर्य जाता रहा। प्रभु गोवर्धन-धर अंग-प्रत्यंग में प्रेम-सुधा से भरपूर हैं।

१८८

एरी ! सखी ! श्यामसुन्दर श्रीमस्तक पर लपेटा फेंटा धारण किये हैं। उस पर सोने की जरकशी कीहुई चंद्रिका शोभित है। तिरछी मोतियों की लड अलकावली पर लटक रही है। गोचारण से मुखारविन्द पर लगी गोरज औरभी कमनीय लगती है। इस प्रकार बन से बनठन कर आते हुए बनवारी गिरिधारी को व्रज-युवतियाँ निहारती हैं, और छबि पर तन-मन-धन न्यौछावर करती हैं।

१८९

सभी गाएँ गोवर्धन से चरकर लौट आई हैं। श्रीनंद-नंदन

बछड़ा चरारहे थे, उन्होंने वेणु बजाकर ज्योंही उन्हें बुलाया गोपबालकों के घेरे वे घिर न सकीं, और आतुर होकर दौड़ीं। मदनमोहन पर वात्सल्य उमड़ आने से उनके एनों से दूध की नदी-सी बह चली। व्रजराजकुंवर के सौन्दर्य को देखकर उनकी ऑखे शीतल हो गई। वे प्रभु के चारों ओर चित्रलिखी-सी आकर खड़ी हो गई,

१९०

अरे? गायों को जल्दी ही घेर लो। वे खादर में इधर उधर फैल रहीं है, उन्हें मुरली सुनाकर बुला लो। इन्होने जमुना में चार अंजुली भी पानी नहीं पिया-वे तृप्त हो गई। हुलकती हुंकारती बछड़ों की सुधिकर वे खिरक की ओर दौड़ पडी हैं। और भी जो-इधर उधर हों उन्हें घेर लो। अब दुहने का समय हो गया है चलो घर चलें।

१९१

गोपाल के वदन पर आरती उतारूं। चित्त की सुंदर बाती बनाऊं और अनेक युक्तियों के घी और कपूर मिलाकर उसे संजोऊं। आरती के समय ताल, डफ, शंख, मृदंग, झांझ, घंटा आदि वाद्यों की सुन्दर ध्वनि करूं। जिव्हा से सरस यश गाकर अपने हाथों उन पर चंवर ढुलाऊं। कोटि-कोटि सूर्य के समान दमकते अंग-प्रत्यंग का दर्शन कर सभी लोकों का अन्धकार दूर करूं। इस प्रकार लाल गिरिधर के रूप को अपने नेत्रों से भर-भरकर देखूं।

आसक्ति-वर्णन—

१९२

नागरी! तू नंद-भवन आने के लिये कितने उपाय ढूंढ निकालती है? और वृथा की कितनी बातें बनाया करती है।

प्रातःकाल से लेकर सांझ तक तू अवसर ही देखा करती है, तू बड़ी चतुर है, टोकने पर तत्काल उत्तर दे देती है। तुझे अपने घर एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता? रोकने पर भी तू नहीं मानती? मुझे जान पड़ता है कि—लाल गिरिधर से तेरा मन लगगया है।

१९३

अरी? तू तो नैन की सैन से ही सब बातें कह देती है। ऐसा मालुम पडता है इनके भीतर बहुत-सी रसनाएं और चालें भरी हुई हैं। व्रजसुन्दरि! हम से इतना छल कपट क्यों? मेरी विनतियों पर तूने थोड़ा भी ध्यान नहीं दिया। ये तेरे नेत्र बड़े चपल दूत है-बड़ी २ युक्तियाँ ढूंढ लेते हैं। तेरे मन में जैसी तरंग उठती है तू उसकी युक्ति भी निकाल लेती है? सदा श्याम सुन्दर की घात लगाए रहती है। अपने सभी मनोरथ पूरेकर हृदय को सन्तुष्ट कर लेती है। यह निश्चय है कि-गिरिधरलाल के चित्त में दिन-रात तू बसी रहती है।

१९४

'तू नंदराई के घर क्यों आती जाती है- ये तेरा भेद क्या मुझे नहीं मालुम है? अरी ग्वालिनी! यह तो बता तेरी जाति क्या है? सांझ-सवेरे तुझे यहीं देखती हू-तुझे रात कैसे कटती होगी? घर के कामधंधे तूने सभी छोड़ दिये, घर के स्वामी से भी तुझे संकोच नहीं आता? सच है-तेरा मन मदनगोपाल से उरझ गया है, इससे तुझे घर में चैन नहीं पड़ता। नयनों से लाल गिरिधर के रूप का पान करती तू अघाती नहीं है?

१९५

सखी! श्याम-स्वरूप के निहारते ही तेरे नयन इकटक ही रह गये। नागरी! तू ठिठक कर रह क्यों गई, एक डग भी न चल

सकी ? तब तू एसी लगी मानों--चित्र में चित्रित कर दी हो। तेरे सिर बड़ी कठिन मोहिनी पड़ गई है, चेताए बिना कब, किसी की शंका मानती है ? लाल गोवर्द्धनधर ने सचमुच ही तेरे तन, मन दोनों चुरा लिये हैं।

१९६

तूने ज्योंही स्मित हास्य किया – तू गोपाल के मन में समागई। मदनगोपाल तुझ मृगनयनी को देखते ही रीझ गये। उनके हृदय में तू जा बसी।

किशोरी ! तेरी गज सरीखी चाल, सूक्ष्म कटि, कसी हुई कंचुकी, हेम–सा वर्ण, और शरदचन्द्र–सा मोहक तेरा मुख है। सघन निकुंज में तुझे बुलाते हुए व्रजनायक चले गए।

यह सच है कि–ऐसी कौनसी स्त्री है ? जो–गिरिधर के मुख कमल को देखते ही आर्य–पथ से विचलित न हो जाय ?

१९७

मोहन ने कुछ मोहिनी विद्या–सी कर दी है ? तभी तुझ से मिले विना रहा नहीं जाता। वास्तव में नई प्रीति बड़ी कठिन होती है। अरी ! मृगलोचनी ! जब से तू नंद–नंदन के साथ खेली तभी से तुझे घर–बार नहीं सुहाता, अकेली बन-बन में डोलती फिरती है। रातदिन तेरे प्राण वहीं अटके रहते हैं, वन निकुंज की द्रुमबल्लरी–सभो तू ढूंढती फिरती है। तू निश्चित ही गिरिधर की प्रीति मे अटक कर कुल–मर्यादा को भी छोड़ बैठी है ?

१९८

सखी ! जब से मोहन से आँखें चार हुई–तभी से मैं ठगी–सी खडी रह गई, अंचल संभलना भी भूल गई। सहज ही नंद–घर आई थी कि सहसा श्यामसुंदर दीख

पड़े, बस टकटकी लग गई, पैरों ने आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। प्रयत्न करने पर भी चित्त टस-से-मस न हुआ। मदनमोहन के स्नेह के कारण कामकाज भी छूट गया।

कुंभनदास कहते हैं कि—गिरिधर तो प्रेम रस के लोभी हैं तूने भी आर्य-पथ को अच्छा निबाहा ?

१९९

बिना देखे तेरे नेत्रों में चटपटी लगी रहती है। अरी ! तेरे ऊपर नंदनंदन की ठगौरी तो नहीं पड़ गई है ? घर के सभी कामकाज छोड़ दिये, तुझ से एक घड़ी भी शान्त बैठा नहीं जाता ? आते-जाते किसी का डर भी नहीं लगता ? कठिन हिलग के कारण लोकलज्जा भी अब तुझे नहीं रही। प्रभु गोवर्द्धनधर ने मन चुराकर तुझे अपने वश करलिया है ?

२००

तेरे लोचनों में चटपटी-सी लगी रहती है। माई ! मैं तुझे बराबर देखती हूं तू थोड़ा पलक लगाना भी नहीं सह सकती। श्यामसुन्दर की रूपमाधुरी देखकर तुझे अंगडाई आती है। यह तो बता-तू प्रिय गिरिधर से आँखों-आँखों में क्या बात करती रहती है ?

२०१

माई ! देखो यह ग्वालिनी उलटी रई से रीती मथनियां में दही बिलोरही है। हाथों में नेत भी तो नहीं है, चंचल हाथों से योहीं माखन निकाल रही है। गिरिधर के सुंदर रूप पर इसका चित्त चिहुंट गया है-इकटक उनके मुखकमल को देख रही है। इसी अकबकी में दही तो वह भूल गई है-और दूसरा ही पात्र धोने लगी है।

२०२

सखी ! मनोहररूप यह सांवला नंद का लाला मेरे पीछे-पीछे लगा डोलता है, और तू मुझे ठपका दिया करती है ? उसे तो दूसरों के अंग-स्पर्श की लालसा रहती है, कहने पर भी नहीं मानता । सच तो यह है कि-गोवर्धनधर श्याम मुझे बहुत प्यारे लगते हैं ।

२०३

' प्रेम पूर्वक झुक-झुककर सोती हुई गोपी सुन्दरी के मुख से मुख मिलाकर श्यामसुन्दर सौन्दर्य देखते हैं । उसके जगने की शंका से ठिठक जाते हैं-फिर देखने लगते हैं । कभी आंचल पकड़कर खेचते हैं-कभी हाथ पकड़कर खेंचते हैं-कभी हाथ पकड़ कपोल-स्पर्श करलेते हैं । अपने मन की चाहना पूरी करते हैं । इस प्रेमरस में कोई अनरस मालुम नही पड़ता, हृदय का ही प्रेम प्रगट होता है । बस, गिरिधर का ध्यान ही सब में श्रेष्ठ है, और सब रस फीके हैं ।

२०४

प्रियतम श्याम बारबार वृषभानु-नंदिनी के रूप, रस, प्रेम की सराहना करते हैं । श्यामस्वरूप और गौरस्वरूप दोनों इस प्रकार मिले हैं-जैसे घन और दामिनी ।

कुंभनदास कहते है कि-प्रभु गिरिधर सौन्दर्य के कारण श्रीराधा के वश में हो गये हैं । सखियाँ दोनों का गुणगान करती हैं ।

२०५

अरी ! माई ! ज्योंही उनकी इकटक दृष्टि श्रीराधा के सुन्दर मुखचन्द्र पर पड़ी, वे गाय-दुहना भूल गये स्तब्ध रह

गए। नवल नागरी श्रीवृषभानु-कुमारी भी तो परम चतुर और लावण्यरूप हैं।

कुंभनदास कहते हैं कि- श्रीराधा की तिरछी भ्रकुटि के कुटिल कटाक्षों ने श्यामसुन्दर का मन हरलिया है।

आसक्ति-वचन

[प्रभु प्रति] २०६

अहो मोहन! तुम हृदय को परम प्रिय हो। नयनों के आगे से ओझल मत होओ। मैं जबतक जीती रहूं तबतक तुम्हें देखती रहूं। आपके पैरों पडती हूं-देखो दूसरे ठिकाने चित्त न लगा देना? मुझे तबतक चैन नहीं पडता जब तक आप अंकभर के मिल नहीं जाते। नन्दनन्दन! तुम तो परम रसिक हो। मेरे सभी दुःख मेट दो। घर आने-जाने रहने में प्रभु गोवर्द्धनधर! तुम्हें किसी से डरने की क्या आवश्यकता? तुम तो अरि-दमन हो।

२०७

लाल! तुम्हारी चितवन चित्त चुरा लेती है। नंदगाम और बरसाने के बीच में आना-जाना कठिन हो गया है। मैं मार्ग में आते-जाते डर जाती हूं। ललिता आदि सखियां और भी डरपा देती है। *

[सखी प्रति] २०८

छबीले गिरिधरलाल धौरी धेनु दुह रहे थे। उन्होने थोड़ा-सा मुडकर मुझे जो देखा तो उनका वदनकमल देख कर मैं भी अपने को भूल गई। कंकण, कुण्डलों की झलमलाहट, शरीर पर लगी चंदन की खौर, श्रीमस्तक पर पीत टिपारा

* यह पद स्पष्ट रूप में नहीं मिला।

और पीत पिछोरी से उनकी कान्ति भी दुगुनी होरही थी। सखि! क्या करूं? मुझे कल नहीं पडता, कुछ ठगौरी-सी लग गई है, अब तो श्यामसुन्दर को अंक भरकर न भेटूंगी तबतक चैन नहीं होगा।

२०९

माई! मेरे नयन आतुर हो रहे हैं-इन्हें श्यामसुन्दर के दर्शन कर लेनेदो। इन नयन चकोरों को वदनचन्द्र की किरणों का पान किये विना चैन कहां? दर्शन-बिना कितने दिन बीच में निकल गए। रोम-रोम में लालसा भर रही है। जब सुखदाता गिरिवरधरण से गले लगकर मिलूंगी तभी शान्ति हो सकती है।

२१०

अरी माई! अब मैं क्या करूं? कमलपत्र विशालनेत्र श्यामसुन्दर ने तो मेरा मन ही चुरा लिया है। बंधु-बांधव, लोक-कुटुम्ब, परिवार सभी ने मुझे कई बार समझाया-पर मैं तो मुग्ध हो गई हूं। यशोदा के घर जाए बिना रहा ही नहीं जाता। हृदय की तीव्र लगन के कारण मैने सभी लाज भुला डाली है। प्रभु गिरिवर-धारी ने मन्द मुसकान द्वारा मेरे ऊपर ऐसी ठगोरी डाली है कि-छुटकारा कठिन है।

२११

मेरे चित्त में तभी से कल नहीं पड़ती जब से उस श्याम का रूप निहारा है। अंग-अंग की शोभा का क्या कहना? आली! ऐसा लगता है मानों एक-एक अंश में कोटि कामदेव का प्रागट्य हो गया है। कन्हैया जब सुन्दर भेष धारणकर जारहे थे, उनके श्यामल अंग की छटा ने मेरा मन हरलिया, अब तो उनके विरह में एक-एक पहर कल्प के समान बीत रहा है।

२१२

नयनों से नयन मिलाकर कुछ संकेत देते हुए श्यामसुन्दर प्रीति-जोडकर वन में चले गए।

जब से नंदनंदन उसे दीख पड़े, तभी से उसे घर-आंगन काटने को दौडने लगा। मन अत्यन्त आतुर हो उठा क्षण-क्षण कल्प के सदृश्य व्यतीत होने लगा। वह मृगनयनी सज-सिंगारकर सबकी दृष्टि से बचती हुई कुंज-वन मे जाकर लाल गिरिधर से जामिली।

२१३

इस मन की लगन बड़ी कठिन है। सजनी! देखो? इसी कारण सभी लाज छोड़ देनी पड़ी। धर्म जाओ, सभी लोग हँसो, और कुल को लांच्छन लगाओ, गाली दो-पर हृदय-हितकारी से मिले बिना अब नहीं रहा जा सकता। संगीत रसिक मृग के समान रस का लोभी अपनी प्रिय वस्तु को एक क्षणभर भी छोड़ नहीं सकता-भले ही उससे अनिष्ट हो जाय? सच तो यह है-कि सहज स्नेह का मर्म तो गोवर्धनधर ही जानते हैं।

२१४

क्या करूं? वह स्वरूप मेरे हृदय से टलता ही नहीं है। नंद-कुमार के बिछोह के बाद रात-दिन में कभी नींद ही नहीं आती। उनका वह मिलन एक क्षणभर को भी नहीं भूलता। चित्त में उनके गुणों का स्मरण होते ही नयनों से आंसू ढलकने लगते हैं। कुछ अच्छा ही नही लगता, मन में तालावेली-सी मची रहती है। विरह-अनल से जली जा रही हूं। अब लाल गिरिधर के बिना कौन समाधान कर सकता है?

२१५

सुंदर साँवरे ने न जाने क्या कर दिया। नेत्रद्वार से हृदय मे घुसकर उन्होनें मन-माणिक चुरा लिया है। मार्ग मे मुझ से दही छुड़ाकर उन्होने पी लिया, मुख-चुंबन कर मन्द मुसकाते हुए उन्होने मेरा स्पर्श कर लिया। सखी! उस मधुर मिलन को स्मरण कर अब पछिताती हूं कि-मैं संग ही क्यों न चली गई? लाल गिरिधर के बिना अब मेरा जीवन भी दूभर हो गया है।

२१६

मेरी आँखों को तो अब यही टेव पड़ गई है। सखी! क्या करूं? कमल पर भँवरी के समान यह आँखें वदन पर जा अटकती हैं। ठहर-ठहरकर यह प्रियतम के मुख का पान करती हैं-एक घड़ी भर भी विरत नहीं होतीं। ज्यों-ज्यों यत्न करती हूं त्यों-त्यों और भी कठोर बनती जाती हैं। प्रेमामृत से मत्त हो कर अब तो यह रूप-समुद्र में जा डूबीं हैं। गिरिधर का मुख देखते २ सारी निधि लुट जाती है।

२१७

माई री! नागर नंदकुमार मेरी ओर देखकर हँसे। मने देखा-उनका नव मेघ जैसा श्याम वर्ण, श्रीशोभासम्पन्न मुख और दामिनी जैसी दन्तावली दमक रही थी। नयन-द्वार से वह हृदय-भवन में आकर धँस बैठे। इस प्रकार लाल गिरिधर सदा के लिये मेरे प्राणों में आकर बस गये हैं।

२१८

मेरे लोचन करमराते हैं। गिरिधरन-छबीले को देखने के लिये बहुत प्रयत्न करते रहते हैं। घनश्याम जैसे शरीर में चन्द्रवदन देखने के लिये अधिक तृषित बने रहते हैं। चकोर

और चातक की भांति इनका भी किसी और से समाधान नहीं हो सकता, ये वस में नहीं रहते।

२१९

हरि के मधुर वचनों ने मोहनी-सी करदी है। ज्योंही इस मार्ग को छोड़ने को मुझ से कहा गया, काम के बाणों से शरीर घायल हो गया। सखी! शरद्-कमल सदृश और चंचलता की सीमा इन नेत्रों के द्वारा परम सुजान श्याम ने जब से गूढ भाव का संकेत किया है, तब से कुछ भी अच्छा नही लगता, चित्त में चैन नहीं आता। मुझे तो मनोहारी गिरिधर ने अचानक ही ठग लिया है।

२२०

सजनी! मुझे मान करना आता ही नहीं है। वह चितवन, वह मधुर मद मुसकान सभी दुःखों को भुला देती हैं। पलभर उनके ओझल होते ही छटपटा जाती हूं-नेत्रों में चटपटी पड़ जाती है। प्रभु गिरिधर से तो रूस जाने पर भी बोलने को मन होता है।

२२१

सजनी! यदि मिलने की उत्कण्ठा हो तौ फिर कोई लाख बाधाएं डालै-उसके बिना कैसे रहा जा सकता है? दोनों ओर विरह व्यापता है, तभी कुछ काम बनता है। उस समय लोक-लाज, कुल-मर्यादा, इनमें से किसी की भी चित्त परवाह नहीं करता। मन में इस चोंप के लगजाने पर फिर कुछ अच्छा नहीं लगता। रसिक गिरिधरलाल को देखे बिना एक-एक पल कल्प के समान निकलता है।

२२२

माई! प्रेम तो किसी से भी न करै। वियोग मे बड़ी

कठिनाई आ पड़ती है। उस समय जीना भी असंभव-सा हो जाता है। इस प्रेम में रत्ती-रत्ती संग्रह करना और हिल-मिलने पर सर्वस्व दान करदेना पड़ता है। एक निमेष के सुख के लिये युग-समान दुःख झेलना पड़ता है। जान समझकर भी विष जल क्यों पिया जाता है, कुछ समझ में नहीं आता? गोवर्द्धनधर इस अवस्था को स्वयं जानते हैं, इसमें खेद उठाकर शरीर को छिजाना पड़ता है।

२२३

सखि! चतुर नागर नन्दकुमार ने नयनों से नयन मिलाकर मेरा मन चुरा लिया है। कमलनयन झरोखा में बैठे थे, और मैं इधर उस गली से आरही थी-श्याम की मनोहर मूर्ति आँखो में आते ही मैं काम-बाणों से आहत हो गई। आली! अब मैं वहाँ क्या मिस बनाकर जाऊं, जो उस सुजान से मिलाप हो सके? गोवर्द्धनधारी ने मुझे अचानक ही भरमा लिया है।

२२४

माई! तुम देखो? इन नेत्रों ने मेरा सर्वस्व हरकर हरि को समर्पित कर दिया है। घर के चोर को चोरी करने से कैसे रोका जाय? क्या करूं अब तो मेरा बस ही नहीं रहा। तन, मन, बुद्धि और हृदय सभी परवश हो गये। गिरिधर-बिना मेरा जीवन अब किसी प्रकार नहीं रह सकता।

२२५

अरी ललना! श्याम मनोहर बन जाते २ मेरे घर के आगे जो बात कह गये-उसे कैसे पूरा करूं? तभी से मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। प्राणपति को देखे-बिना कल नहीं पड़ती। उधर

गोवर्द्धनधर मेरा मार्ग देख रहे हैं, इधर मेरा एक पल-भर नेत्र भी नहीं लगता।

२२६

मोहन के नेत्रों ने मेरा मन मोह लिया है। भृकुटि-विलास और चपल चितवन से ऐसा भान होता है मानों-वे कामदेव को नचा रहे हों। रसिक-शिरोमणि गोवर्द्धनधर ने अपने कटाक्ष द्वारा जो बात कही वह समझ नहीं पड़ी, अचानक उन्होंने मुझे ठग लिया है, अब तो सुखपूर्वक रहना कठिन हो गया है।

२२७

माई! इस नंद के ढोटा ने तो मुझे बहका लिया है। देखते ही कुछ टोना किया और मोहन मंत्र-सा पढ़ डाला है। विकल मन होकर इधर-उधर डोल रही हूं, बिना देखे रहा नहीं जाता। बाट, घाट, बन, बीथी-जहां भी ढूंढने जाती हूं लोग मुझे पागल बताते हैं। मेरा मन श्याम के सौन्दर्य-सागर में डूब गया है, ढूंढते २ हार गई। कि—गोवर्द्धनधर ने क्या बात समुझाकर कही थी।

२२८

सखि! जब से नयन भरकर नंदकुमार को देखा तभी से भूल गई हूं, पति-परिवार सब छूट गये हैं। अब देखे बिना मैं विकल हो रही हूं। सब अंग थक गये हैं, जब साँवरी मूर्ति की सुध आती है तब लोचनों में नीर भर-भर आता है। उस रूप-राशि की तो कोई सीमा ही नहीं है-उस कन्हाई से फिर कैसे मिलूं? मेरी प्यारी सजनी! एकबार फिर प्रभु गोवर्द्धनधर से तू मुझे किसी प्रकार मिला दे।

२२९

माई! अब तो ऐसा लगता है कि—सदा गिरिधर के गुण

गाती रहूं। मेरा तो यही व्रत है, अन्यत्र रुचि नहीं। लाडिले! एक बार आंगन में खेलने को आ जावो, तो थोडा-सा तुम्हारा दर्शन पालूं? मुझे तुम्हारे प्रति लगन लगगई है, इस कारण इसी लालच में पड़ी हुई हूं।

२३०

सुंदरि! मेरे लोचनों में टगटगी-सी लग गई है। लाल गिरिधर के नखशिख-अंग की शोभा देखते २ अनमनी-सी हो गई हूं। मैं प्रातः उठकर घर से दही-बेचने निकली कि—श्याम सुन्दर से मार्ग के अधबिच ही भेट हो गई। बस घर-व्यवहार सब भूल बैठी। ग्वालिनी! मैं मनसिज संकल्प से व्याकुल हो गई।

कुंभनदास कहते हैं कि— गोपी की ऐसी दशा देखकर प्रभु ने प्रीति कर उसे स्वीकार करलिया।

२३१

नंद-कुमार ने कमलदल लोचन की चपल चितवन से मेरा मन हरलिया। इससे बुद्धि भी ठिकाने नही रही, शक्ति न जानें कहां चली गई? अंग सब विकल हो गए। घर का काम-काज भी भूल गई। अब ऐसी दशा में लाल गिरिधर के बिना दूसरा कोई उपचार नही है।

२३२

रूप देखकर नेत्रों के पलक लगते ही नहीं हैं। गोवर्द्धन-धर के जिस २ अंग पर दृष्टि गई, वह वहीं जमकर रह गई। क्या कहूं? कुछ कहते भी नहीं बनता। उन्होने दही क्या मांगा? मेरा चित्त चुरा लिया।

कुंभनदास कहते हैं कि—उस गोपी ने इस प्रकार प्रभु से मिलने की अपनी बात सखियों से कह डाली।

२३३

माई ! मेरा मन तो हरि के संग चला गया ? किस को दोष दूं ? उसे तो नेत्रों ने परबश कर दिया। नंद्-कुमार ज्योंही दीख पडे-नेत्रों ने उनके श्यामल स्वरूप को अपने भीतर धर लिया। मैं गिरिवरधरन से भी क्या कहूं ? इन नेत्रों ने उन्हें बलात् अपने भीतर जो छिपा लिया है।

२३४

नंद्-नंदन की बलिहारी जाऊं। उनके श्यामल, मृदुल तन की कान्ति देखकर क्यों न सुख उठाऊ ? सभी लोक के पति, श्रीपति और ठाकुर का विमल यश अपनी रमना से गाते रहना चाहिये। परम रसिक प्रभु गिरिवरधर को तन-मन सर्वस्व निवेदन कर देना चाहिये।

२३५

मोहन की मनोहर मूर्ति मन में बसगई है। उनका अंग श्याम आकाश सदृश और मुख शोभायमान शरद्काल के पूर्ण चन्द्र-जैसा है। उन्हें गोप-वृन्द के साथ खेलते देखकर सखी ! मेरे ऊपर काम-भुजंगम का विष-सा छा गया। अब तो रसिक गिरिधरलाल के प्रेमरस में मैं मग्न हो गई हूं-उन्हें जब देखूंगी तभी सुख होगा।

२३६

सखी ! मेरा और उनका एक ही गांव का निवास है। तू ही बता मैं धीरज कैसे धरूं ? यद्यपि मैं प्रयत्न करती हूं पर लोचन-भ्रमर रोकने पर भी नहीं रुकते। यहीं से उनका गौ-चराने जाना और वहीं से मेरा दही-बेचने जाना-बस देखते ही मैं पुलकित, गद्गद्स्वर और आनन्द भरित हो जाती हूं। जब वे ओझल हो जाते हैं तो एक-एक क्षण कल्प-समान

बीतता है, मैं विरह–संतप्त हो जाती हूं। अब तू ही बता ? मैं कुल–मर्यादा से कहां तक डरती रहूं ?

२३७

मेरी माई ! अब क्या करूं ? जब से नंद–नंदन दीख पड़े हैं, घर--आंगन कुछ भी नहीं सुहाता। 'तैने कुल की लाज छोड दी' यह कह कर माता--पिता त्रासते हैं–घर में तो यह दशा है, और बाहर–'देखो ! देखो कान्हा की सनेहिनी आई' ऐसी बातें लोग आपस में चलाया करते हैं। रात--दिन मुझे कल नहीं, घर–द्वार काटने को दोडते हैं। प्रभु गोवर्धनधर ने तो हँसकर मेरा चित्त चुरा लिया है।

२३८

सजनी ! मेरा मन मोहन से उलझ गया है, छुड़ाने पर भी नहीं छूटता। चारों ओर से प्रेम ने घेरा डाल रक्खा है। उनके शरीर में नख से शिख तक रंगीली आभा है–और मंद मुसकान में महान् रस झलकता है। मुझे लाल गिरिधर के बिना कोई नहीं सुहाता।

२३९

सखी ! इस लोचन–द्वार से भीतर आते अब उन्हें कौन रोके ? आँखो की पुतली भी उनही की पोलिया बन गई हैं। भीतर जाकर उन्होने अंजन रूपी छड़ लगाकर पलक रूपी कपाट दे दिये हैं। रूप–रस में छके रहकर हरि ने वहां रात दिन रहकर मनके सभी पात्रों को ढूंढ लिया है।

२४०

सदा गोवर्द्धनराय को देखती ही रहूँ। मनसा वचसा बस इन्ही का हो जाना है। सुनो सखी ! मेरा मन उन्ही के हाथ

बिक चुका है। सुंदर श्याम कमलदल लोचन लाल गिरिधर ज्योंही मेरी ओर मुंह कर मुसकराए बस उसी समय से नेत्रों के भीतर समा गए हैं।

२४१

अरी माई! श्याम तो मेरे संग लगा ही डोलता रहता है, मैं जहां जाती हूं वहीं वह आ पहुंचता है। बोले बिना ही मुझ से बोलने लगता है मैं क्या करूं? इन लोभी लोचनों ने बिना मोल के मुझे विवस कर लिया है। वह गोवर्धनधर हँस कर अपने हाथों मेरा घूंघट खोल देते है। मैं कुछ भी नहीं कह पाती।

२४२

मैंने मदनमोहन से प्रेम किया है–अब भले ही कोई मुंह मोड़ता रहै। इस व्रत से कभी टलनेवाली नहीं हूं–मैंने सभी से नाता तोड़ लिया है। भले ही सास रिसा जाओ, माता मुझे त्रास दो–मैंने तो तो पति से भी घट–स्फोट–सा कर लिया है। मैं गिरिधर से मिले बिना नहीं रहूंगी। अब तो सभी के साथ आर्य–मर्यादा का व्यवहार छोड़ दिया है।

२४३

मेरे वामांगों के फरकने से लाल के मिलने की बात मुझे मालुम पड़ गई है। आज प्रातः प्रिय आवेंगे एसी आनंद की बात सुनकर आँखे पहिले ही मिल आई। इस आनंद में मै हाथों को कंकण, हृदय कों मोतियों का हार पारितोषक में दूंगी– जिन्होने प्रियतम की बात चलाई है। जब गिरिधर आवेगें तब सखी! मैं आनंद बधाई मनाऊंगी।

२४४

आली! 'संकेत क्या होता है' यह मैं क्या जानूं? श्याम सुन्दर का नाम ले–लेकर मुझे सभी चिढ़ाते है। सखी! न तो कानों

से सुना न आँखों से देखा ही कि वह कृष्णवर्ण है या श्वेतवर्ण। बात यह हैं कि—जिसका जिससे प्रेम होता है वह फिर कुछ सोचता विचारता नहीं है।

२४५

अरी सखी! मैं तो उनका मुख देखकर ही जीती हूं। मेरा न तो कोई सगा है न सम्बन्धी, न मैं किसी की कोई हूं—यह सब को सुनाए देती हूं। जो मेरे मन आवेगा वही करूंगी—तू भले ही कहा कर।

कुंभनदास कहते हैं कि—यह हिलग की बातें निबेरने (सुलझाने) से निबेड़ी (सुलझाई) नहीं जा सकतीं।

२४६

तूने तो व्रज-मोहन को मोह लिया है अब तू क्यों न ऐड़ी २ डोलेगी? वह बन में गाय चराना भूल गए। मैं पूछती हूं—तू ही बता वे कब किसी से बोलते हैं? उनका लकुट कहीं, मुरली कहीं, पीताम्बर कहीं पड़ा है, कहीं आभूषण खुले पड़े हैं—यह सब क्या है? तूने गिरिधर को वश कर लिया है अब यह बात प्रसिद्ध हो गई है।

२४७

मान—

सखी! तेरी ये मन को लुभानेवाली बातें जब तक सुनाती रहती हूँ तब तक गिरिधरलाल को आनन्द आता रहता है। थोड़े से भी समय के लिये घर आती हूँ उन्हें चटपटी-सी लग जाती है। उन्हें किसी प्रकार चैन नहीं पड़ता। वे बुलाने के लिये एकके बाद एक को भेजते रहते हैं। वारंवार यही चर्चा चलाया करते हैं—उन्हें और कुछ सुहाता नहीं है। प्रभु श्याम सुन्दर अत्यन्त आतुर है। तुम तो उनके प्रेम को प्रबुद्ध करनेवाली हो।

२४८

अरी ! देख, तुझे बुलाते हुए श्याम मनोहर कदम्ब खंडी में छांह में बैठे तेरी प्रतीक्षा कररहे है। वहां वृक्षों पर पुष्प फूले हैं, अलिकुल गुंजार और कोकिला मधूर कूजन कर रही है।

इस प्रकार दूती के वचन सुनकर व्रजकुंवरी के मन में उल्लास हो उठा और वह उत्कण्ठित हो कर रसिक कुंवर गिरिधर के समीप मिलने चली।

२४९

अब यही नेत्र तेरे दूतपना कर रहे हैं। नागरी ! यह मै जानती हूं, इसलिये मेरी बात तुझे अप्रिय लगती है। सच बात तो यह है कि प्रभु तेरे रस-वश हो गए हैं-सो कडवी मीठी-ऊंची नीची बात तुझ से नही कह सकती। तू गिरिधर लाल को जैसे नांच नचाती है-वे नांचते हैं। इतनी बात में ही ढीठ बनकर कहती हूं।

२५०

हरि का वदन देखते पलक नहीं लगता। वे नट-भेष धारण कर निकुंज-मण्डप में बिराजे हैं। ऐसा मालुम पड़ता है मानों निष्कलंक चंद्र अपनी शोभा बिखेर रहा हो। यह अवसर बीत जायगा, विलम्ब मत कर। जो तुझे ठीक लगै तो मेरा कहा मान। प्रभु गिरिधर से शीघ्र मिलने चल।

२५१

तुझे लेने के लिये मुझे गोपालने भेजा है। पर तू उत्तर भी नही देती ? कुछ बोलती भी नहीं-और अधिक रिसाती जाती है। मैं तेरी प्रकृति समझ गई हूं-तू एसे ही अपनी जीत दिखाना चाहती है। अरी ! तेंनें अपने स्वभाव का अच्छा परिचय दिया जो आते ही लडाई ठान ली। नंदकुमार से तुझे

जो कहना है सो भले कह, तेरी मर्यादा रखने के लिये म नहीं बोलूंगी।

कुंभनदास कहते है कि–स्वामिनी ऊपर से ही सखी से रूखा व्यवहार कर रही हैं–भीतर तो उसका कहना भागया है। अन्त में वे बोली–'सखी! गिरिधरलाल सब घोष के पति और व्रज के ठाकुर हैं उनको नांहो कैसे की जाय?

२५२

तू नंदलाल को बहुत प्यारी लगती है, जब तू अपने मंदस्मित पूर्वक उनसे मिलती है। मदनगोपाल तो तुझे एक क्षण भी भूलते नहीं है। उनके हृदय में तू बसगई है। मृग-नयनी! तू शृङ्गार साजकर वेश धारणकर, मांग सुधारकर, तन में चंदन लेपकर चल और उनसे शीघ्र मिलले। व्रज-भामिनि! तू कनकलता (सोनजुही) सदृश और श्यामसुन्दर तमाल सदृश हैं–दोनों का संमिलन कितना सुन्दर होगा? प्यारी! तू गिरिधर से मिल, जिससे तेरे तन–ताप की निवृत्ति हो।

२५३

अरी! मैं तुझे मनाती–मनाती हार गई पर तू न मानी? सीख सिखाते पहर बीत गया, पर तेरे ध्यान में एक भी बात न जँची। अपने रूपगुण के गर्व पर इतना क्यों इठला रही है? समझती ही नहीं, तू भोली–भाली ग्वालिनी ही है। प्रभु गोव-र्धनधर तो बहुनायिक है, उनसे अभिमान क्या करना?

२५४

अरी माई! मैं तुझ से कब की कह रही हूं–तू प्रियतम हरि के पास क्यों नहीं चलती? रात बीतने को आई पर तुझे तो एक 'नहीं–नहीं' की ही जक लगी है। तुझ से मिलने के लिये गोवर्द्धनधर कबके अकेले बन में बैठे हैं। बड़ा आश्चर्य

है कि-प्रभु मुझे बुलाते है ऐसा समझकर तू वार-वार बांह छुडा-कर बैठ जाती है ।

२५५

सजनी ! तुझे कान्ह निकुंज में बुला रहे हैं । देखो वसन्त ऋतु है-कानन में वृक्ष लता पुष्पित हो उठे हैं उन पर अलिकुल कल गुंजन कररहे हैं ।

तू नील पट पहिर कर, नूपुरो कों उतार ले-इस समय के योग्य साज सजले । चन्द्र-प्रकाश होने के पहेल अंधियारी निशा में चुपचाप चलकर प्रभु गिरिधर से मिलले ।

२५६

भामिनि ! संकेत-स्थल पर हरि ने आने का वचन दिया था, अब क्यों व्याकुल होती है-थोड़ा ही दिन बाकी रहा है । प्रमुदित होकर नवल आभूषण वेश से श्रृंगार करले । अब क्यों मान धारण कर रक्खा है ? देख, गिरिधर के मिले बिना एक पल भी नहीं रहा जायगा ?

२५७

अरी ! अब तो हरि ने तुझे बुलाया है-अब चली चल । वृथा क्यों हठ कर रही है ? तुझ से कुछ अधिक कहती हूं तो तुझे रोष आ जाता है-मुख तमतमा उठता है-आँखों में आँसू भी आते हैं । मैं मना रही हूं सखी ! अब तो तू मान जा ? देख मैं तेरे कबके पैर पड़ रही हूं ? प्रभु गिरिधर से मिलने में ही आनन्द है- वृथा की बातें तू अपने मन में रखे हुए है ।

२५८

सुंदरी ? अब तू शीघ्र चल । देख ? रात बीतने को आ गई है । विलम्ब मत कर और नंद-नंदन से मिलले । प्यारी ! तू तो चतुर है-मन से वृथा की बातें निकाल दे ।

मदनमोहन बड़ी देर से तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और तू चलने को नट जाती है? श्याम तमाल से कनकलता के समान तुझे गिरिधरलाल से मिल जाना चाहिये।

२५९

मेरा कहा तू नहीं मानती—सचमुच यौवन मद में तू मत्त हो रही है। उत्तर भी नहीं देती? तुझे मनाते आधी रात तो बीत गई। अभी तू अपने सौन्दर्य और गुणों के अभिमान में भूल रही है? जब मैं चली जाऊंगी तब पीछे से पछितायगी? प्रभु गिरिधर प्रियतम से अंकभर कर मिलले, जिससे तेरा हृदय शीतल हो जाय?।

२६०

अरे! तब से तू मान किये है बैठे है? थोड़ी देर में चाँदनी निकल आयगी? तुझे नहीं मालुम फिर कैसे जा सकेगी? जब रात्रि थी चारों ओर अंधकार था, तब तूने चलने का विचार न किया—अब किरणों से चारों ओर सारी पृथ्वी सफेद हो जायगी। अब भी जल्दी चल। मैंने तुझ से बार—बार कहा, पर तू गिरिधर प्रियतम से मिली नहीं, और वृथा विरह—पीड़ा सहती रही।

२६१

भामिनी! मोहनलाल गोवर्धनधारी तुझ से मिलने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं। मुझे तू उत्तर भी नहीं देती? कोई बात हो तो बता?

तेरे शरीर पर झूमक—साड़ी कैसी फब रही है—झरोखा में बैठी तू कैसी सुन्दर लगती है—सचमुच तू प्राण प्यारे के तन—मन में बस रही है—एक पलभर को भी वे तुझे मन से नहीं बिसराते।

तू कहे तौ संकेतित स्थल तक मैं तेरे साथ चलूं? देखो उस ऊंची चित्रशाला में प्रभु पौढे हुए हैं।

२६२

सखी ! रिमझिम २ पानी बरस रहा है। ज्योंही मोर बोलते हैं-कोकिला कूजती है- बिजली चमक उठती है। बादल चारों ओर उमड़-घुमड़ रहे है। पृथ्वी पर आकर बरस जाते हैं। ऐसे सुहावने समय में प्रिय गिरिधर तुझ से मिलने की चाहना कर-रहे हैं और तू मान किये बैठी है ?

२६३

अब तू ही देख ले ? निशापति अस्त होने को आ गया है। अब भी क्यों गर्व करती है ? आँखों में काजल लगाकर चल। चारों ओर अन्धकार छा गया है-जिसे तू चाह रही थी, अब वस्त्र ठीककर पहिन ले, और प्रभु गिरिधर के अंग में घन में दामिनी के समान मिलकर तू शोभित हो जा।

२६४

भामिनी ! सुन, प्राणनाथ से इतना मान नहीं करना चाहिये ? जिसके बिना एक क्षण भी रहा नहीं जा सकता, बिछुड़ने पर शरीर छीजता है। इन आंखों को प्रियतम प्यारे लगते है। उनके दर्शन कर चार दिन सुख क्यों नहीं उठाती ? प्रभु गिरिधर प्रियतम को तन-मन सब क्यों समर्पण नहीं कर देती।

२६५

सुन्दर नट-वेष धारण किये हुए गोविन्द सघन गहर-निकुंज में बिराजमान हैं। नागरी ! जब से तुम दोनों का नयन-सम्मिलन हुआ है, तब ही से नटनागर प्रसन्न होकर वन में जा बैठे हैं।

रसिकवर नन्द-कुंवर ने अपने ही हाथों से पुष्प-शय्या सजाई है। यमुना का तट, विमल जल का प्रवाह, सुन्दर त्रिविध मलयज पवन यह सभी सौन्दर्य वहाँ हैं।

श्यामसुन्दर तुझसे मिलने को अति आतुर हो रहे हैं। उन्हें एक २ क्षण युग-समान बीत रहा है। वे एकटक पंथ निहार रहे है। सखि! सुकुमार गोवर्द्धनधरण ही तो व्रज-युवतियों के मन-हरण करनेवाले हैं।

२६६

सखि! तू मेरी बात मान कर चल। नदनंदन तेरी बाट जोह रहे हैं। व्याकुलता में एक-एक पल उन्हें कल्प-समान बीत रहा है। युवतिजनों के सन्तापहारी उनके मुखकमल को एकबार लोचन भरकर देख ले, और भामिनि! कुंवर रसिक नवल गिरिधरलाल को अंक भरकर भेट ले।

२६७

मनमोहन हरि ने तेरी सब बातें मान ली हैं। जब गिरि-धर प्रियतम एकान्त में बैठे थे, तभी मैंने उनके हाथ में तेरी पाती रख दी थी। भामिनी! दिन के बाद जबतक रात नही आई, तब तक धीरज धर।

कुंभनदास कहते हैं कि-इस प्रकार दूती के बचन सुनते ही उस युवती का हृदय शीतल हो गया।

२६८

तूने सीधे मुख से उनके साथ बात भी नहीं की? हरि तेरे भवन मान मनाने आए थे, पर तू तो बस मौन लेकर बैठ गई? अधिक मान अच्छा नहीं-कुछ तो मर्यादा होनी चाहिये। रात्रि के चारों पहर तू एक ही रस में मत्त रही। क्या करू? अब पछताने से क्या हो? तूने गिरिधर से न मिलकर वियोग -पीडा सहकर वृथा अपने तन मन को काम की ज्वाला में झुलसा डाला?

२६९

सखी ! तुझ से हँसी-हँसी में कुछ कह दिया तो तू मान-कर के बैठ गई ? इतनी रिस क्यों करती है ? गोवर्धनधारी तो प्रिय और सुखनिधान है। अब मेरा कहा मान कर अटपटी चाल और अपना स्यानपन छोड़ दे। प्यारी ! तू स्वामी से इतना रूखा व्यवहार मत कर।

२७०

तेरे प्रियतम ने जो बात तुझ से कही उसको सुनकर अब क्यों रिसाती है ? प्राणनाथ और तेरे बीच में भेद डाले उसके सदृश अज्ञ कौन है ? अरी सयानी ! जिसके बिना रहा ही नहीं जाता, उससे क्रोध करना कैसा ? अब तो वही कर जिससे गिरिधर के हृदय से लिपट सके।

२७१

प्यारी ! सचमुच तू बडी अलकलडी-विचक्षण है। रात्रि-दिवस गिरिधरलाल के हृदय में ही गड़ी-सी रहती है। समीप रहने में ही तुझे सुख मिलता है। एक पल को भी साथ छोड़ती नहीं है। व्रज-युवतियों में सब से श्रेष्ठ तू ही राधा स्वामिनी है।

२७२

तेरे मन की बातें कौन समझे ? भय की इसमें क्या बात थी ? ऐसी कौन युवती है जो नंद-नंदन के बुलाने पर न मानें ? तेरी और हरि की खूब मिल्लत चलती है इसीसे तू निधड़क बोलती है-यह मैं अच्छी तरह मन में समझती हूं। व्रजसुंदरि ! गिरिवरधरण तेरे आगे अन्य को कुछ गिनते ही नहीं हैं।

२७३

प्यारी ! कहने से यह बात तुझे अच्छी नहीं लगती ? पर मैं सच कहती हूं नंद–नंदन विना तुझ से रहा नहीं जायगा ? और फिर मुझे तू याद करेगी। राधे ! समझाने पर भी तू नहीं समझती–चतुर भी जब अनजान बनने लगें तो क्या किया जाय ? नटवेषधारी गोवर्धनधर निकुंज में बैठे हैं–एक बार उनके दर्शन तो करले।

२७४

मैं तुझे वरज रही हूं। तू प्रियतम से क्यों भेद पाड़ रही है ? सुख के निधान नंदनंदन को चलकर क्यों नहीं निहार लेती ? सखी ! झूठा कोप करने से लाभ क्या ? हठ छोड दे। अन्त में तो तुझे हार मानकर कमलनयन से मिलना ही पड़ेगा। समीप चल, अपना यौवन वृथा क्यों खोती है ?

वे प्रभु सभी व्रजाङ्गनाओं के प्रिय हैं–यह तेरे समझ में नहीं आता ? सखि ! अपने इस आचरण से रस में क्यों कुरस उत्पन्न करती है ? गिरिधर से अपना व्यवहार क्यों तोड़ती है–अपना भरा जल क्यों ढोलती है ?

२७५

अरी ! हाथ पर कपोल रखे तू अनमनी होकर क्यों बैठी है ? हलती, चलती, बोलती कुछ भी नहीं है, क्या मौन धारण कर रक्खा है ? तू जो कहेगी, श्यामसुन्दर उसे अवश्य मानेंगे। ऐसी कौनसी बात है, जिसके लिये इतना दिखावा हो रहा है ? गिरिधरलाल को तो सदा तेरा ही ध्यान बना रहता है, तू ही मृगनयनी उनके हृदय में बस रही है।

२७६

आली ! हरि मनमोहन अपने हृदय पर गुंजामणि की

माला धारण किये रहते हैं। दूसरे और सभी अमूल्य आभरण उन्होंने त्याग दिये है। उस माला की मणि को तेरा नासा-मौक्तिक, गुंजा की ललाई और श्यामता को तेरे अधर की अरुणिमा और अंजन की श्यामता मान रक्खा है। गोवर्धनधरलाल उसे लेकर मन-कर्म-वचन से तेरा रातदिन जप करते रहते है-यह बात मैं शपथ पूर्वक कहती हूं।

२७७

भामिनि! अब तू यह, उलटफेर छोड़ क्यों नहीं देती? चंद्रमा पश्चिम की ओर धीरे २ खिसक रहा है। देख! देर हो रही है। सखि! अभी थोड़ी ही देर में तमचुर (ताम्रचूड-कुक्कट) की टेर सुन पड़ैगी उषःकाल हो जायगा। जब तुझे विरह व्यापेगा तब तू पछतायगी। इसलिये सुंदरी! मेरा वचन मानकर श्यामसुंदर से चलकर मिल। वे गिरिधरलाल ही तो तेरे जीवन-धन है।

२७८

"प्यारी! तुझे कान्ह, कुमुदवन में बुला रहे है। वहां कदम्ब की छाया में अतिशय मनोहर, ठौर बनी हुई है। मृगनयनी! उठ, अभिमान छोड़ दे-मै तेरे पांव पड़ती हूं। यहां आए बड़ी देर हो गई है-चलो अब चलें"।

इतना कहकर दूती चलने लगी तभी नायिका ने उसकी बांह पकड़ कर कहा-गिरिधरलाल का त्रास मुझ से सहा नहीं जाता।

२७९

मदनगोपाल के सौन्दर्य को जब से देखा तभी से तेरा मान छूट गया था। विशाललोचन श्यामसुन्दर की चितवन ज्योंही तेरे चित्त में बसीथी तभी से तूने शपथ खाकर कहाथा कि-"अब मैं कभी नहीं रूसूंगी"।

ऐसा सुनकर व्रजसुन्दरी गिरिधरलाल को सन्तुष्ट करने के लिये शृंगार साजकर उनके पास चली और जिस प्रकार तमाल द्रुम से वल्लरी लिपट जाती है–वह उसी प्रकार उनसे मिल गई।

२८०

"मैं सदा प्रियतम की रूख लिये रहूंगी–उन्हें अप्रसन्न नहीं होने दूंगी। वह जो कुछ आज्ञा करेंगे तदनुसार ही आचरण करूंगी। कभी उलटकर अप्रिय प्रत्युत्तर न दूंगी। मेरे मनमे यही एक बड़ा सोच है–जो एक पल को भी वियोग होगा तो कैसे सहा जा सकेगा? अब प्रभु गिरिधरलाल से कभी भूलकर भी मान न करूंगी"।

सखी! तूने कभी ऐसी प्रतिज्ञा की थी–यह जानकर ही मैं मनाने के लिये तेरे चरण पकड़ती हूं।

२८१

सखी! उठ चल, मनमोहन के मुखारविन्द का दर्शन क्यों नहीं करती? रंगीले गिरिधरलाल को देखे बिना वृथा समय क्यों खोती है? तुझे ध्यान नहीं है–अंजलि के जल के समान यह यौवन भी व्रजनाथ के सम्मिलन बिना क्षण–क्षण क्षीण होता जाता है। अपने इन विशाल नयनों से उस मुखकमल को देखकर जीवन क्यों नहीं प्राप्त करती? यदि तू मेरा कहा मान लेती तो आज अनचाही बात क्यों होती? श्रीगिरिधर नागर वैकुण्ठ छोड़कर क्रीड़ा करने के लिये ही तो व्रज में आये हैं।

२८२

गिरिराज–धरण तुझे कितना सन्मान देते हैं? अरी? भोली भाली! तू अब हठ करना छोड़ दे। व्रजभामिनी! देख यामिनी बीत रही है–सबेरा हो रहा है। हरि को अपना ही प्रियतम समझ।

जो क्षण-बीत गया वह फिर नहीं आता। प्रभु के वियोग से बढ़कर और क्या हानि हो सकती है? लाल गोवर्धनधर तुझ से मन-कर्म-वचन से विनय करते हैं, अब उनके सामने घूंघट क्यों डालती है।

२८३

अपने अंग-प्रत्यंग छिपाकर चुपचाप मेरे संग चली चल। देख मौन धारण करले। अधरों पर हाथ धर ले क्योंकि तेरी दंत पंक्ति दामिनी-सी चमक उठती है। नूपुर और किंकिणी उतार दे-उनके कल शब्दों से खग-मृग चौंक उठेंगे। स्वामिनी! अब शीघ्र चलकर मिल ले। गिरिधर लाल यहीं तेरे निकट तो हैं।

२८४

श्यामा! चल, तुझे यमुना-तट के सघन कुंजों में घनश्याम बुला रहे हैं-वे तेरा ही नाम रट रहे हैं। चंचल मृगशावाक्षी! शृंगार करले, और कंठ में मौलसिरी की माला धारण करले। चलकर सकल सुख-निधान श्रीगिरिधरलाल से भुज भरकर भेटले।

२८५

जो-तू धीरे-धीरे धरती पर पैर धरती हुई चलेगी तो अंधेरी रात में कोई पहिचान न सकेगा। देख अपने नूपुरों का कोलाहल मत होने देना? चलकर देख, नवीन कुंज-दरी में डहडहे फूलों की शय्या की रचना हुई है। स्वामिनी! अब तू शीघ्र ही रसिकराय गिरिवरधर से चलकर मिलले।

२८६

आली! चल, तुझे नंदनंदन बन में बुला रहे हैं। चपल मृगलोचनी! शृंगार कर कसूंभी परिधान धारण करले। यौवन के अनियारे नयन-पुष्प और वक्षोज-श्रीफल की अमोल भेट

लेकर उनसे मिल। प्रभु गोवर्द्धनधर भी तुझ से निष्कपट भाव स ही मिलेंगे।

२८७

देख लेना, तेरा मन गिरिधर मनमोहन के बिना नहीं मानेगा? चारों ओर सावन की घटा उमड़ आयगी और पिक, मयूर पक्षी बोल उठेंगे–तब तू मुझे स्मरण करेगी जब कामदेव तुझे क्लेशित करेगा। लाल गिरिधर के बिना देखना– तेरे नयनों से प्रेमाश्रु का प्रवाह बह चलेगा?

२८८

मैं भी देख लूंगी ऐसी कौन है, जो श्याम सुंदर के मुख कमल का दर्शन करके भी मान करने लगे? तब तक भले ही मान कर लो–जब तक वह दृष्टिगोचर नहीं होते। दृष्टि पड़ते ही मन–मधुकर तत्क्षण ही बदन–सरोज पर स्वभाव से ही दौड़ जायगा। त्रिभुवन में ऐसी कोई वंदनीय युवती नहीं दीखती जो– आर्यपथ से विचलित न हो? बात यह है कि–गोवर्धनधर सहज में ही कुल–मर्यादा को ढहा देते हैं।

२८९

"सहचरी! मोहन नंदराय कुमार ने अर्द्ध रात्रि में तुझे बुलाया है। ले, यह तेरे प्रिय गिरिधरलाल की प्रेम–पाती है, अब चलकर उनसे मिलले।"

इस प्रकार अपनी आली के मधुर वचन सुनकर नायिका की छाती धड़कने लगी, और उसने लाल गिरिधर की सब बातें मान लीं।

२९०

अरी? मेरे मन वचन तो थक गये, अब क्या करूं? प्रति क्षण मैं तेरे पैर पकड़ती हूं–पर तू मानती ही नहीं है। ऐसा

लगता है मानों तू बड़ी गद्दी पर बैठ गई है। मेरे मुख की ओर भी नहीं देखेगी क्या ? अब चन्द्रकला-आकाश में फैलने ही वाली है। अब पहिले की भांति प्रमुदित होकर तू न तो कुंज भवन के द्वार पर ही जाती है, और न भीतर ही। मोहन नागर तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें कितनी आर्ति है-यह तू नहीं जानती ? गिरिधरलाल से तू मिलै, यही मुझे अच्छा लगता है।

२९१

राधे ! तूने तो मान को अपना गढ़-सा बना लिया है, उसका घूंघट-रूपी कोट जीतने में ही नहीं आता। नेत्रों को दूत बनाकर भेजा था, सो वे भी अपने सहयोगी दूतों से जा मिले-उन्होने कुछ उत्तर भी नहीं दिया। अब तो प्रभु से मिल कर अधर सुधा-रस का पान कर।

२९२

राधिके ! गिरिधर ने अपने मुख की प्रसादी बीड़ी तेरे लिये पठाई है, इसे ले। प्याणप्यारे का प्रेम-संदेश सुननें को पास में क्यों नहीं आती है ? घूंघट खोलकर अच्छी तरह बांच ले, यह प्रियतम की ही चिट्ठी है। अब प्रभु गोवर्धनधर से मिलकर अपने नेत्र और हृदय दोनों को शीतल करले।

२९३

सखी री ! तुझे बात सुनना अच्छा लगता है। रूचिर प्रेम रस से आतुर होकर अब प्रिय से मिलले। उनको जागरण करते चार पहर बीत गये हैं। उन्होंने मनुहार करके मुझे फिर से भेजा है। अधर सुधा-रस में मत्त प्रभु गोवर्द्धनधर तो अब तेरे ही प्रेम-रस में पड़ गये हैं-उन्हें अन्य कुछ नहीं सुहाता।

२९७

" कुंवर कन्हाई! ऐसी रमणीय वेशभूषा बनाकर कहां पधार रहे हो? ऐसी कौन कामिनी है जो तुम्हारे चित्त पर चढ गई है? आपका मुखचन्द्र तो दूज के चन्द्र की भांति थोड़ा दीखकर ओझल हो जाता है। अरे! थोड़े खड़े रहो, देखो? आप तो चले ही जा रहे हो—तुम्हें ऐसा क्या पाठ पढ़ाया है? देखो! गोवर्द्धनधर! कहीं आपकी ठकुराई की ठसक को ठेस न लग जाय?"

२९८

अरी! सारंगनयनी! आज तैने सुंदर ढंग से आँखों में काजल आंजा है। यह गजवेली (शुद्ध लोहा) की खरसान चढ़ी कटारी जैसी तीखी हो गई हैं। जब तू कटाक्ष से निरीक्षण करती है तो नयनकोर (अपाङ्ग) में श्यामता और बढ़ जाती है—ऐसा लगता है मानों—श्याम के सुभग शरीर पर घात करने को घूंघट-ओट में बैठा हुआ मन्मथ-रूपी बहेलिया भ्रकुटि-धनुष पर तिलकबाण चढ़ाकर बैठा हो।

ऐसी सराहना सुनकर साज सजकर भामिनी! गिरिधर रसिक सुजान से मिलने के लिये चली।

२९९

शयन—

देखो! वहां झरोखें में दीपक का प्रकाश हो रहा है। हरि ऊंची चित्र-सारी (शाला) में पौंढे हुए हैं। सुंदर वदन देखने के लिये ऐसा यत्न किया है, जो दीपक का प्रकाश होता रहै। दोनों प्रिया प्रियतम परस्पर सरस प्रेमालाप कर रहे हैं। नवल नागरी राधिका और नवल लाल गोवर्धनधारी की मधुर जोड़ी सौभाग्य-सुषुमा की सीमा प्रतीत होती है।

३००

युगल स्वरूप शयन कर रहे हैं। त्रिविध पवन बह रहा है–उसी प्रकार शरद्–निशा की चांदनी छिटक रही है। विविध पुष्पों की शय्या सुख और विलास को बढ़ानेवाली है। विकसित नवकुंज और तन पर तनसुख के वस्त्र शोभित हैं। युगलस्वरूप घन–दामिनी जैसे भासित हो रहे हैं। आनन्द विलास से प्रभु गोवर्द्धनधारी अतिशय आनन्दित हो रहे हैं॥

३०१

कुंज–सदन में युगल स्वरूप पौढ़े हैं, सेवार्थ सखियां द्वार-पर विद्यमान हैं। दोनों स्वरूप परस्पर रसविलास विविध प्रेम–चेष्टाएँ कर प्रमुदित हो रहे हैं। लाल गिरिधर और स्वामिनी राधिका दोनों स्वरूप प्रातःकाल, नवकुंज से पदार्पण कर रहे हैं।

३०२

सुरंग पड़दा पड़ी हुइ रंगमहल की तिवारी में युगल स्वरूप पौढ़े हुए हैं। प्रिया के आभरण जगजगा रहे हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर भी रत्नभूषण धारण किये है और अपनी शोभा से कामदेव को मोहित कर रहे हैं।

३०३

"प्रियतम! रिमझिम २ मेह बरस रहा है, मैं उस ऊंची चित्रसारी में आपके पास कैसे आउ? बादल चारों ओर उमड़ घुमड़ रहे हैं–मेरी साड़ी भींज जायगी मुझे वहाँ ले चलो"

यह सुनकर प्रियतम ने अपना पीताम्बर उढ़ा दिया और उसे गोरवडा तिवारी में लेकर पवारे। दोनों परम आनन्दित हुए।

३०४

सुरतान्त—

अरी? तू अपने बिखरे केश बांधती क्यों नहीं? वे मुख–

चंद्र पर घिरे हुए बादलों के समान लगते हैं, और यह ऊपरसे कटि तट तक लटक आए हैं। तेरी अंग-अंग की शोभा अवर्णनीय है। रात्रि-जागरण से तेरा वेश अस्तव्यस्त हो गया है। तेरा उल्लास देखकर अनुमान होता है कि-तुझे व्रजयुवति-नरेश प्राणप्यारे गोवर्द्धन-धर मिले हैं?

३०५

स्वामिनीजी के मांग में विखरे हुए मोती ऐसी दीख रहे हैं मानों चन्द्र की पूजा करने को नक्षत्र आए हों? उनका अंचल काम-नृप की ध्वजा जैसा उड़ रहा है। विरहरूपी राहु से छूट जाने पर द्विज-कला विमल हो गई हैं, हास्य झलकने लगा है। जिसे देखकर सुख होता है। इस शोभा को देखकर प्रभु गोवर्द्धनधर सौन्दर्य सुधा का पान करने लगते है।

३०६

प्यारी? तेरे नयन रसम से हैं-वे रात्रि के उनीदे हैं। काम-कला की विपरीत बातें छिपाने से नहीं छिपती? मुख पर जंभाई, चलने में, बोलने में सभी में आलस्य की छटा झलकती है। इन सब लक्षणों से प्रेमपूर्वक प्रियतम गिरिधर के मिलने की प्रतीति होती है।

३०७

सखी री! तू जागरण से अलसाई हुई है। क्या चोर के भय से तुझे नींद नहीं आई? या तू अकेली कुंज में बसी? घरवालों के विरोध से रूमकर तू सांझ होने के पहिले ही बन में जा बैठी? ऐसा भी कई कहते हैं। तेरे पास जो मोतियों की माला है-यह गिरिधर की है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। तुझे पैरों में पड़ी मिल गई होगी?।

३०८

प्यारी ? आज तेरा मुख प्रमुदित है, और नयन अरुण-राग से रंजित हो रहे है । ऐसा लगता है कि शरद्-कमल पर उन्मत्त खंजन युगल लड़ रहे हों ? सच है-रसिक शिरोमणि गिरिधर के शीतल कर-स्पर्श हो जाने से तू फूली २ क्यों न फिरैगी ? ।

३०९

आली ? तू बिथरी हुई अलकें क्यों नहीं सॅभारती ? तेरी भ्रकुटी कमान जैसी चढी हुई है और नयन रतनारे हो रहे हैं, सो-रात्रि को तेरे पलक नहीं लगे ऐसा लगता हैं ? मत्त गजेन्द्र-सी चाल और रोमाञ्च अन्तःसुख को प्रकट कर रहे हैं । तू गिरिधर के साथ ऐसी मिली है जैसे-चन्द्रमा की झलक ।

३१०

मेरी समझ में आ गया है ? सखी ? तू प्राणप्यारे मे मिल कर अपना मनोरथ पूर्ण करचुकी है । क्रीडा की रस-मत्तता के कारण सारी रात्रि तेरी पलक से पलक नहीं मिली, गोवर्धनधर को प्राप्त कर तूने अब अपना हृदय शीतल कर लिया है ।

३११

सखी ? तूने रसिक-शिरोमणि नंद्लाल को प्राप्त कर विविध भांति से अपना मनोवाञ्छित पूरा कर लिया है ? निकुंज में आनन्द-प्राप्ति का सौभाग्य और सुधा-रस तुझे ही मिला है। राधिके ! तू सचमुच बड़ी भाग्यवती है-जो त्रिभुवन-पति श्याम को आकृष्ट कर लिया और गोवर्धनधर ने हँसकर तुझे कंठ से लगा लिया है ।

३१२

प्यारी ? तेरी डगमगी चाल है, वेणी खुली हुई है, तेरे कुछ और ही ढंग दीखते हैं ? अधरों का रंग उड़ा हुआ है,

नख-चिन्ह, मरगजी माला और टूटा हुआ मुक्ताहार है। अंचल मे जहाँ तहाँ पीक लग रही है। यह सब देखकर सखियाँ भी कुछ कानाफूंसी कर रही हैं। सुन्दरी ? ऐसा लगता है कि गिरिधरलाल से कहीं तेरा मिलाप हो गया है ?

३१३

प्रियतम से मिलन के आनन्द को यह तेरे अलमाए नयन ही बतला रहे हैं। यह श्यामसुन्दर के रूप रस-स्पर्श से लास्य-सा कर रहे हैं, दीर्घता में आगे बढ़ते २ यह नदनंदन के पास पहुंच जाना चाहते है-पर श्रवणों ने इनका मार्ग रोक दिया है। प्रभु गिरिधर की प्रीति-रस से मस्त होकर यह चारों ओर फेरा कर रहे हैं-अपनी चंचलता दिखा रहे हैं।

३१४

माई! तेरा प्रसन्न होना ठीक ही है। गिरिधरलाल के शरीर-स्पर्श से तेरा मन चाव से भर गया है। सखी! तेरा दाव लग गया, जो श्यामसुन्दर निभृत निकुंज में तुझे अकेले मिल गये? वे नंदकुमार सचमुच आनंद-सागर और रसिकवर ही तो हैं।

३१५

अब तो तेरा मनचाहा हो गया ? अब तू क्यों न फूलेगी ? गिरिधरलाल को मनाकर तूने रूप-सुधा का पान कर अपने हृदय का विरह-दुःख मिटा लिया। उनके विविध विहार और रस-रंग द्वारा कालिंदी-कूल पर तुझे सुख मिल गया। रस-निधान नंदनंदन के मिलने से तू आनन्द-मग्न हो गई है, अब तेरा पांव पृथ्वी पर क्यों पड़ने लगा ?

३१६

व्रजसुन्दरि! यह तो बता, आज रसिक गोपाल को तू कैसे मन भागई ? मृगनयनी! सोलहों शृंगार सजकर तू ऐसे ही

भली जल्दी चली आ रही है ? तेरा लाल लहँगा, झूमक साड़ी कसूबी रंग की है–सो क्या प्रियतम के लिये ही इस रंग में उसे रंगाया है ? तेरे नेत्र रसमसे और सालस्य हैं। अंग–अंग से शोभा बिखर रही है। प्रभु गोवर्द्धनधर ने तुझे आज अपना लिया है ?

३१७

श्रीराधे ! आज तुम्हारी चूनरी अधिक सुन्दर लग रही है। परम गुण–प्रवीण मोहन इसकी बार–बार सराहना कर रहे थे। इसी प्रकार तेरे लोचनों में अंजन, भाल में तिलक, मांग में सेंदुर और शरीर पर वस्त्र सभी सुन्दर हैं। वास्तव में तू गिरिधर-लाल के प्रेम–रस–रंग में सराबोर सनी हुई है।

३१८

वृषभानु–किशोरी राधा सोकर उठी है, अंगड़ाई लेते समय शरीर को मोड़ते हुए उन्होंने अपनी कोमल भुजाओं को मिलाकर ऊपर उठाया–उस समय उन दोनों के बीच मुख ऐसा लगा मानों सनाल कमल–युग ने अपना बैर लेने को चन्द्रमा को बांध लिया हो। युगल वक्षोज, ऐसे लगते हैं मानों भ्रमर सहित दो कमल कोश निःशंक हो कर ऊंचे उठ आए हों, शरीरकी शोभा और मुखपर प्रमुदित दोनों नेत्रों और उनकी अरुण–कटाक्ष–छटा ने त्रिभुवन की शोभा को चुरा लिया है। ऐसा लगता है मानों–चंद्र पर दो कमल एकत्रित हो रहे हों–सरसता देखते ही बनती है।

३१९

अरी ! आज तू फूली–फूली–सी क्यों डोल रही है ? मृगनयनी ! आज तेरा मुखचंद्र विशेष उल्लसित हो रहा है ? चोली कंचुकी, लाल रंग का लहँगा, उस पर रंगमगी साड़ी कैसी फब रही है ? नूपुरों की रुनझुन, कटि में किंकिणी, मलकती हुई

चाल कुछ विचित्रा-सी ही है। नेत्रों में सुढंगी काजल और भाल पर तिलक-बिन्दी बांकपन से भरी हुई मांग के साथ अनोखी दीखती है। सखी! ऐसा लगता है कि-तू आज गिरिधरलाल के प्रेम में रंग-सी गई है।

३२०

भामिनी! तेरे केशों में बिथुरे हुए कुसुम, रात्रि में नीले आकाश में छिटके हुए तारों-जैसे शोभा दे रहे हैं। मुख पर सहज छूटी हुई अलक-लट, चंद्र को छिपा देनेवाली घन-घटा से क्या कम है? वक्षस्थल पर विलुलित मोतियों की माला मानसरोवर-सी और दोनों ओर वक्षोज, तट पर बैठे हुए वियोगी चक्रवाक-से जान पड़ते है। सखी! तूने मनोमोहक सौन्दर्य से गोवर्द्धन-धर को सहज ही वश में कर लिया है?

खण्डिता (वञ्चिता)—

३२१

लाल गिरिवरधर! तुम संध्या समय आने को कह गए थे, और अब सवेरा होते २ आपके दर्शन हुए हैं? रात्रिभर तारा गिनते-गिनते नेत्र व्याकुल हो गए, चार पहर चार युग से बीते हैं। आपने अच्छा किया जो केलि चिन्हों को मिटा डाला? पर अधर तो रूखे हैं, और वक्ष पर नख-आभूषण आदि के चिन्ह स्पष्ट दीख रहे हैं। रसिक शिरोमणि गिरिधर! यह आपके कैसे ढंग है?

३२२

लालन! तुम इतनी देर तक कहां रहे? सारी रात तुम्हारा पंथ निहारते २ मेरी ऑखों में दाह हो गया। उसीके होकर रह गये जिसने आपको भुलावा दिया था? गिरिधर! आपने संध्या समय दिये हुए अपने वचनों का अच्छा परिपालन किया?

३२३

मोहन! आपके लोचन रात्रि-जागरण से उनींदे और रसमसे हो रहे हैं। आप लज्जित क्यों होते हो? लालन! कहिये तो आपने रात्रि में कहां निवास किया? डगमगाती चाल, आलस और जंभाई, अस्तव्यस्त वस्त्राभूषण, स्पष्ट ही तो दीख रहे हैं। गिरिधर! ऐसा विदित होता है मानों-किसीने तुम्हें भुज-पाश में जकड़ कर हृदय में कस कर बांध लिया हो।

३२४

श्यामसुन्दर! कहिये तो रात्रि कहाँ व्यतीत की? जो अब अरुणोदय पर आ सके हो? इसमें संकोच की बात क्या? आप तो सचमुच ताम्रचूड (मुरगा) का बोल सुनते ही उठ कर दौड़ आए? आपकी आँखे देखकर साक्षी की क्या जरूरत? क्रीडा के चिन्ह सभी तो स्पष्ट है? प्रभु गिरिधर! अब छिपते क्यों हो? मेरी समझ में सब आ गया है।

३२५

लाल! आज रात्रि कहाँ बसे? जो उषःकाल होते ही डगमगाते पैरों से भागे आए हो? अभी तो तमचुर और चिड़ियाँ बोल रहीं है, इतने सबेरे क्यों उठ बैठे? अधरों पर काजल, लटपटी पाग, मरगजी माला, अरुण नेत्र और जँभाई से मालुम होता है-आपने जागकर रात बिताई है? श्याम! चिन्हों को छिपाने से क्या लाभ? ये तो स्पष्ट ही है कि—आप किसी चतुर नागरी के फँदे में फँस गए थे।

३२६

मैं तो आपके पैर पूजती हूं। प्रिय! तुम्हे बातें बनाना अच्छा आता है। अरुण अधरों पर श्यामलता और गति में लटपटापन कैसा है? कपोलों पर पान का रंग और वक्षस्थल पर पत्र-रचना

कैसी है ? गिरिधरलाल ? अब तो आप जहाँ रात्रि को जगे हो, वहीं जाकर सुख दो तो ठीक है। प्रभु ! अटपटी देना छोड़ दो, अब आप पर कौन विश्वास करेगा ?

३२७

लालन ! तुम्हारी इन बातों से मन कैसे मान सकता है ? बना-बनाकर बात उससे कहिये जो आपकी लीला न जानता हो ? बहुत छिपाने पर भी चिन्ह नहीं छिपेंगे, वे स्पष्ट दीख रहे हैं। प्रभु गोवर्द्धनधर ! तुम तो बड़े भोले लगते हो ?

३२८

नंद-नंदन ! संध्या समय दिये हुए वचन आपके सत्य निकले ? रात्रिभर जागकर आप प्रातः होते ही बहुत शीघ्र आ गए। हड़बड़ी में आपने पीत पट भूलकर नील पट ओढ़ लिया ? यह भी सावधानी का काम किया है। प्रभु गोवर्धनधर ! आपने अपने वचनों का अच्छा प्रतिपालन किया ?

३२९

लाल ! आज आप अनुराग से रंजित होकर जागरण कर किस के रंग मे पगे हो ? लाल नयन, मरगजी माला, शिथिल चाल-ढाल तो दीख ही रही है। आपकी अंग-प्रत्यंग की छबि का क्या वर्णन किया जाय ? अलल-गलल आपके बोल भी सुहावने है। प्रिय प्रभु गोवर्धन-धर ! आप बड़े भले लगते हो ? आपके यह हाल कैसे है ?

३३०

गिरिधर ! रात्रि में आप किसके भवन में जागरण करते रहे ? संकोच मत करो, प्रियतम ! कुछ तो कहो ? आप मेरे घर पधारिये, मैं अपने पलकों से मार्ग साफ करूंगी, मेरे भाग्य आकर जगाइए। रगमगे पाग के पेंच खुल रहे हैं, अलकें बिखर

रहीं हैं; पीत पट खिसका जा रहा है, जरा इसे तो सँभाल लीजिये। प्रभु गोवर्द्धनधर! आपकी छवि का क्या वर्णन करूं? बस देखती रहूं और सुख पाती रहूं—यही इच्छा होती है।

३२१

मोहन! आप बोलते क्यों नहीं हो? हमसे क्यों लजा रहे हो? मैंने वहां से आते देखकर ही आपको पहिचान लिया था। भुज-मूल पर कर्णफूल के और कंकण के चिन्ह पहिचाने हुए हैं। प्रभु गिरिधर! आपके रंग-ढंग मुझ से क्या छिपे हुए है? सब जाने-पहिचाने हैं।

३२२

श्यामसुंदर! आप निशा में कहां जगे हो? उस स्थल पर बिना गुण की माला (गड़े हुए मोतियों के चिन्ह) अधर पर अंजन, भाल में महावर और कपोल पर पीक के चिन्ह तो हैं ही। रगमगी चाल, शिथिल अंग, अस्फुट वचन और वक्ष पर अंकित नखरेखा, पींठ पर गडे हुए कंकण के आकार और विह्वल चितवन से आपके रात्रि-जागरण का भान होता है। रात्रि-भर आपके पलक नहीं लगे है?

सत्य बात कहिये, संकोच क्यों? कहिये तो वह बड़भागिनी कौन है? जिसके प्रीति-फंद मे आप फंस गये थे, किसके अनुराग में रंगे थे। गिरिधर! यह सब होते हुए भी आप शपथ खाकर अपनी निर्दोषता प्रमाणित करना चाहते हो?

३२३

अपने भवन मे गोपी सिसक सिसक कर कह रही है कि—'नंद-सुत व्रजराज सांवले को किसी चतुर व्रज-नागरी ने मोहित कर लिया है। चार मास के लिये आनन्द-विहार और निवास अब वहीं हो गया है। वे मुझ पर अब कब कृपा करेंगे? मैं

विधाता से अचरा पसार कर वर मांगती हूं। गोवर्धनधर! अब तो शीतकाल भी दोनों हाथ झाड़कर चला गया है, अब भी आपका आगमन नहीं हुआ ?

विरह [द्वितीय अवस्था]—

२३४

वह दिन कब आयगा ? जब मैं नयन भरकर सुखदाता श्याम-सुन्दर के मनोहर अंग-प्रत्यंग का दर्शन करूंगी। गोप-वृन्द को संग लेकर प्रतिदिन वृन्दावन में विहार करना और गोदुग्ध का तथा बांट-बांटकर पयःफेन-घैया का पान करना-स्मरण हो आता है। हाय! सुख की नींद सोए बिना कितने दिन बीत गए ? अब तो गिरिधर के बिना किसी प्रकार भी मन में चैन नही पड़ता।

२३५

अब तो दिन-रात पहाड़-से भारी हो गये ? जब से हरि मधपुरी चले गए, तब से इनका अन्त ही नही आता। ऐसा लगता है कि-विधाता ने युग के समान नया एक २ पहर बनाया है, जो बीतता ही नहीं है-जागते २ अकुला जाती हूं। वियोग के पहर मित्र के समान पीछा छोड़ते ही नहीं हैं। व्रजवासी वैसे ही अत्यन्त दीन-हीन है, फिर विरह से व्याकुल हो उठे हैं, एसे प्राण-विहीन हो गए है ? जैसे पाला पड़ने से कमल। नंदनंदन के विछोह से अनेक सन्ताप उठाने पडे हैं। गिरिधर के बिना दोनों ऑंखो में ऑंसू छल-छलाए ही रहते हैं।

२३६

विरह बाण की चोट जिस को लगती है, वही जान सकता है ? यह दुःख तो भोगने से ही समझ पड़ता है, कहने से समझ

में नहीं आता। जैसे बहेलिया का विष से बुझा तीर थोड़ासा भी लगने से नखसख-पीडा पहुंचाता हैं-वही इसकी स्थिति है। वहुत यत्न करने पर रातदिन एक पल भर भी चैन नहीं पडता। इस मार्मिक व्यथा को लाल गिरिधर के विना और कौन पहिचान सकता है ?।

३३७

आह ! तरुणकिशोर रसिक नंद-नंदन के मुखकमल को-जिस पर कुछ २ रोमरेखा भींज रही हैं-विना देखे आज कितने दिन बीत गए ? अनुपम कोटि चन्द्र को लजाने वाली वह मुख-शोभा, शरीर का लावण्य, तरछी चितवन, स्मित हास्य और विचित्र नट-रूप का स्मरण करते ही हृदय मसोस जाता है। नंद-कुंवर के संग मिलकर खेलने की उत्कण्ठा होती है। लाल गिरिधर के बिना जीवन-जन्म का कोई मूल्य नहीं है।

३३८

जब से प्रियतम का विछोह हुआ ? तभी से मेरी नींद भी विलीन हो गई ? भूलकर भी कभी आँख नहीं लगी। मुझे रात्रि युग के समान हो गई है। आहार-विहार शृंगार सभी से ग्लानि-सी हो गई है, चित्त की चिन्ता एक पल भी नहीं घटती।

कुंभनदास कहते हैं-प्रभु गोवर्द्धन के विरह में गोपिका सूखकर पीली पड़ गई है-उसे प्रतिदिन नई पीडा उठानी पड़ती है।

३३९

"वह दिन चले गये जब हरि मुझे अपने पास बैठा लेते थे। अहा ! एक दिन अर्द्धरात्रि में उन्होंने गिरि-शिखर पर चढकर वेणुनाद द्वारा बुलाया था। अपने करकमलों से विविध कुसुमों को वेणी में गूंथा और मेरी मांग सँवारी थी। जब प्रेम

से परस्पर अंग-निरीक्षण करते थे ? कितना सुख मालुम पड़ता था-अब वह कहां " ?

यह सब बातें उनसे एकान्त में कहना जब कोई समीप न हो-कहना प्रभु गोवर्द्धनधर ! आप के ये रंग-ढंग कैसे हैं ?

३४०

माधव ! इतने दिन योंही निकल गए। अरे ! गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी ? इसे थोड़ा भी तो नहीं विचारा ? न कभी संदेसा आया न पत्र पाया। आपको स्मृति भी नहीं रही ? प्रीति एक तिनके का सहारा था, रहा-सहा वह भी टूट गया। प्रभु गिरिधर के बिना एक-एक क्षण कल्प के समान व्यतीत हो रहा है।

३४१

गोपाल ! तुम्हारे मिले बिना कुलवधू व्रज की सुन्दरियाँ अत्यन्त आतुर और विरह से विह्वल हो गई हैं। उन्हें शीतल चन्द्र सूर्य के समान संतापदायक हो रहा है, किरणें तीखीं लग रही हैं, कमलपत्र सर्प-विष जैसे दाहक हो गये हैं। चंदन, पुष्प आदि शीतल उपचारों से शरीर में ज्वाला-सी लग जाती है। घनश्याम ! आपके बिना यह व्रजबालाएँ ग्रीष्मऋतु में कनकलता के समान सूख गई हैं। गिरिधरलाल ! आप अधरामृत का सिंचनकर उन्हें जीवन-दान दीजिये।

३४२

काली घनघोर घटा देख कर विरहिणी व्रजनारियां मूर्च्छित हो धरती पर बेसुध गिर जाती हैं। कोयल की कूक और बिजली की कौंध ने घेर-घेर कर बिरहिणियों को झुलसा दिया है। सुख-निधान प्रभु गिरिवरधर ! आप गोपियों की रक्षा क्यों नहीं करते ?

३४३

अंधियारी रात्रि में जब बिजली कौंध जाती है, तब हरि के बिना सूनी सेज पर सखी ! मैं डरकर उचट पड़ती हूं । जैसे २ प्रीतम की सुरति आती है, औंधती हुई गागर के समान नेत्रों से आंसू निकल पड़ते हैं । प्रभु गिरिधर के बिना अब नींद भी प्रति क्षण छाती रौंधती हुई चली जाती है ।

३४४

सखि री ! प्रियतम नहीं आए ? मुझे जगते २ ही रात बीत जाती है । चारों पहर बैठी २ अकुलाते नेत्रों से दशों दिशाए देखती रहती हूं । मैं तो तेरे भरोसे पर रही, समझा था तू गिरिधरलाल को लेने गई थी ? तूने मुझ से कपट तो नहीं किया था ? आली ! चातक को घनरस की प्यास के समान मुझे भी प्रभु की चाह लगी हुई है, उनके बिना अब मै रह नहीं सकती ?

३४५

नयन-घन नीर बरसाए बिना अब एक घडी भर को भी शान्त नहीं रहते ? व्रज में वियोगाश्रु की वर्षा निरन्तर होती रहती है । विरहरूपी इन्द्र रातदिन बरसाये ही जा रहा है, ऊर्ध्व श्वासरूपी पवन के तेज झकोरे चलने लगते हैं, और उरः स्थली भींज-भीजकर लबालब भर गई है । अबम्बर- वस्त्ररूपी आकाश, द्रुमरूप भुजाएँ और स्तन-रूप ऊंची भूमि भी बूड़ी जा रही है । पैर अटक जाते हैं, मन पथिक थक जाता है, चंन्दन रूपी कींच मच गई है । सभी ऋतु अब मिटकर वर्षा बन गई हैं-हरि ने यह क्या उलटी बात कर दी है ? लाल गिरिधर के बिना तो सभी नीति-मर्यादा टलती जा रही हैं ?

३४६

माई ! देखो वर्षा की अगवानी होने लगी, कुंजों में दादुर,

मोर, पपीहा बोलने लगे। आकाश में बक-पंक्तियाँ उड़ने लगीं। घुमड़ते बादल देख और उनकी गर्जना सुनकर सयानी ! तू ही ही बता ? कैसे जिऊं, इस समय तो प्रभु गोवर्द्धनधर ही सुख शान्ति दे सकते हैं।

३४७

अरी ! वर्षा ऋतु आ गई इधर-उधर चातक मोर बोलने लग गए। उमड़-घुमड़ कर उठते काले बादलों के बीच सफेद बक-पंक्ति कैसी उज्वल लगती है ? हा ! हरि के संयोग विना यह दिन कैसे पूरे होंगे ? दादुर की रट से रात्रि में नींद भी नहीं आती। प्रभु गिरिधर ने अब भी इधर आनेका विचार नहीं किया, क्या उनका विछोह ही मेरे हिस्से में पडा है ?

३४८

अरी माई ! इन चौमासे की रातों, वर्षा की बूंदो आदि से कैसे पार पाऊं ? नन्दकिशोर से वियोग जो आ पड़ा है ? जब दामिनी कोंध जाती है, अकेली शय्या पर डरप जाती हूं। चारों ओर गरजते घन देखकर तो रहा नहीं जाता। सखी ! तू गिरिधर से मुझे मिला दे, जो-सदा उनके अंक से लगी रहूं।

३४९

चारों ओर बादल उड़ल पड़े हैं। शय्या पर गिरिधर के वियोग में रात्रि में डरप जाती हूं। कहां यह मनोरम ऋतु और कहां प्रियतम का वियोग ? विधाता ने न जाने किस ईर्ष्या से मेरे भाग्य में इसे लिख डाला है ? अब तो यह नयन -युगल प्रियदर्शन की तृषा से परितप्त हो उठे हैं।

३५०

आली ! श्रावण का महिना आ गया, अब कैसे ढांढस

बांधूं ? चातक, कोयल, मयूरों का बोल सुन २ कर काम जल उठे है। चारों ओर पहाड के समान ऊंचे २ बादल उठ रहे है–इनका घनश्याम वर्ण देखकर धैर्य कैसे बांधा जाय ? आली ! अब तो प्रभु गिरिधर से मिलन, हो ऐसा कोई उपाय जल्दी कर।

३५१

मार्ग देखते–देखते यह लो ! सावन ही आ गया ? अवधि के दिन कभी के पूरे हो गए। अब भी प्रियतम का आगमन नहीं हुआ ? घन की गर्जना कैसे सही जाय ? इस पर चातक की पियू–पियू की रट सुन पड़ती है। वह कैसे सही जाय ? हा ! वह समय कब आवेगा ? जब मनभावन गिरिधर के नयनभर कर दर्शन कर सकूंगी ?

३५२

हरि समीप नहीं है, यह हरियाला सावन का महिना कैसे निकलेगा ? अंधियारी रात्रि में जैसे २ चंचला चमकती है–मेघ की गर्जना होती है, वैसे २ मुझे चित्त में डर लगता है। चारों दिशाओं मे उठते हुए बादलों को देखकर धैर्य भी तो नहीं बंधता ? प्रभु गिरिधर के विरह में किसी प्रकार चैन नहीं पडता अब क्या किया जाय ?

३५३

माई ! बन में मोरों का शोर सुनकर अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। श्याम घटा, और उडती हुई बगुलाओं की कतार देखकर नयनों में आंसू भर २ आते है। बादलों की गड़गड़ाहट बिजली की तड़तड़ाहट, और भयंकर अन्धकार से चित्त डरप जाता है, मैं बेचैन हो जाती हूं। गोपाल–बिना सूनी सेज देख कर नींद नहीं आनी, चौंक २ पडती हूं, चंदन चन्द्रमा, शीतल वायु और पुष्पमालाएं विष–समान लगती हैं–इससे तो

मन और भी जलने लगता है मदन-दुःखमोचन प्रभु गिरिधर अब न जानें कबतक मुझे मिलेगें ?

३५४

अंधियारी रात्रि और उसमें भी यह बिजली क्षणक्षण में चमक २ कर डरपा जाती हैं। बूंदों के पड़ने चारों ओर घन की गरजन तरजन से हृदय और भी व्याकुल हो जाता है, आँख नहीं लगती और नींद में चौंक पड़ती हूं। समझ में नहीं आता ? रसिकवर लाल श्रीगोवर्द्धनधारी कब मिलेंगे ?

३५५

अब लो वर्षा भी आगई। गोपीनाथ ने शीघ्र ही लौट आने को कहाथा, पर अबतक न आए ? न जानें किस मुहूर्त में वे पधारे थे ? घन गरजने और चातक-मोर बोलने लगे-अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्रातःकाल से पंथ निहारते प्रतीक्षा करते दिन निकल जाता है, रात्रि हो जाती है। प्रभु गिरिधरलाल प्रियतम के बिना कैसे रहा जाय ? तू ही बता। उनके बिना सारा ब्रज शून्य लग रहा है।

३५६

दूसरों को सामीप्य और मेरे वांटे में वियोग पड़ा है। आली ? सभी कोई अपनी २ सुख की नींद सोते और उठते हैं- मैं चारों ओर मार्ग देखा करती हूं। समझ में नहीं आता ? विधाता ने किस अपराध पर क्रोधित होकर मेरे भाग्य में एसे अंक लिखे हैं। तृषाकुल चातक घन के लिये जैसे रट लगाता रहता है। वैसे ही ‘ गिरिधरलाल ’ ‘ गिरिधरलाल ’ की रट रात-दिन मुझे लगी रहती है।

३५७

इस वियोग की रचना न जाने किसने की है ? इससे बढ़ कर संसार में कोई दूसरी पीडा नहीं है। इसमें हृदय जलता और भस्म होता रहता है। एक २ पल युग समान बीतता है, जीना कठिन हो जाता है। प्रभु गोवर्द्धन जबसे इस व्रज से पधारे हैं तभी से तन, मन, प्राण सभी वे अपने संग ले गए, ऐसा मालुम पडता है।

३५८

जिस दिन से हरि हमें छोड़ गए, तब से भूलकर भी आँखों में नींद नहीं आई। वे युवतियाँ धन्य है जो स्वप्न में भी प्रियतम को निहार कर एक क्षण भी विरह से छुटकारा पा लेती हैं। यह शीतलोपचार चंदन, चंद्रमा की किरणें तो अग्नि के समान और भी हृदय जलाया करती हैं। गिरिधरलाल के विना अब तन की तपन कौन बुझा सकता है ?

३५९

गोविंद आप तो वृन्दावन की साध हैं। लोचनों को अगाध तृप्त करने वाली वह मनोहर भूमि हैं–अगाध तृप्ति के स्थल हैं। प्रभु ! यह तो बताओ ? आपको इस क्षार समुद्र का निवास कैसे प्रिय लगता है, राधिका के वल्लभ आपको कालिंदी के समीप जो सुख मिलता है वह वहाँ कहाँ ? सभी व्रजवासी आपके पैरों पडते हैं–एक बार आप व्रज में आइये। प्रभु गोवर्धनधर ! आपके बिना सर्वत्र शोक ही शोक छाया हुआ है।

३६०

गोपाल ! सुनिये ? एक व्रज की सुंदरी आपसे मिलने को तरस रही है। मुझे मिला देने को बार–बार कहती है, सचमुच उसके चित्त में बहुत आर्ति है। रातदिन तुम्हारा नाम जपती

रहती है। समझाने पर भी उसके चित्त में कोई बात नहीं बैठती। चित्त श्यामल-तन में चिहुट गया है, लोक-लाज का अब उसे कोई डर नहीं रहा, क्षणभर को उसे चैन नहीं। वह अतिशय आतुर और विरहिणी हो रही है। प्रभु गोवर्धनधर! आपके विना वह अपने शरीर को योंही गला रही है।

३६१

मोहन! एकवार इधर देख लोगे तो तुम्हारा क्या बिगड-जायगा? आपने तो अपना मन चल-दल (पीपल) के पत्ते के समान चंचल कर लिया है-कभी ठहरता ही नहीं, जबतक इकटक तुम्हारा मुख देखती रहती हूं तभीतक मुख मिलता है-दृष्टि से ओझल होते हृदय व्याकुल हो जाता है। प्रभु आप इतने क्यों विमन हो गये हो? देखो २ उसका शरीर गल गया है।

३६२

बात कहने जैसी हो तो कही भी जाय? प्राणनाथ के वियोग की व्यथा तो हृदय में ही समझी सकती है। उसे दूसरे कों कैसे बताया जा सकता है। बताया भी जाय तो उसका दूसरों को क्या अनुभव होगा?

इति लीला-पद

卐

卐 प्रकीर्ण विभाग के कुछ पदो को छोड़कर बहुत से पद 'कुभनदास' कृत प्रतीत नहीं होते। किसी विशेष शृंगार या प्रसंग के लिये प्रचलित पदो की तुक लेकर इनकी रचना की गई है। प्रस्तुत कारण और किसी विशेष भाव के द्योतक न होने से स ३६३ से ४०१ तक पदों का सरल भावार्थ नहीं लिखा गया।

शरदुत्सव, भावानुवादक,

सं २०१०. पो कण्ठमणि शास्त्री

इति

श्रीकुंभनदास कृत

पद-संग्रह

तथा

सरल भावार्थ

स

मा

प्त

"कुंभनदास कृत–पदसंग्रह"

प्रतीक–अनुक्रमणिका

[१ प्रस्तुत अनुक्रमणिका मे कोष्ठान्तर्गत प्रतीकें पाठान्तर की प्रतीके है। प्रारंभिक रूपान्तर के परिचयार्थ उनका देना आवश्यक समझा गया है।

२ बडे टाइप की प्रतीकवाले पद वार्तासे सम्बन्धित हैं, तदर्थ विद्याविभाग द्वारा प्रकाशित 'अष्टछाप' वार्ता [स १६९७ का सस्करण] देखी जा सकती है।

३ जिन प्रतीकों के आगे * चिन्ह और सख्या के स्थान पर शून्य दिया गया है, वे असम्बद्ध और अस्वाभाविक होनेसे प्रक्षिप्त हैं। सग्रह में उन्हें स्थान नहीं दिया गया है।]

*